प्राप्ति-स्थान :
सीरेमल धीगड़मल
सराफा बाजार,
जोधपुर.

द्रव्य-सहायक :
दानवीर सेठ
श्री हीराचन्दजी लच्छीरामजी
लक्ष्मेश्वर,
राणावास (मारवाड़)

वसन्त पञ्चमी,
विक्रम सम्वत् २०२०
वीर सम्वत् २४९०
सन् १९६४

प्रथमावृत्ति · १०००

लागत मूल्य :
एक रुपया पचास न०पै०

मुद्रक ·
अजन्ता प्रिण्टर्स
त्रिपोलिया बाजार,
जोधपुर.

प्रस्तावना

तपस्वी १००८ श्री लालचन्द्रजी म० सा० की तपाराधना और संयम-साधना से स्था० जैन समाज परिचित है। इन मुनिराज की शान्त मुख-मुद्रा, अन्तरोन्मुख चेतना दर्शनीय और वन्दनीय है। आपके चिन्तन व अनुभव से युक्त उद्‌गार संग्रहणीय हैं। आपके आज्ञानुवर्ती तरुण तपस्वी श्री मानमुनिजी म० सा० की सरलता उनके मुख पर मुस्कराहट के रूप मे प्रकट होती रहती है। मधुर प्रवचनकार श्री कानमुनिजी म० सा०, मनोहर भाव-भगिमा व मनोवैज्ञानिक ढंग से व्याख्यान की ऐसी छटा उपस्थित करते हैं कि, श्रोतागण मंत्र-मुग्ध हो जाते हैं। पं० पारसमुनिजी म० सा० का अध्ययन, शास्त्रीय ज्ञान, तर्क-बुद्धि और कवित्व से श्रद्धाशील श्रावक-समाज परिचित है। २५ वर्ष की अल्पायु मे ही आपकी ऐसी स्थिति देखकर आनन्द और आश्चर्य होता है।

सचमुच १००८ श्री लालचन्द्रजी म० सा० के आज्ञानुवर्ती मुनिमंडली की आजीवन ब्रह्मचर्य-साधना व सयम-आराधना श्रद्धावनत करने वाली है। इन मुनियों का जीवन वैभव से उतर कर संयम में क्रीडा करता हुआ आत्म-साधना मे सलग्न है।

'सुबोध जैन पाठमाला' का अभिनन्दन करते हुए इसलिए आनन्द का अनुभव हो रहा है कि इसका संयोजन और लेखन पं० पारसमुनिजी म० सा० की विचक्षण दृष्टि और कुशल कर-कमलों द्वारा हुआ।

समवतः यह पुस्तक सुयोग्य शिक्षको, जिज्ञासु बालकों और धर्म-रस-पिपासु सज्जनों के हाथ मे नहीं पहुँच पाती—यदि राणावास (मारवाड) मे ग्रीष्मावकाश के १८ मई से १७ जून की अवधि मे स्था० जैन शिक्षण शिविर की योजना नहीं हो पाती और इन मुनियो के चरणो मे शिविरार्थियों को ज्ञानाराधना का पुनीत अवसर नहीं मिला होता।

शिक्षण शिविर की योजना धार्मिक शिक्षण के क्षेत्र में एक सुन्दर प्रयोग है। राणावास मे उक्त मुनिवृन्द के चरणो मे बैठकर विद्यार्थियों ने ज्ञानाराधन के साथ धर्माराधन के क्रियात्मक रूप मे भी एक शानदार मिसाल रखी। शिविर-काल की अल्पावधि मे १५,००० सामायिक, ३०० दयायें, ७५ उपवास, २ बेले, ३ तेले और १ पंचोले आदि हुए। गाँव से दूर स्टेशन के पास प्रायः शान्त जगह मे श्री कान्तमुनिजी म० सा० व पारसमुनिजी म० सा० की सफल धर्माध्यापन शैली ने बालको की धर्म-श्रद्धा को जागृत कर उनकी ज्ञान-पिपासा को तीव्रतम बना दिया। कारण कि इन मुनिराजों के ज्ञान और क्रिया के समन्वित रूप ने शिविरार्थियों को यथार्थ सत्य का अनुभव कराया।

हर ग्रीष्मावकाश मे ऐसे शिविर-आयोजनों का कार्य सुचारू रूप से चले—इस हेतु शिक्षण शिविर समिति का गठन हुआ तथा समिति ने शिविरोपयोगी पाठ्य-क्रम तैयार करने के लिये प० र० श्री पारसमुनिजी म० सा० से निवेदन किया। म० श्री ने समिति के आग्रह को मान देकर पाठ्य-क्रम तैयार करना प्रारम्भ किया। पाठ्य-क्रम की प्रथम पुस्तक 'सुबोध जैन पाठमाला' हमारे सामने है।

'सुबोध जैन पाठमाला' 'यथा नाम तथा गुण' के अनुसार हमारे समाज मे प्रचलित शिक्षण साहित्य से अपनी कुछ अलग विशेषताएँ रखती है :

१. सामग्री-चयन मे बालको की रुचि, अवस्था और क्रम का ध्यान रखा गया है।

२. विषय को अधिक-से-अधिक सरल रूप मे प्रस्तुत किया गया है तथा तदनुकूल भाषा की सरलता और सुबोधता भी रखी गई है।

३. विषय को सहज-ग्राह्य बनाने के लिये प्रश्नोत्तरात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। प्रश्नोत्तर शैली उत्सुकता जागृत करने के साथ-साथ चित्त की एकाग्रता को बढाती है।

४. सवादात्मक शैली का उपयोग भी बालको की जिज्ञासा-वृत्ति को जागृत करने और विषय के मर्म का उद्घाटन करने की दृष्टि से सुन्दर बन पड़ा है।

५. सामायिक के पाठो के प्रस्तुत करने का ढंग भी रोचक बन पडा है। मूल पाठ देने के बाद उसके शब्दार्थ दिये गये हैं और तदनन्तर प्रत्येक पाठ के सम्बन्ध मे पृथक् रूप से पाठ के रूप मे प्रश्नोत्तरी दी गई है, जो मूल पाठ के शब्दार्थ के स्पष्ट ज्ञान होने के बाद भावार्थ का भी सम्यक् बोध कराने मे समर्थ हैं।

६. प्रत्येक कथा की मुख्य-मुख्य घटनाओ के शीर्षक कथा मे दिये गये हैं, इससे विद्यार्थियों को सम्पूर्ण कथा-स्मरण रखने मे सुविधा होगी।

७. 'पच्चीस बोल' के उन्हीं बोलों का समावेश इस पुस्तक मे किया गया है, जो सामायिक सार्थ के लिये अधिक उपयोगी हैं।

८. पाठ्य-क्रम का संयोजन इस कुशलता से किया गया है कि धार्मिक शिक्षण सस्थाओं मे भी इसका उपयोग सुगम बन सकेगा।

९. पाठमाला के विषय-वस्तु मे तात्विक ज्ञान के साथ कथा, काव्य, इतिहास आदि का समावेश रोचक बन पडा है ।

१० काव्य-विभाग मे ऐसी रचनाओ का समावेश है, जो केवल शब्दा-डम्बर मात्र न होकर आत्म-साधना और संयम की सच्ची अनुभूति कराती हैं ।

११ पाठमाला की प्रमुख विशेषता यह है कि इसका अध्ययन शुद्ध स्था० जैन मान्यताओ की जानकारी के साथ-साथ शुद्ध श्रद्धा को दृढ़ भी करेगा ।

अन्त मे, मै शिक्षण शिविर प्रबन्ध समिति के अध्यक्ष, दानवीर सेठ हीराचन्दजी सा० कटारिया, संयुक्त मत्री, कर्मठ समाज-सेवी श्री फूलचन्द्रजी सा० कटारिया (राणावास), पूर्ण श्रद्धावान् विज्ञ सुश्रावक श्री धींगड़मलजो गिडिया, जोधपुर, के उत्साह व परिश्रम की सराहना किये बिना नहीं रह सकता, जिन्होंने शिक्षण शिविर की प्रवृत्तियो की प्रगति और प्रचार में अपने उत्तरदायित्व का पूर्ण निर्वहन किया । प्रथम भाग के प्रकाशन में प्रेस-कार्यादि के लिये तरुण सुज्ञ श्रावक श्री सपतराजजी डोसी की अर्पित सेवाएँ भी प्रशंसनीय व उल्लेखनीय हैं ।

लक्ष्मीलाल ढ़क
एम ए (प्री) 'साहित्यरत्न'
प्रधानाध्यापक,
रेल्वे विद्यालय, जोधपुर.

प्राक्कथन

तपस्वी श्री लालचन्दजी म० आदि चार सन्तो का सम्वत् २०१७ में राणावास में चातुर्मास हुआ। उस समय वहाँ छोटेलालजी अजमेरा—प्रचारक, श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक संघ —आये थे। उन्होंने वहाँ श्री कानमुनिजी को उत्साहपूर्वक बालकों को धार्मिक शिक्षण देते हुए देख कर निवेदन किया कि 'हमारे स्थानकवासी संघ में आप-जैसे धार्मिक शिक्षण मे रुचि लेने वाले सन्त बहुत कम है। परन्तु यदि ग्रीष्मावकाश मे हम शिक्षण शिविर लगावे और आप वहाँ एकत्रित बालकों को धार्मिक शिक्षण दे, तो अधिक बालकों को लाभ मिले और उन बच्चों का जो अवकाश का समय प्रमाद में जाता है, वह भी सफल बन जाय।

काल परिपक्व हुआ और राणावास मे ही राणावास संघ के आग्रह और अजमेराजी आदि के प्रयास से सम्वत् २०२० में धार्मिक शिक्षण शिविर लगा। उस समय बालको के प्राथमिक तात्कालिक शिक्षण के लिए श्री कानमुनिजी ने विषय संयोजना की और उन्होंने धार्मिक वाचना दी। शिविर समाप्ति पर गठित शिविर समिति के मन्त्री श्री धींगडमलजी गिड़िया, जोधपुर व सदस्य श्री सम्पतराजजी डोसी ने मुझे समिति की ओर से यह अनुरोध किया कि 'आप श्री

कानमुनिजी द्वारा तात्कालिक संयोजित विषय को कुछ समय लगाकर सम्पादित कर दें, जिससे १ शिविरार्थी बालकों को सम्पादित ज्ञान-शिक्षण मिल सके तथा २ अल्प काल में अधिक शिक्षण मिल सके। इसके अतिरिक्त यदि शिविर में अधिक बालक उपस्थित हो, तो ३ हम भी उस सम्पादित पाठ्यक्रम के आधार पर अध्यापकों द्वारा बालकों को शिक्षण दे सके। ४ यदि अन्यत्र कोई ऐसा शिविर लगाना चाहे, तो वहाँ भी उसका उपयोग हो सके। ५ हमारी स्थानकवासी जैन कान्फरेन्स ने जो 'जैन पाठावलियाँ' प्रकाशित की हैं, वह उसे हमारे सघ से विचार और आचार द्वारा बहिष्कृत श्री सन्तबालजी द्वारा लिखवानी पड़ी हैं। यद्यपि उनका हमारे विद्वान् मुनिराजों द्वारा कुछ संशोधन अवश्य हुआ है, पर मूल से विकृत पुस्तको का पूर्ण सशोधन सम्भव नहीं। उनके लिए तो नए लेखन की आवश्यकता है। अतः उनके स्थान पर यदि कोई आप द्वारा उन नवलिखित पुस्तकों को पढाना चाहे, तो भी पढा सके।'

उनके अत्यन्त आग्रह के कारण वर्त्तमान में मेरी इस सम्बन्ध में योग्यता, रुचि और समय की कमी होते हुए भी इस 'सुबोध जैन पाठमाला - भाग १' को लिखा। फिर भी इससे 'इच्छित उद्देश्यो की पूर्ति हो सके'—यह भावना रखते हुए तदनुकूल मुझसे जितना शक्य हो सका, उतना पुरुषार्थ किया है।

इस ग्रंथ मे जो-कुछ अच्छाइयाँ हैं, वे सब १ देव, २ गुरु और ३ धर्म की कृपा का फल है—जिन्हो ने क्रमश १. निर्ग्रन्थ प्रवचन (जैन धर्म) प्रकट किया, मुझे धर्म का साहित्य और शिक्षण

दिया और मेरी मति व बुद्धि कुछ निर्मल तथा विकसित की। प्रत्यक्ष मे विशेषतया श्री वर्धमान श्रमण सघ के उपाध्याय श्री १००८ श्री हस्तीमलजी म० सा०, जिन्होंने इसका सूत्र विभाग आद्योपान्त पढ़ कर सुझाव व सम्मति दी, २ पूज्यपाद् श्री ज्ञानचन्द्रजी म० सा० की सम्प्रदाय के उपाध्यायकल्प बहुश्रुत श्री १००८ श्री समर्थमलजी म० सा० तथा १ श्री रतनलालजी डोसी जिन्होने इसका आद्योपान्त विहगावलोकन कर इसमे संशोधन दिये ५ तथा श्री सम्पतराजजी डोशी, जिन्होने मुख्यत. इसमे सुझाव दिये, वे भी इस ग्रन्थ की अच्छाइयों के भागी हैं—एतदर्थ मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

इसको जहाँ तक हो सका, जिन-वचन के अनुकूल बनाने का उपयोग रखने का प्रयास किया है। तथापि इसमे जिन वचन के विरुद्ध यदि कोई वचन लिखने मे आया हो, तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

विद्वान् समालोचकों से प्रार्थना है कि वे इसमे रही त्रुटि और स्खलनाओं के प्रति मेरा व प्रकाशक का ध्यान आकर्षित करें। जिससे इसमें भविष्य में परिमार्जन हो सके। इति शुभम्।

शिक्षकों से :

छोटे बालकों को यह दो वर्ष में पढाना चाहिए। प्रथम वर्ष मे १ सूत्र-विभाग के १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ १४ १५ तथा २५वाँ—ये बारह पाठ पढाने चाहिएँ। शेष सामायिक सूत्र मूल कंठस्थ करना चाहिये। २ तत्व-विभाग में पच्चीस बोल के दिये हुए बोल

समझाना और कंठस्थ कराना चाहिए। ३ कथा-विभाग में १ भगवान् महावीर ४ गणधर श्री इन्द्रभूति तथा ५ महासती चन्दनबाला – ये पहली तीन कथाएँ करानी चाहिएँ तथा काव्य-विभाग मे १. परमेष्ठि नमस्कार, २ चतुर्विंशतिस्तव, ३. तीर्थंकर स्तव, ४ गुरुवन्दनादि तथा ५. स्थानकजी में जाएँ—ये पाँच काव्य करवाने चाहिएँ। शेष दूसरे वर्ष में पढाया जा सकता है।

स्व० शतावधानी श्री केवलमुनिजी म० का शिष्य :

पारसमुनि

प्रकाशकीय

सम्वत् २ २० के ग्रीष्मावकाश के समय राणावास मे स्थानकवासी जैन धार्मिक शिक्षण शिविर का आयोजन हुआ। शिविर-काल मे तपस्वी मुनि १००८ श्री लालचन्द्रजी म० सा०, तरुण तपस्वी श्री मानमुनिजी म० सा०, प्रसिद्ध व्याख्याता श्री कानमुनिजी म० सा० तथा प० र० श्री पारसमुनिजी म० सा० भी वहीं विराजे। शिविर में विभिन्न क्षेत्रो से ५१ विद्यार्थी सम्मिलित हुए। श्री कानमुनिजी म० सा० व श्री पारसमुनिजी म० सा० ने अल्प समय मे विद्यार्थियों को बहुत ही सुन्दर ढंग से हृदयस्पर्शी धार्मिक अध्ययन कराया।

शिक्षण शिविर समाप्ति-समारोह के अवसर पर आगन्तुक सज्जनों ने शिविर की सफलता को देखकर इस योजना को दृढ और स्थायी बनाने के लिये शिक्षण शिविर समिति का गठन किया। इस शिक्षण समिति ने प० पारसमुनिजी म० सा० से शिक्षण-शिविर पाठ्य-क्रम को इस रूप में तैयार करने का नम्र आग्रह किया कि वह शिविरोपयोगी होने के साथ-साथ शिक्षण संस्थाओ मे शिक्षण के लिये भी उपयोगी हो सके।

शिविरोपरान्त पं० पारसमुनिजी म० सा० ने हमारे निवेदन को क्रियात्मक रूप देने की कृपा की। आपके अथक परिश्रम, निरन्तर अध्यवसाय व हार्दिक लगन के फलस्वरूप देवगढ़ (राजस्थान) चतुर्मास मे दो पाठमालाओ का निर्माण-कार्य सम्पन्न हो सका। तदनन्तर प्रवास काल मे भी आपकी साहित्य साधना चलती रही और तृतीय पाठमाला जोधपुर आवास-काल में लगभग सम्पूर्ण की जा सकी।

आपने अपना अमूल्य समय देकर इस पाठ्यक्रम को तैयार किया इसके लिये समिति आपका हार्दिक अभिनन्दन करती है और भविष्य में भी इस प्रकार के आगमानुकूल साहित्य सेवा में आपके सहयोग की आशा रखती है ।

'सुबोध जैन पाठमाला—प्रथम भाग' का प्रकाशन आपके हाथों में है । द्वितीय और तृतीय भाग का प्रकाशन भी शीघ्र ही होने जा रहा है । चतुर्थ और पञ्चम भाग, तीनों भागों के प्रकाशन के अनन्तर भविष्य के लिये विचाराधीन रखे गये हैं ।

'सुबोध जैन पाठमाला—प्रथम भाग' के लिये द्रव्य-सहायक के रूप में दानवीर सेठ श्रीमान् हीराचन्दजी लच्छीरामजी मूथा, राणावास, ने जो अपना सहयोग प्रदान किया, वह समाज में शुद्ध धार्मिक शिक्षण के प्रचार की उनकी हार्दिक रुचि को प्रगट करता है और समाज के धनी-मानी सज्जनों को इस ओर प्रेरित होने की आदर्श परम्परा उपस्थित करता है । शिक्षण शिविर समिति उनके सहयोग की सामार नोंध लेती है और अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती है ।

हीराचन्द कटारिया, राणावास — धींगड़मल गिड़िया जोधपुर

अध्यक्ष, — मन्त्री

श्री स्थानकवासी जैन शिक्षण शिविर समिति, जोधपुर.

दानवीर द्रव्य-सहायक बन्धुओं का संक्षिप्त परिचय

श्रीमान् सेठ साहब श्री धूलचन्दजी, हीराचन्दजी, दलीचन्दजी मूथा मारवाड निवासी श्री लच्छीरामजी के पुत्ररत्न है। आपकी जन्मभूमि राणावास ग्राम है। आपने अपने बचपन मे उस समय की रीति-रिवाज के अनुसार सामान्य शिक्षा प्राप्त की। बचपन मे घर की आर्थिक स्थिति सामान्य थी, इसलिये आप दूसरे प्रान्तो मे व्यापार करने के लिये गये। 'व्यापारे वसति लक्ष्मी —व्यापार मे लक्ष्मी का वास है'—इस सिद्धान्त के अनुसार आपका काम-काज पनपने लगा। भाग्य ने अपका साथ दिया और धीरे-धीरे व्यापार चमकने लगा और आप भी श्रीमन्त लोगो मे गिने जाने लगे। नीतिशास्त्र मे लिखा है कि 'योग्य व्यक्ति को धन प्राप्त होता है। धन से धर्म-कार्य करता है, तब उसे सुख की प्राप्ति होती है'।

आपके हाथ मे लक्ष्मो आई और आपने समय-समय पर चचल लक्ष्मी का सदुपयोग शुरू किया। "धन का सबसे अच्छा उपयोग है सत् पात्र मे दान देना।" आपने राणावास मे दवाखाने के सामने ही एक धर्मशाला अपने नाम से बनवाने का कार्य चालू कर रखा है तथा गाँव मे एक कुआ बनवाने हेतु आपने १०,०००) दस हजार रुपये दिये। श्री वर्द्धमान स्था० जैन शिक्षरण सघ मे भी आपकी आर्थिक सेवा तथा शुभ सम्पत्ति प्राप्त होती रही है।

आपका व्यापार लखमेश्वर है, जो शा० हीराचन्दजी लच्छीरामजी के नाम की तीन फर्म है। इनके सुपुत्र श्री ताराचन्दजी उनके सम्पूर्ण कार्यो के उत्तराधिकारी हैं, जो सब कार्य अपने पूज्य पिताजी श्री की इच्छानुसार चला रहे है। आप बडे व्यवसायी ही नही, बल्कि धर्म-प्रेमी भी हैं एव आशा है कि आगे भी ज्ञान-दान मे, समाज-सेवा में अपने द्रव्य का सदुपयोग करते रहेगे तथा पूर्वजो की कीर्ति को अमर बनाने मे विशेष रूप से अग्रसर रहेगे—ऐसी ही वीर प्रभु से हमारी हार्दिक प्रार्थना है।

निवेदक,
सम्पत जैन रणावास
गृहपति,
श्री वर्द्धमान स्था० जैन छात्रालय,
राणावास (मारवाड़)

विषय-सूची

सूत्र-विभाग

तत्व-विभाग

कथा-विभाग

काव्य-विभाग

:: णमो णाणस्स ::

पाठ १ पहला

नमस्कार मन्त्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं ॥१॥
एसो पंच नमोक्कारो, सव्व-पाव-प्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥२॥

शब्दार्थ :

पाँच पदों को नमस्कार

१. **णमो**=नमस्कार हो । **अरिहंताणं**=अरिहन्तो को । २ **णमो**=नमस्कार हो । **सिद्धाणं**=सिद्धो को । ३ **णमो**=नमस्कार हो । **आयरियाणं**=आचार्यों को । ४. **णमो**=नमस्कार हो । **उवज्झायाणं**=उपाध्यायो को । ५ **णमो**=नमस्कार हो । **लोए**=लोक में रहे हुए । **सव्व**=सब । **साहूणं**=साधुओ को ।

नमस्कार फल

एसो=यह । **पंच**=पाँच । **णमोक्कारो**=नमस्कार । **सव्व**=सब । **पावप्पणासणो**=पापो का नाश करने वाला है । **च**=और ।

क्यो ?

सव्वेसिं=सब। मंगलाणं=मगलो मे। पढमं=प्रथम (सर्वश्रेष्ठ)। मगलं=मगल। हवइ=है।

◆

पाठ २ दूसरा

नमस्कार मन्त्र प्रश्नोत्तरी

प्र० नमस्कार किसे कहते है ?
उ० दोनो हाथो को जोड कर ललाट पर लगाते हुए मस्तक झुकाना।

प्र० मन्त्र किसे कहते हैं ?
उ० जिसमे अक्षर थोडे हो और भाव बहुत हों।

प्र० अरिहन्त किसे कहते हैं ?
उ० (अ) जिन्होने—१. ज्ञानावरणीय, २. दर्शनावरणीय, ३. मोहनीय और ४. अन्तराय—इन घाति चारो कर्मों को क्षय करके अज्ञान, मोह, राग, द्वेष, अन्तराय आदि आत्मा के 'अरि' अर्थात् शत्रुओ का 'हत' अर्थात् नाश किया हो तथा (आ) जो जैन धर्म को प्रकट करते हो, उन्हें अरिहन्त कहते हैं।

प्र० सिद्ध किसे कहते है ?
उ० १. जिन्होने आठो कर्मों का क्षय करके अपना आत्म-कल्याण साध लिया हो, तथा २. जो मोक्ष मे पधार गये हो, उन्हे सिद्ध कहते हैं।

प्र० आचार्य किसे कहते हैं ?

उ० चतुर्विध सघ के नायक साधुजी, जो स्वय पॉच आचार पालते हैं तथा साधु सघ मे आचार पलवाते है।

प्र० : उपाध्याय किसे कहते हैं ?

उ० शास्त्रो के जानकार अग्रगण्य साधुजी, जो स्वय अध्ययन करते है तथा साधु-साध्वियो को अध्ययन कराते है।

प्र० . साधु किसे कहते है ?

उ० : १. जो पॉच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति आदि का पालन करते हो। २. सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्-चरित्र और सम्यक्तप द्वारा आत्म-कल्याण साधते हो।

प्र० नमस्कार मत्र मे कितनो को नमस्कार किया है ?

उ० पॉच पदो को नमस्कार किया है।

प्र० पद किसे कहते है ?

उ० योग्यता से मिले हुए या दिए हुए (पूज्य) स्थान को पद कहते हैं।

प्र० नमस्कार मत्र से क्या लाभ है ?

उ० सब पापो का नाश होता है। - ५७

प्र० नमस्कार मत्र से सब पापो का नाश क्यो होता है ? इसका उत्तर

उ० : क्योकि नमस्कार मंत्र सर्वश्रेष्ठ मगल है।

प्र० मगल किसे कहते हैं ?

उ० जिससे पापो का नाश हो।

प्र० क्या नमस्कार मत्र के स्मरण से उसी समय सभी पापो का नाश हो जाता है ?

उ० नही। १ नमस्कार से पहले पॉच पदो के प्रति विनय जगता है। २ पीछे वैसे ही बनने की भावना

जगती है। ३. पीछे हम वैसे ही बनते हैं।

१. विनय से थोडे पापो का नाश होता है। २ वैसे ही बनने की भावना से अधिक पापो का नाश होता है। ३. वैसे ही बनते-बनते और सिद्ध बनने के पहले सभी पापो का नाश हो जाता है।

प्र० . नमस्कार मत्र का स्मरण कौन करता है ?

उ० : जो नमस्कार मत्र स्मरण का लाभ जानता है तथा नमस्कार मंत्र पर श्रद्धा रखता है, वह नमस्कार मत्र का स्मरण करता है।

प्र० · नमस्कार मत्र का स्मरण कहाँ करना चाहिए ?

उ० नमस्कार मत्र का स्मरण कही भी किया जा सकता है। कम-से-कम स्मरण करने वाले को प्राय एकान्त स्थान मे या धर्म के स्थान पौषधशाला आदि मे या मुनि-महासतियों के स्थान मे या स्वधर्मी बन्धु-बहिनो के साथ वाले स्थान मे नमस्कार मत्र का स्मरण करना चाहिये।

प्र० : नमस्कार मत्र का स्मरण कब करना चाहिए ?

उ० : जब भी समय मिले। कम-से-कम नित्य प्रातःकाल उठते समय और रात्रि को सोते समय नमस्कार मत्र का स्मरण अवश्य करना चाहिए। नये कार्य के आरम्भ के समय भी अवश्य स्मरण करना चाहिए।

प्र० : नमस्कार मंत्र का स्मरण किन भावो से करना चाहिए ?

उ० : १ आप (अरिहतादि) पाँचो नमस्कार करने योग्य हैं।
२. मैं भी आप जैसा कब बनूंगा ?
३. मेरे सभी पापों का नाश हो।

प्र० : नमस्कार मत्र का स्मरण कितनी बार करना चाहिए ?

उ० : एक, दो, तीन, चार, पाँच आदि जितनी बार बन सके, उतनी बार करना चाहिए। प्रतिदिन माला के द्वारा १०८ बार या अनुपूर्वी के द्वारा १२० बार नमस्कार मत्र स्मरण का नियम ग्रहण करना चाहिए।

प्र० : क्या नमस्कार मत्र से बढकर कोई मगल है ?

उ० : नही। इन पाँच पदो को नमस्कार रूप मगल सबसे बढ़कर मगल है।

प्र० : इस नमस्कार मत्र का दूसरा नाम क्या है ?

उ० : परमेष्ठी मत्र।

प्र० : परमेष्ठी किसे कहते हैं ?

उ० : जिन्हे हम धार्मिक दृष्टि से सबसे अधिक चाहते हो और हम जिनके समान बनना चाहते हो।

पाठ ३ तीसरा

तिक्खुत्तो : वन्दना पाठ

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेमि। वंदामि नमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि, कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि। मत्थएण वंदामि।

शब्दार्थ :

तिक्खुत्तो=तीन बार। **आयाहिणं**=दक्षिण ओर से (सीधी ओर से)। **पयाहिणं**=प्रदक्षिणा। **करेमि**=करता हूँ।

वन्दामि = वन्दना—स्तुति करता हूँ। नमंसामि = नमस्कार करता हूँ। सक्कारेमि = सत्कार करता हूँ। सम्माणेमि = सम्मान करता हूँ।
कल्लाणं = (आप) कल्याण रूप है। मंगलं = मंगल रूप हैं। देवयं = देव रूप है। चेइयं = ज्ञान रूप है।
पज्जुवासामि = पर्युपासना करता हूँ। मत्थएण = मस्तक से। वन्दामि = वन्दना करता हूँ।

पाठ ४ चौथा

तिक्खुत्तो प्रश्नोत्तरी

प्र० : नमस्कार की विशेष विधि क्या है ?
उ० : पाँचो अङ्ग झुकाकर नमना।

प्र० : पाँच अङ्ग कौन-कौनसे ?
उ० : दो घुटने, दो हाथ और एक मस्तक।

प्र० : पाँच अङ्ग कैसे झुकाना चाहिए ?
उ० : पहले तीन वार प्रदक्षिणा करना चाहिए। पीछे दोनो घुटनो को भूमि पर झुकाने के लिए दोना हाथो को भूमि पर रखना चाहिए। पीछे दोनो घुटने भूमि पर टिकाना चाहिए। पीछे दोनो हाथ जोडकर ललाट पर लगाते हुए स्तुति आदि करना चाहिए। पीछे जुडे हुए दोनो हाथो सहित मस्तक को भूमि तक झुकाना चाहिए। इस प्रकार पाँचो अङ्ग झुकाना चाहिए।

प्र० प्रदक्षिणा के कुछ दृष्टान्त दीजिए।

उ० १ मन्दिरो मे मूर्त्ति-पूजा के समय जैसी आरती उतारी जाती है, इस प्रकार प्रदक्षिणा देनी चाहिए। २ तोल को बताने वाले यन्त्रो के काँटे या गति को बताने वाले (वाहनो मे लगे) यन्त्रो के काँटे जिस प्रकार घूमते हैं, वैसी प्रदक्षिणा देनी चाहिए। ३ चक्रो मे गोलाकृति वाक्य जैसे लिखे जाते है, वैसी प्रदक्षिणा देनी चाहिए। कोई-कोई इससे ठीक उल्टी प्रदक्षिणा मानते है।

प्र० प्रदक्षिणा किसे कहते हैं ?

उ० पहले दोनो हाथो को गले के पास जोड़ना। फिर उन्हे वन्दनीय के दाये और अपने बाये कानो की ओर ऊपर ले जाना। पश्चात् शिर पर ले जाना। पश्चात् वन्दनीय के बाये और अपने दायें कानो की ओर नीचे लाना। पश्चात् उन्हे गले तक ले आना। इस प्रकार जुडे हाथो को चक्र के आकार गोल आवर्तन देकर (घुमाकर) मस्तक पर स्थापन करना और जुडे हाथो सहित मस्तक को कुछ झुकाना।

प्र० प्रदक्षिणा क्यो की जाती है ?

उ० जिन्हे हम नमस्कार करते हैं, वे हमारे केन्द्र बनें और हमारी आत्मा उनकी आज्ञा की परिधि मे रहे—यह श्रद्धा और भावना प्रकट करने के लिए।

प्र० प्रदक्षिणा तीन बार क्यो की जाती है ?

उ० १ अपनी पहली बताई हुई श्रद्धा और भावना की दृढता प्रकट करने के लिए। २ वन्दनीय मे रहे हुए ज्ञान, दर्शन, चारित्र इन तीनो गुणो को वन्दन करने के लिए।

प्र० : वन्दना का अर्थ स्तुति है या नमस्कार ?

उ० : वन्दना का प्रसिद्ध अर्थ नमस्कार है, परन्तु यहाँ और कही-कही वन्दना का अर्थ स्तुति भी होता है।

प्र० : सत्कार किसे कहते है ?

उ० : (क) अरिहंतादि की स्तुति करना, (ख) उनका स्वागत करना, (ग) उन्हे आहार, वस्त्र, पात्र आदि देना।

प्र० : सन्मान किसे कहते हैं ?

उ० : (क) अरिहतादि को अपने से वडा मानना, (ख) उन्हे नमस्कार करना, (ग) उनसे अपना आसन नीचा रखकर अपने से उन्हे ऊँचा स्थान देना।

प्र० : तिक्खुत्तो की पाटी मे सत्कार-सन्मान कैसे किया गया ?

उ० : आप कल्याणरूप, मगलरूप, देवरूप और ज्ञानवान हैं—यह कहकर स्तुति करते हुए सत्कार किया गया है तथा पचांग नमस्कार करके सन्मान किया गया है।

प्र० : कल्याण और मगल किसे कहते है ?

उ० : पुण्य मिलना या सद्‌गुण प्रकट होना कल्याण है तथा पाप खपना या दुर्गुण नष्ट होना मगल है।

प्र० क्या अरिहत आदि भी देवता है ?

उ० : हाँ। जैसे प्राणियो मे शरीर आदि की अपेक्षा देवता वढ़कर है, वैसे ही अरिहत आदि धर्म की अपेक्षा वढकर है, इसलिए वे धार्मिक देवता हैं।

प्र० · पर्युपासना किसे कहते है ?

उ० · (क) नम्र आसन से हाथ जोडकर अरिहतादि के मुँह के सामने सुनने की इच्छा सहित वैठना, कायिक पर्युपासना है। (ख) अरिहतादि जो उपदेश करे, उसे सत्य कहना और सत्य मानना, वाचिक पर्युपासना है।

(ग) उपदेश के प्रति अनुराग रखना और उसे पालने की भावना बनाना मानसिक पर्युपासना है।

प्र० वन्दना कहाँ करनी चाहिए ?

उ० १ यदि अरिहतादि अपने नगर, गाँव आदि मे बिराजे हो, तो उनकी सेवा मे पहुँचकर वन्दना करने से महा फल होता है। यदि बहुत दूर हो, तो उत्तर या पूर्व दिशा मे दोनो दिशा के बीच ईशानकोण मे मुँह करके तथा अपने मन मे उन्हे अपने सामने कल्पना करके वन्दना करना चाहिए।

२. सेवा मे साढे तीन हाथ लगभग दूर रहकर वन्दना करना चाहिए, जिससे अपने द्वारा उनकी आशातना न हो।

प्र० : वन्दना कब करना चाहिए ?

उ० . १. नित्य प्रात काल, सायकाल, सेवा मे पहुँचते, सेवा से लौटते, व्याख्यान सुनने के पहले व पीछे, ज्ञान ग्रहण करने के पहले व पीछे तथा प्रतिक्रमण के पहले व पीछे आज्ञादि लेते समय वन्दना करना चाहिए।

२. जो हमसे बडे हो, उनके वन्दना कर लेने के पश्चात् अपना अवसर आने पर वन्दना करना चाहिए अथवा अधिक सख्या मे होने पर आज्ञा के अनुसार सब साथ मे मिलकर एक स्वर और एक समय मे वन्दना करना चाहिए।

प्र० वन्दना कितनी बार करनी चाहिए ?

उ० : तीन बार करनी चाहिए। १०८ बार भी की जा सकती है। भावना की अपेक्षा १००८ बार भी की जा सकती है।

प्र० : वन्दना से क्या लाभ हैं ?

उ० : १. अरिहतादि के दर्शन होते है। २ जीवन मे विनय आता है। ३. ज्ञानादि शीघ्र प्राप्त होते हैं। ४. धर्म-कार्यो मे स्फूर्ति रहती है। ५. पापो का नाश और पुण्य का लाभ होता है। ६. दुर्गुण नष्ट होते हैं और सद्‌गुण खिलते [हैं। ७. एक दिन हम भी वन्दनीय वनते हैं।

पाठ ५ पाँचवाँ

नमस्कार क्रम

सुमति और विमल दोनो सगे वडे-छोटे भाई थे। उनमे अच्छा प्रेम था। दोनो बुद्धिमान थे। रात्रि मे सोने का समय हुआ। नमस्कार मत्र गिनने से पहले दोनो मे चर्चा चल पडी।

विमल : हमें पहले सिद्धो को नमस्कार करना चाहिए, क्योकि वे मोक्ष मे चले गये है।

सुमति : नही, भैया ! अरिहतो ने धर्म को प्रकट किया है, इसलिए वे हमारे लिए सिद्धो से अधिक उपकारी है। इसके अतिरिक्त सिद्ध हमे दिखाई भी नही देते, उनकी पहिचान भी अरिहत ही कराते हैं। अत अरिहतो को ही पहले नमस्कार करना चाहिए।

विमल : यदि तुम्हारा कहना उचित है, तो अरिहंत और सिद्धो से भी आचार्य आदि को पहले नमस्कार

करना चाहिए, क्योकि आज वे हमारे लिए अरिहतो और सिद्धो से भी विशेष उपकारी हैं।

परन्तु दोनों को एक-दूसरे की बात नही जँची। उन्होने दूसरे दिन अपने गाँव मे पधारे उपाध्यायश्री से निर्णय करने का निश्चय किया। पीछे जैसा नमस्कार मन्त्र का पाठ था, वैसा ही स्मरण कर दोनो सो गये।

दूसरे दिन उठकर नमस्कार मंत्र का स्मरण किया। फिर उपाध्यायश्री के दर्शन के लिए गये। तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वन्दन किया। फिर दोनो पर्युपासना करने लगे। सुमति ने पूछा—मत्थएण वदामि। नमस्कार किनको पहले करना चाहिए ?

उपाध्यायश्री ने दोनो के मन की बात ताड ली। उन्होने समझाया—देखो, पाँच पदो मे पहले दो पद देवों के हैं और पिछले तीन पद गुरु के हैं।

देव बडे होते हैं और गुरु छोटे होते हैं, अत देवो को पहले नमस्कार करना चाहिए और गुरुओ को पीछे नमस्कार करना चाहिए। इसीलिए नमस्कार मत्र में पहले दोनो देवो को और पीछे तीनों गुरुओ को नमस्कार किया गया है।

देवों में यह देखा जाता है कि जो देव हमारे विशेष उपकारी हों, उन्हें पहले वन्दना की जाय। अरिहत सिद्धो से विशेष उपकारी हैं, अत नमस्कार मत्र में उनको पहले नमस्कार किया गया है और सिद्धो को पीछे नमस्कार किया गया है।

देवों के समान गुरुओ में भी जो अधिक उपकारी हों, उन्हे पहले नमस्कार करना चाहिए। सबकी दृष्टि में सामान्य साधुओ से उपाध्याय अधिक उपकारी हैं, क्योकि वे पढाते हैं।

उपाध्याय से भी आचार्य अधिक उपकारी हैं, क्योंकि वे आचार पलवाते है। वे सङ्घ के नायक भी होते है। अतः गुरुओ मे सबसे पहले आचार्यों को, पीछे उपाध्यायों को, अन्त मे सब साधुओ को नमस्कार करना चाहिए।

सुमति : क्या सिद्धो को सदा ही अरिहतों से पीछे ही नमस्कार करना चाहिए ?

उपा० : नही। आगे तुम नमस्कार मत्र के समान एक नमोत्थुरण का पाठ सीखोगे, उसको दो बार बोला जाता है। वहाँ सिद्धों को पहले नमोत्थुरण से पहले नमस्कार किया जाता है और अरिहतो को दूसरे नमोत्थुरण से पीछे नमस्कार किया जाता है, जिससे यह जानकारी भी हो जाय कि उपकार-दृष्टि से अरिहत वडे हैं, परन्तु गुरण की दृष्टि से सिद्ध ही वडे हैं।

विमल : देव वडे क्यो और गुरु छोटे क्यो ?

उपा० : १. देवो ने आत्म-शत्रुओ को जीत लिया है, पर गुरुओ को जीतना बाकी है। २. देवो मे केवल-ज्ञान (सम्पूर्ण ज्ञान) आदि प्रकट हो चुके है, पर गुरुओ मे प्रकट होना बाकी है। ३. अरिहतो के उपदेश के कारण ही आज गुरु हैं। यदि अरिहत उपदेश न देते, तो आज हमे गुरु ही नहीं मिलते। ४. गुरु भी देवो को नमस्कार करते हैं और ५ हमे गुरु से देवो को पहले नमस्कार करना सिखाते है।

सुमति : क्या देव से गुरु को सदा ही पीछे नमस्कार किया जाता है ?

उपा० : जो केवल गुरुपद पर ही हो, उन्हे सदा देव से पीछे ही नमस्कार किया जाता है। परन्तु जो देवपद

पर भी हो और गुरुपद पर भी हो, उन्हे नमस्कार मन्त्र मे देव से पहले नमस्कार किया जाता है। अरिहत देवपद पर तो है ही, उनके अपने हाथ से दीक्षित शिष्यो के लिए वे गुरुपद पर भी है। इस प्रकार दोनों पद वाले अरिहतो को नमस्कार मन्त्र मे सिद्धो से पहले नमस्कार किया जाता है।

विमल : क्या अरिहत और सिद्ध दोनो एक स्थान पर खड़े मिल सकते हैं ?

उपा० : नही। क्योकि अरिहत इस लोक मे रहते है और सिद्ध मोक्ष मे पधारे हुए होते है।

अपने प्रश्नो का समाधान हो जाने पर दोनो भाई उपाध्यायश्री को वदनादि करके अपने घर लौट गये।

पाठ ६ छठा

जैन धर्म

धर्मनाथ और शान्तिनाथ दोनो मित्र-विद्यार्थी थे। दोनो को नमस्कार मत्र और तिक्खुत्तो आता था। वे दोनो जीव-अजीव आदि भी जानने लगे थे। एक बार नगर मे आचार्यश्री पधारे। उन्होने उठते ही नमस्कार मत्र का स्मरण किया। प्रातःकाल होने पर आचार्यश्री के दर्शन के लिए गये। तिक्खुत्तो के पाठ से वन्दन किया। पीछे पर्युपासना करते हुए प्रश्न पूछने लगे।

प्र० : भन्ते ! (आचार्यश्री को सम्वोधन) नमस्कार मंत्र तथा जीव-अजीव आदि पर श्रद्धा रखने वाला क्या कहलाता है ?

उ० : जैन ।

प्र० : जैन किसे कहते है ?

उ० : जो जिन भगवान द्वारा वताये हुए धर्म पर श्रद्धा रखता हो, पालन करता हो ।

प्र० : 'जिन' किन्हे कहते हैं ?

उ० : अज्ञान, निद्रा, मिथ्यात्व, राग, द्वेष, अन्तराय—ये हमारी आत्मा के 'अरि'=शत्रु है । इन्हे जिन्होंने 'हन्त'=नष्ट कर दिये हैं, वे अरिहत कहलाते हैं । आत्मा के शत्रुओ पर विजय पाने के कारण अरिहंत को जिन कहा जाता है ।

प्र० : धर्म किसे कहते है ?

उ० : जो जीवो को दुर्गति मे पडते हुए बचावे तथा सुगति मे ले जावे, उसे धर्म कहते है ।

प्र० . धर्म क्या है ?

उ० : १. सम्यग् ज्ञान, २ सम्यग् दर्शन, ३. सम्यक् चारित्र तथा ४ सम्यक् तप ।

प्र० : ज्ञान किसे कहते हैं ?

उ० : भगवान् द्वारा बताये हुए जीव-अजीव आदि नव तत्वो का ज्ञान करना ।

प्र० : दर्शन किसे कहते है ?

उ० . अरिहत द्वारा वताये हुए तत्वो पर श्रद्धा रखना ।

प्र० : चारित्र किसे कहते है ?

उ० महाव्रत या अणुव्रतादि का पालन करना ।

प्र० . तप किसे कहते हैं ?

उ० . उपवास आदि करके काया आदि को तपाना तथा प्रायश्चित आदि करके मन आदि को तपाना।

प्र० · जैन कितने प्रकार के होते है ?

उ० . तीन प्रकार के होते हैं। १. श्रद्धा रखने वाले, २ श्रद्धा के साथ थोडा चारित्र (अणुव्रतादि) पालने वाले, ३. श्रद्धा के साथ पूरा चारित्र (पॉचो महाव्रत) पालने वाले।

प्र० : इनके नाम क्या हैं ?

उ० · पहले और दूसरे प्रकार के जैन, श्रावक और श्राविका कहलाते हैं। तीसरे प्रकार के जैन, साधु और साध्वी कहलाते हैं।

प्र० . तो क्या हम भी श्रावक हैं ?

उ० : हाँ।

प्र० . श्रावक, श्राविका और साधु, साध्वी आपस मे क्या लगते है ?

उ० : स्वधर्मी।

प्र० : स्वधर्मी किसे कहते हैं ?

उ० . जो हमारे जैन धर्म पर श्रद्धा रखता हो, जैन धर्म का पालन करता हो।

प्र० · जैन धर्म से इस लोक मे क्या लाभ हैं ?

उ० : १ ज्ञान से हमारी बुद्धि विकसित होती है। २. श्रद्धा से हम पर असत्य का चक्र नही चलता। ३ अहिंसा से वैर-विरोध शात होता है, मैत्री बढती है, समय पर रक्षक मिलते हैं। सत्य से विश्वास बढता है, प्रामाणिकता बढती है। अचौर्य और ब्रह्मचर्य से सब स्थानो मे

प्रवेश मिलता है। कोई सन्देह नही करता। ब्रह्मचर्य से शरीर स्वस्थ और बलवान रहता है। अपरिग्रह से तन-मन को अधिक विश्राम मिलता है। ४. बाहरी तप से रोग नष्ट होते है। शरीर निरोग रहता है। भीतरी लोग हमारा आदर करते हैं। हमे निमन्त्रण देते है—इत्यादि जैन धर्म से इस लोक मे कई लाभ है।

प्र० जैन धर्म से परलोक मे क्या लाभ है?

उ०. १ ज्ञान से समझने की शक्ति, स्मरणशक्ति, तर्कशक्ति, तेज मिलती है। २. श्रद्धा से देवगति, मनुष्य गति मिलती है। आर्यक्षेत्र मिलता है। अच्छा कुल मिलता है। ३. अहिंसा से दीर्घ आयुष्य मिलता है, निरोग काया मिलती है। सत्य से मधुर कठ और प्रिय वाणी मिलती है। अचौर्य से चोर का वश नही चलता। ब्रह्मचर्य से पाँचो इन्द्रियाँ मिलती है। इन्द्रियाँ सतेज रहती है। अपरिग्रह से धनवान कुल मे जन्म होता है। कही पर भी सम्पत्ति का विनाश नही होता। ४ तप से किसी प्रकार दु.ख या शोक नही होता। एक दिन मोक्ष मिलता है।

प्र०: जैन धर्म से तात्कालिक लाभ क्या हैं?

उ०: १ ज्ञान से जीव-अजीवादि तत्वो का ज्ञान होता है। २. दर्शन से (अरिहंत की वाणी पर) जीव-अजीवादि तत्वो पर श्रद्धा होती है। ३ चारित्र से कर्म बँधते हुए रुकते है। तप से पुराने कर्म क्षय होते है।

अपने प्रश्नो का समाधान हो जाने पर दोनो मित्र आचार्य श्री को वंदनादि करके अपने घर लौट गये।

पाठ ७ सातवाँ

तीर्थंकर और तीर्थ

जिनदास एक भला शिक्षार्थी था। उसकी स्मरण शक्ति तेज थी। वह कक्षा मे छात्रो से व्यर्थ बातचीत नही करता था। शिक्षक जो सिखाते, उसे वह ध्यान से सुनता और मन लगाकर कठस्थ करता।

वह जैन पाठशाला से घर लौटा। उसकी माँ उसे बहुत चाहती थी, क्योकि उसमे शिक्षार्थी के गुण थे। माता ने उसे दूध पिलाने के पश्चात् पूछा .

वेटा, जिनदास ! कहो, आज क्या सीखे ?

पुत्र आज मैं कई नई बाते सीख कर आया हूँ। आज श्रावकजी ने पहले हमे अरिहन्तदेव का एक नया नाम बताया—'तीर्थंकर'।

माँ : वेटा ! तीर्थंकर किसे कहते है ?

पुत्र : माँ ! जो तिराता है, उसे तीर्थ कहते हैं। अरिहतो के प्रवचन (धर्म, उपदेश) हमे ससार से तिराते हैं, अत. अरिहतो के प्रवचन को तीर्थ कहते हैं। अरिहत प्रवचन रूप तीर्थ को प्रकट करते है, इसलिए अरिहंतो को तीर्थंकर कहा जाता है।

: वेटा ! जानते हो, कितने तीर्थंकर हुए ?

: हाँ, भूतकाल मे अनंत तीर्थंकर हो चुके है, किन्तु इस अवसर्पिणी काल मे चौबीस तीर्थंकर हुए। उनके नाम इस प्रकार हैं :

१ श्री ऋषभनाथजी	१३. श्री विमलनाथजी
२ श्री अजितनाथजी	१४ श्री अनन्तनाथजी
३ श्री सम्भवनाथजी	१५. श्री धर्मनाथजी
४. श्री अभिनन्दनजी	१६. श्री शान्तिनाथजी
५. श्री सुमतिनाथजी	१७. श्री कुन्थुनाथजी
६ श्री पद्मप्रभुजी	१८. श्री अरनाथजी
७. श्री सुपार्श्वनाथजी	१९. श्री मल्लिनाथजी
८. श्री चन्द्रप्रभुजी	२०. श्री मुनि सुव्रतजी
९ श्री सुविधिनाथजी	२१. श्री नमिनाथजी
१० श्री शीतलनाथजी	२२. श्री अरिष्टनेमिजी
११. श्री श्रेयासनाथजी	२३. श्री पार्श्वनाथजी
१२ श्री वासुपूज्यजी	२४ श्री महावीरस्वामीजी

माँ : हम ९वे तीर्थंकरजी को श्री पुष्पदतजी और २२वे को श्री नेमिनाथजी कहते है।

पुत्र : माँ! ये ९वे और २२वे तीर्थंकर के दूसरे नाम हैं।

माँ : क्या दूसरे तीर्थंकर के भी दूसरे नाम हैं ?

पुत्र : हाँ, जैसे १ श्री ऋषभनाथ को श्री आदिनाथजी और २४ भगवान् महावीरस्वामीजी को श्री वर्धमानस्वामीजी भी कहते हैं।

माँ : वेटा! हम ७वे तीर्थंकर को सुपारसनाथजी और २३वें तीर्थंकर को पारसनाथजी कहते है।

पुत्र : माँ! श्रावकजी ने हमे कहा कि कुछ लोग ऐसे नाम कहते हैं, किन्तु तुम सुपार्श्वनाथ और पाश्वनाथ ऐसे नाम कठस्थ करो।

माँ : तीर्थंकरो के नामो के विषय मे श्रावकजी ने और क्या वताया ?

पुत्र : कुछ लोग ६ठे तीर्थंकरजी को पदमप्रभु, ८वे तीर्थंकरजी को चन्दाप्रभु और १८वे तीर्थंकरजी को अरह्नाथजी कहते है, वे अशुद्ध हैं।

माँ : क्या वर्त्तमान मे भी तीर्थंकर विद्यमान हैं ?

पुत्र : हाँ, महाविदेह क्षेत्र मे वर्त्तमान मे बीस तीर्थंकर विद्यमान हैं।

माँ : उनके नाम क्या हैं ?

पुत्र :

१. सीमधर स्वामीजी	११. व्रजधर स्वामीजी
२ युगमन्दिर स्वामीजी	१२. चन्द्रानन स्वामीजी
३ वाहु स्वामीजी	१३ चन्द्रबाहु स्वामीजी
४ सुबाहु स्वामीजी	१४ भुजग स्वामीजी
५ सुजात स्वामीजी	१५. ईश्वर स्वामीजी
६ स्वयप्रभ स्वामीजी	१६. नेमीश्वर स्वामीजी
७ ऋपभानन स्वामीजी	१७ वीरसेन स्वामीजी
८ अनतवीर्य स्वामीजी	१८. महाभद्र स्वामीजी
९ सूरप्रभ स्वामीजी	१९ देवयग स्वामीजी
१० विशालधर स्वामीजी	२०. अजितवीर्य स्वामीजी

माँ : जानते हो बेटा! अपने भगवान् महावीर स्वामीजी के गणधर कितने हुए ?

पुत्र : हाँ, माँ! ग्यारह गणधर हुए। उनके नाम इस प्रकार हैं :

१. श्री इन्द्रभूतिजी	७. श्री मौर्यपुत्रजी
२ श्री अग्निभूतिजी	८. श्री अकपितजी
३. श्री वायुभूतिजी	९ श्री अचलभ्राताजी
४ श्री व्यक्तभूतिजी	१० श्री मैतार्यजी
५ श्री सुधर्मा स्वामीजी	११. श्री प्रभासजी
६. श्री मण्डितजी	

माँ : गणधर किसे कहते है, बेटा ?

पुत्र : १. जो भगवान् के (१) उत्पाद (२) व्यय और (३) ध्रौव्य—इन तीन शब्दो मे सब समझ जाते हैं, २ भगवान् के प्रवचनो को गूँथकर शास्त्र बनाते हैं, ३. तथा साधुओ के गण को धारण करते है, उन्हें गणधर कहते है।

माँ : बेटा ! श्री इन्द्रभूतिजी के विषय मे और क्या सीखे ?

पुत्र : श्री इन्द्रभूतिजी, श्री महावीर स्वामीजी के सबसे पहले शिष्य हुए। वे सभी साधुओ मे बडे थे। उन्हे गौतम गोत्र के कारण श्री गौतम स्वामीजी भी कहा जाता है।

माँ : अच्छा बेटा ! अब यह बताओ कि आज हम कितने शास्त्र मानते है और आज किन गणधरजी के बनाये हुए शास्त्र मिलते है ?

पुत्र : माँ ! हम बत्तीस शास्त्र मानते हैं और आज श्री सुधर्मा स्वामीजी के बनाये हुए शास्त्र मिलते हैं।

माँ : हम तो साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका—इन चार को तीर्थ मानते हैं और तुमने भगवान् की वाणी को तीर्थ बताया—ऐसा क्यो बेटा ?

पुत्र : तिराती तो भगवान् की वाणी ही है, इसलिए तीर्थ वही है। परन्तु वह भगवान् की वाणी साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका के कारण टिकती है। वे स्वय सीखते हैं और दूसरो को सिखाते है, इसलिए इन चारो को भी तीर्थ कहते है।

माँ : बहुत अच्छा बेटा ! ये सब सीखी हुई बाते स्मरण रखना।

पुत्र : हाँ, माँ ! मैं नित्य उठते ही नमस्कार मन्त्र स्मरण

कर अब चौबीस तीर्थंकरों के नाम और गणधरो के नाम भी स्मरण किया करूँगा।

तीर्थंकरो ने तिरने का मार्ग बताया। गणधरों ने उसे शास्त्र बनाकर हमारे लिए उपकार किया। उन्हे हम कैसे भूले!

मैं चतुर्विध संघ से प्रेम रखूँगा, क्योकि वे भी तीर्थ के समान है। उनसे मुझे तिरने मे बहुत सहायता मिलेगी। जो हमारे सहायक है, उन्हे सदा ही हृदय मे रखूँगा।

पाठ ८ आठवाँ

सम्यक्त्व सूत्र

एक नगर मे कुछ मुनिराज पधारे। वहुत-से लोग उनके दर्शन के लिए गये।

उस नगर मे नेमिचन्द्र आदि लडके परस्पर अच्छी मित्रता रखते थे। एक लडके को जब मुनिराज के समाचार मिले, तव उसने घर-घर घूमकर सभी लड़को को इकट्ठा किया।

इकट्ठे होकर वे सभी मुनिराज के दर्शन के लिए चले। मार्ग मे सबने निश्चय किया कि मुनि-दर्शन का लाभ हमे तव अधिक होगा, जब हम कुछ उनसे सीखे और कण्ठस्थ करे।

मुनियो के स्थान पर पहुँचकर सबने छोटे-बडे मुनियो को क्रम से तिक्खुत्तो के पाठ से वंदना की। पीछे सबने मिलकर प्रार्थना की कि मुनिराज! आप हमे कुछ सिखावे।

मुनिराज ने आगे लिखा सूत्र सिखलाया, उसका शब्दार्थ सिखलाया और विवेचन करके समझाया।

सम्यक्त्व सूत्र

१'अरिहन्तो' मह-देवो, २जावज्जीवं 'सुसाहुणो' गुरुणो।
३'जिण-पण्णत्तं' तत्तं, इअ 'सम्मत्तं' मए गहियं॥

जावज्जीवं=जब तक जीवन है। **मह**=मेरे। **अरिहन्तो**=अरिहत। **देवो**=देव है। और **सु**=सच्चे। **साहुणो**=साधु। **गुरुणो**=गुरु है। और **जिन**=अरिहत द्वारा। **पण्णत्तं**=कहा हुआ। **तत्तं**=धर्म है। **इअ**=इस प्रकार। **मए**=मैंने। **सम्मत्तं**=सम्यक्त्व। **गहियं**=ग्रहण की है।

जब बालको ने सम्यक्त्व सूत्र और उसका अर्थ कण्ठस्थ करके सुनाया, तब मुनिराज ने समझाये हुए विवेचन के आधार पर पूछा बताओ, आपके देव कौन है ?

बालक : अरिहत ही हमारे देव हैं।

मुनि : क्यो ?

बालक : १ अरिहत देव ने अज्ञान, निद्रा, मिथ्यात्व, राग, द्वेष, अन्तराय आदि आत्मा के सभी आन्तरिक शत्रुओ को जीत लिया हैं, इसलिए वे सच्चे देव हैं। जो अरिहत नही है, जिन्होने अब तक अरियो का हनन नही किया है, जो शत्रु सहित है, जो अज्ञानी है, निद्रा लेते है, मिथ्यात्वी हैं, रागी हैं, द्वेषी हैं, दुर्वल हैं, वे सच्चे देव नही हो सकते।

मुनि : आपके गुरु कौन हैं ?

बालक : जैन साधु ही हमारे गुरु हैं !

मुनि : क्यो ?

बालक : 'जिन' ने आत्मा के सभी शत्रुओ को जीता है, इसलिए उनका कहा हुआ धर्म, पूर्ण धर्म है और सत्य धर्म है। जैन साधु उस धर्म पर पूरी श्रद्धा रखते हैं और उसका पूरा पालन करते हैं, अत वे ही सच्चे साधु है।

जो 'जिन' के द्वारा कहे गये धर्म का विश्वास नही करते, उसका पालन नही करते, ऐसे साधु अजैन साधु है। वे सच्चे साधु नही हो सकते। जन साधु की क्रिया और अजैन साधु की क्रिया देखने से भी यह प्रकट हो जाता है कि कौन सच्चे है ?

एक अहिंसा को ही ले। जैन साधु छहो काय की दया करते है। सचित्त जोवसहित मिट्टी पर पैर भी नही धरते, सचित्त पानी नही पीते, आग नही तपते, दिया नही जलाते (बिजली, बैटरी आदि से चलने वाले दीपक, रेडियो, ध्वनि-प्रसारक आदि का भी उपयोग नही करते), वायु के लिए पखा आदि नही करते। मुँह पर मुखवस्त्रिका बाँधते है, जिससे मुँह से निकली वेग वाली वायु से सचित्त वायु की हिंसा नही हो। कोई दूसरा वनस्पति को छू जाय, तो उसे अशुद्ध (असूझता) मानकर भिक्षा भी नही लेते। त्रसकाय की रक्षा के लिए जूते नही पहनते, रजोहरण रखते हैं, रात को पहले उससे आगे की भूमि शुद्ध करके फिर पैर रखते है। रात्रि को विहार नही करते। वाहन पर भी नही बैठते। ऐसी अहिंसा दूसरे साधुओ मे कहाँ है ?

ब्रह्मचर्य के लिए जैन साधु स्त्री को छूने तक नही तथा फूटी कौड़ी भी सम्पत्ति के नाम पर नही रखते।

मुनि : आपका धर्म कौनसा है ?

बालक : जैन धर्म ही हमारा धर्म है।

मुनि : क्यो ?

बालक : 'जिन' का कहा हुआ धर्म जैन धर्म है। वह धर्म पूर्ण धर्म है और सत्य धर्म है। हम उसी पर विश्वास करते है और शक्ति के अनुसार पालन करते है, इसलिए जैन धर्म ही हमारा धर्म है।

अन्य धर्म पूर्ण धर्म नही है, क्योकि किसी मे केवल ज्ञान मे धर्म माना है, चारित्र मे नही। किसी मे केवल चारित्र मे धर्म माना है, ज्ञान मे नही। कोई केवल भक्ति मानते हैं और अन्य को आवश्यक नही समझते।

अन्य धर्म सत्य धर्म नही है, क्योकि उनके शास्त्रो मे कही अहिसा को परम धर्म बताया और कही हिसा करने मे महा लाभ बताया है। कही ब्रह्मचारी को भगवान् बताया है और कही 'बिना पुत्र सुगति नही मिलती' ऐसा कहा है।

इसलिए हम उन धर्मो पर विश्वास नही करते।

मुनि : दृष्टि किसे कहते है ?

बालक : श्रद्धा (मत, विचार)को दृष्टि कहते है।

मुनि : सम्यग्दृष्टि किसे कहते है ?

बालक : जो अरिहंत को सुदेव, जैन साधुओ को सुगुरु और जैन धर्म को सुधर्म माने, वह सम्यग्दृष्टि है। क्योकि उसीकी दृष्टि (अर्थात् श्रद्धा) सम्यक् (अर्थात् सच्ची) है।

मुनि : मिथ्यादृष्टि किसे कहते हैं ?

बालक : जो अरिहत को सुदेव, जैन साधुओ को सुगुरु और जैन धर्म को सुधर्म न माने, वह मिथ्यादृष्टि है। क्योकि उसकी दृष्टि (अर्थात् श्रद्धा) मिथ्या (अर्थात् सच्ची नही) है।

मुनि : मिश्रदृष्टि किसे कहते हैं ?

बालक : जो सभी देवो को सुदेव, सभी साधुओ को सुगुरु और सभी धर्मों को सुधर्म माने, वह मिश्रदृष्टि है। क्योकि उसकी दृष्टि अर्थात् श्रद्धा मिश्र अर्थात् मिलावट वाली है।

मुनि : मोक्ष पाने के लिए कौनसी दृष्टि आवश्यक है ?

बालक : सम्यग्दृष्टि।

पाठ ९ नवमाँ

साधु-दर्शन

श्री उत्तमचन्द्रजी कुछ वर्षों से मद्रास प्रान्त के किसी छोटे-से गाँव मे रह रहे थे। उनके दोनो पुत्र दयाचन्द्र और मगलचन्द्र का जन्म वही हुआ। वे बडे भी वहीं हुए। उन्हे कभी साधु-दर्शन नहीं हुए थे। इसलिए वे नही जानते थे कि

साधुओ के दर्शन करते समय हमे क्या करना चाहिए और साधु उस समय हमारे लिए क्या करते है ?'

एक बार श्री उत्तमचन्द्रजी अपने पुत्रों को साधु दर्शन कराने के लिए और 'सम्यक्त्व सूत्र' दिलाने के लिए राजस्थान के अपने नगर मे लाये। वहाँ उस समय आचार्यश्री विराजते थे। दर्शन कराने के लिए जाते समय श्री उत्तमचन्द्रजी ने पुत्रो से कहा—देखो, साधु-दर्शन के समय 'अभिगमन' का पालन करना चाहिए।

दया : 'अभिगमन' का अर्थ क्या है ?

पिता : दर्शन के लिए अरिहतादि के सामने जाते समय पालने योग्य नियमो को 'अभिगमन' कहते है।

मंगल : 'अभिगमन' कितने है ?

पिता : पाँच हैं। पहला है 'सचित्त का त्याग'।

दया : इसका अर्थ क्या है ?

पिता : दर्शन के समय पास रही हुई छोडने योग्य सचित्त (जीव सहित) वस्तुओ को छोड़ना। जैसे दर्शन के समय पैरो मे मिट्टी आदि लगी नही रहनी चाहिए (पृथ्वीकाय का त्याग) पानी या वर्षा की बूंदे लगी नही रहनी चाहिएँ। हाथ मे कच्चा पानी का लोटा आदि नही रहना चाहिए (अप्काय का त्याग)। मुँह मे धूम्रपान आदि नही चलना चाहिए, हाथ मे बेटरी आदि जलती हुई या मशाल आदि नही होनी चाहिए (तेजस्काय का त्याग)। पखा झलते हुए नही रहना चाहिए (वायुकाय का त्याग)। मुँह मे पान चबाते हुए या कोई सचित्त वस्तु खाते हुए नही रहना चाहिए। केश आदि मे फूल आदि लगे नही रहना

चाहिए। थैली मे शाक-सब्जी, धान्य या सचित्त मेवा आदि नही रहना चाहिए (वनस्पति का त्याग)।

मंगल . यदि कांख मे बालक हो, तो ?

पिता : उसे हटाना आवश्यक नही। सचित्त मिट्टी आदि साथ मे रहने से उनकी हिंसा होती है। मुनिराज के सामने हिंसापूर्वक जाना ठीक नही, इसलिए उन्हे छोडना पडता है। बालक साथ मे रहने से उसकी कोई हिंसा नही होती। बालको को तो साथ रखना ही चाहिए। इससे वे भी वन्दना-नमस्कार आदि करना सीखते है।

दया : दूसरा अभिगमन क्या है ?

पिता : 'अचित्त का विवेक।'

दया : इसका अथ क्या है ?

पिता : दर्शन के समय अचित्त (जीवरहित) वस्तुएँ छोडना आवश्यक नही है। अत उन्हे न छोडते हुए, जिस प्रकार रखना चाहिए, उस प्रकार रखना। जैसे वस्त्र, अलकार आदि पहने हुए रक्खे जा सकते हैं, पर मानसूचक जूते, मुकुट आदि पहने हुए नही रहना चाहिए। छत्र (छाता) लगा हुआ नही रहना चाहिए। चँवर ढुलते हुए नही रहना चाहिए। साइकल आदि वाहनो पर बैठे हुए नही रहना चाहिए, उनसे उतर जाना चाहिए।

दया : तीसरा अभिगमन क्या है ?

पिता : 'एक शाटिक उत्तरासग करना।'

दया : इसका अर्थ क्या है ?

पिता : 'मुँह पर बिना सिला एक दुपट्टा लगाना'। मुँह से बोलते हुए वायुकाय की हिंसा न हो, इसलिए इसे मुँह पर लगाया जाता है। दुपट्टा लम्बा करके मुँह के चारो ओर तिरछा गोल भली भाँति लपेट लेना चाहिए, ताकि प्रदक्षिणा देते समय उसे हाथ से पकडे रहना न पडे तथा वह बार-बार नीचे न गिरे।

दया : शेष दो अभिगमन कौनसे है ?

पिता : चौथा है अरिहत आदि दिखाई देते ही हाथ जोडकर 'अञ्जलि बाँधना' तथा पाँचवाँ है मन को सब ओर से हटाकर जिनका दर्शन करना है, उन अरिहन्तादि मे 'मन को जोडना'।

पिता और दोनो पुत्र अभिगमन सहित आचार्यश्री की सेवा मे गये। वन्दना की। दोनो पुत्रो को आचार्यश्री ने सम्यक्त्व सूत्र दिया। पीछे मागलिक सुनाई। पिता अपने पुत्रो के साथ दुबारा आचार्यश्री को वन्दना करके घर लौट आये।

घर पर आकर दयाचन्द्र ने पिता से पूछा—पिताजी ! वन्दना करने पर साधुजी 'दया पालो' कहते हैं, उसका क्या अर्थ है ?

पिता : बेटा ! यह प्रश्न तुमने वही आचार्यश्री से क्यो नही पूछा ?

दया : मुझे सकोच हो रहा था।

पिता : बेटा ! आचार्यश्री के सामने क्या सकोच ? वे तो हमारे तारक हैं। उन्होने सम्यक्त्व सूत्र के लिए

तुम्हे कितना सुन्दर समझाया। ऐसे पुरुषो से प्रश्न पूछने मे कभी सकोच नही करना चाहिए।

उन्हे प्रश्न पूछने से वे अधिक प्रसन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त वे जितना सुन्दर समाधान (उत्तर) दे सकते है, उतना हम लोग उत्तर नही दे सकते। अत उनकी कृपा पाने के लिए तथा अपनी विशेष ज्ञानवृद्धि के लिए उन से ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

हाँ, तो लो, अब 'दया पालो' का अर्थ, जैसा मुझे आता है, वैसा बताता हूँ।

'दया' का अर्थ है 'अहिंसा' और 'पालो' का अर्थ है 'पालन करो'। अहिंसा हमारे सम्पूर्ण शास्त्रो का सार है। जब हम गुरुदेव को वन्दना करते हुए कहते हैं कि 'मैं आपकी पर्युपासना करता हूँ, अर्थात् कुछ सुनना चाहता हूँ', तो वे हमे थोडे मे जो सम्पूर्ण शास्त्रो का सार अहिंसा है, उसे पालन करने की शिक्षा देते हैं।

दया : मुनिराज हमे 'दया पालो' ही क्यो कहते हैं ?

पिता : जब थोड़े शब्दो मे किसी को उपदेश देना हो, तो उसे सारभूत शिक्षा ही देनी चाहिए।

मंगल : बहुत अच्छा पिताजी ! अब आप आचार्यश्री ने हमे अन्त मे जो पाठ सुनाया, उसका नाम बताइये और वह पाठ सिखाइये।

पिता : मगल ! तुमने आचार्यश्री से सीखने मे सकोच किया, यह अच्छा नही किया। भविष्य मे कभी उनकी सेवा मे सकोच-लज्जा मत रखना। हाँ, उन्होने जो पाठ

सुनाया, उसका नाम 'मागलिक' है। उसका मूल पाठ इस प्रकार है :

चत्तारि मगलं। १. अरिहता मंगल २ सिद्धा मंगलं ३ साहू मगलं ४ केवलि पण्णत्तो धम्मो मगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा। १ अरिहता लोगुत्तमा २ सिद्धा लोगुत्तमा ३. साहू लोगुत्तमा। केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।

चत्तारि सरण पवज्जामि। . अरिहतो सरण पवज्जामि २ सिद्धे सरण पवज्जामि ३ साहू सरण पवज्जामि ४. केवलि पण्णत्त धम्म सरणं पवज्जामि।

दया : उसके शब्दार्थ बताइए।

पिता : शब्दार्थ इस प्रकार है

चत्तारि = चार। मंगल = मगल हैं।
१. अरिहंता = सभी अरिहत। मगलं = मगल है।
२. सिद्धा = सभो सिद्ध। मंगलं = मगल है।
३. साहू = सभी (आचार्य, उपाध्याय और) साधु। मंगलं = मगल है। ४ केवलि = केवली (अरिहत)। पण्णत्तो = प्ररुपित (द्वारा कहा हुआ)। धम्मो = धर्म (जैन धर्म)। मंगलं = मगल है।

क्योकि

चत्तारि = चार। लोगुत्तमा = लोकोत्तम हैं।
१ अरिहता = सभी अरिहत। लोगुत्तमा = लोकोत्तम है। २ सिद्धा = सभी सिद्ध। लोगुत्तमा लोकोत्ताम हैं। ३ साहू = सभी (आचार्य, उपाध्याय

ग्रौर) साधु । **लोगुत्तमा** = लोकोत्तम हैं । ४ **केवलि** = केवली । **पण्णत्तो** = प्ररुपित । **धम्मो** = धर्म । **लोगुत्तमो** = लोकोत्तम है ।

इसलिए

चत्तारि = चार । **सरणं** = शरण । **पवज्जामि** = ग्रहण करता हूँ ।

१ **ग्ररिहंते सरणं पवज्जामि** = सभी ग्ररिहतो की शरण लेता हूँ । २ **सिद्धे सरणं पवज्जामि** = सभी सिद्धो की शरण लेता हूँ । ३ **साहू सरणं पवज्जामि** = सभी (ग्राचार्य, उपाध्याय ग्रौर) साधुग्रो की शरण लेता हूँ । ४. **केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि** = केवलि प्ररुपित धम की शरण लेता हूँ ।

मंगल : इसका भावार्थ बताइए ।

पिता : भावार्थ इस प्रकार है

१ ग्ररिहत २ सिद्ध ३. साधु ग्रौर ४ धर्म—ये चारो मगल हैं, क्योकि सब पापो का नाश करते है ।

१ ग्ररिहत लोकोत्तम ग्रर्थात् सभी धर्म-प्रवर्तको से उत्तम है, क्योकि वे १८ दोषरहित तीर्थंकर हैं । २. सिद्ध लोकोत्तम ग्रर्थात् सभी मत-मान्य सिद्धो से उत्तम है, क्योकि वे ग्राठो कर्म क्षय करके मोक्ष मे पधार गये है । ३. जैन साधु लोकोत्तम ग्रर्थात् सब साधुग्रो से उत्तम हैं, क्योकि वे ज्ञान, दर्शन, चारित्र ग्रौर तप के धारक हैं । ४ केवलि प्ररुपित धर्म लोकोत्तम ग्रर्थात् सभी धर्मों से उत्तम है, क्योकि वह सत्य ग्रौर पूर्ण है ।

१. अरिहन्त, २. सिद्ध, ३. साधु और ४. केवलि प्ररूपित धर्म—ये चार मंगल हैं तथा लोकोत्तम हैं। अत. इनकी शरण लेनी चाहिए। इसलिए मैं इनकी शरण लेता हूँ।

पाठ १० दसवाँ

करेमि भन्ते : प्रत्याख्यान का पाठ

करेमि भन्ते! सामाइयं। सावज्ज-जोगं पच्चक्खामि, जाव नियमं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा। तस्स भंते पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।

शब्दार्थ :

प्रतिज्ञा

भन्ते != हे भगवन्! सामाइयं=सामायिक। करेमि= करता हूँ।

द्रव्य से

सावज्ज=सावद्य। जोगं=जोग का। पच्चक्खामि=प्रत्याख्यान करता हूँ।

क्षेत्र से

सम्पूर्ण लोक प्रमाण प्रत्याख्यान करता हूँ।

काल से

जाव=जब तक। **नियमं**=इस नियम का। **पज्जुवासामि**=पालन करता हूँ, तब तक।

भाव से

दुविहं=दो प्रकार के करण से। **तिविहेणं**=तीन प्रकार के योग से। **न करेमि**=सावद्य योग को नही करूँगा। **न कारवेमि**=न दूसरे से कराऊँगा। **मणसा**=मन से। **वयसा**=वचन से। **कायसा**=काया से।

पहले किये हुए पाप के विषय में

भन्ते=हे भगवन्! **तस्स**=उसका (इस सामायिक करने के पहले किये हुए पाप का)। **पडिक्कमामि**=प्रतिक्रमण करता हूँ। **निन्दामि**=निन्दा करता हूँ। **गरिहामि**=गर्हा करता हूँ। **अप्पाणं**=(अपनी पापी) आत्मा को। **वोसिरामि**=वोसिराता हूँ।

◆

पाठ ११ ग्यारहवाँ

करेमि भंते प्रश्नोत्तरी

प्र० भगवान् किसे कहते हैं ?

उ० : साधारणतया अरिहत तथा सिद्ध को भगवान् कहा जाता है, परन्तु यहाँ आचार्य आदि गुरु को भी भगवान् कहा गया है।

प्र० सामायिक किसे कहते हैं ?
उ० जिसके द्वारा समभाव की प्राप्ति हो—ऐसी क्रिया को तथा समभाव की प्राप्ति को सामायिक कहते है।

प्र० : समभाव की प्राप्ति कैसे होती है ?
उ० . विषम भाव को छोडने से।

प्र० · विषम भाव किसे कहते हैं ?
उ० · सावद्य योग को।

प्र० सावद्य योग किसे कहते हैं ?
उ० अट्ठारह पाप तथा अट्ठारह पाप के व्यापार को।

प्र० : अट्ठारह पाप विषम भाव क्यो हैं ?
उ० : १ आत्मा के स्वभाव को समभाव कहते हैं तथा २. आत्मा का स्वभाव जिससे प्राप्त हो, उसे भी 'समभाव' कहते है।

१ जिससे आत्मा का स्वभाव ढँके तथा २. जिससे समभाव की प्राप्ति मे विघ्न हो, उसे 'विषमभाव कहते है।

१ सभी आत्माएँ सिद्ध के समान हैं। इसलिए जो सिद्धो का स्वभाव है, वही आत्मा का स्वभाव है। परन्तु हिंसा आदि करना, क्रोधादि करना, क्लेशादि करना कुदेवादि पर श्रद्धा करना आत्मा का स्वभाव नही है। इन अट्ठारह पापो ने आत्मा के स्वभाव को ढँका है इसलिए अट्ठारह पाप विषमभाव है।

२ आत्मा के स्वभाव को पाने का अर्थात् सिद्ध बनने का उपाय है धर्म। पाप से धर्म मे विघ्न पडता है और धर्म मे विघ्न पडने पर मोक्ष-प्राप्ति मे विघ्न पड़ता है। इसलिए अट्ठारह पाप 'विषमभाव' हैं।

प्र० : सामायिक में अट्ठारह पाप (सावद्य योग) न करने का नियम कब तक पालना पडता है ?

उ० : जितने भी मुहूर्त और उसके उपरात का नियम लिया जाय, उतने समय तक नियम पालना पड़ता है। जैसे, एक मुहूर्त, दो मुहूर्त या तीन मुहूर्त और उसके उपरात जब तक सामायिक न पारले तब तक नियम पालना पडता है।

प्र० मुहूर्त किसे कहते हैं ?

उ० : एक दिन-रात के ३०वे भाग को अर्थात् ४८ मिनिट को मुहूर्त कहते हैं।

प्र० : करण किसे कहते हैं ?

उ० . योगो की क्रिया को। १. करना, २ कराना और ३. करते हुए का अनुमोदन करना, अर्थात् भला जानना —ये तीन 'करण' हैं।

प्र० योग किसे कहते है ?

उ० . करण के साधन को। १ मन, २. वचन और ३ काया—ये तीन 'योग' हैं।

प्र० . क्या सामायिक का नियम जीवन भर तक के लिए और तीन करण तीन योग से नही किया जा सकता ?

उ० . किया जा सकता है। इस प्रकार नियम लेने को दीक्षा कहा जाता है।

प्र० : दीक्षा मे और सामायिक मे क्या अन्तर है ?

उ० . अट्ठारह पाप इन नव प्रकारों से होता है
१ मन से करना, २ कराना और ३ अनुमोदन करना, ४ वचन से करना, ५ कराना और ६ अनुमोदन करना. ७ काया से करना, ८ कराना और

९. अनुमोदन करना। इन नव प्रकारों को 'नवकोटि' कहते हैं। दीक्षा मे १८ पापो का नवकोटि से प्रत्याख्यान करना पडता है और सामायिक मे छह कोटि या आठ कोटि से प्रत्याख्यान करना पडता है। छह कोटि मे तीसरी, छठी और नवमी—ये तीन कोटियाँ खुली रहती हैं तथा आठ कोटि मे मन से अनुमोदन की एक तीसरी कोटि खुली रहती है।

*दीक्षा जीवन भर के लिए ही होती है, जबकि सामायिक इच्छानुसार 'एक मुहूर्त उपरात' आदि के लिए होती है।

प्र० : प्रतिक्रमण किसे कहते है ?

उ० : अतिचार से या पाप से लौटना, पुनः धर्म मे आना।

प्र० निन्दा किसे कहते हैं ?

उ० : १. अल्प रूप से निन्दा करना, २. अट्ठारह पापो की एक साथ निन्दा करना, ३ एक वार निन्दा करना, ४. आत्मसाक्षी से निन्दा करना।

प्र० : गर्हा किसे कहते हैं ?

उ० : १. विशेप रूप से निन्दा करना, २. एक-एक पाप की भिन्न-भिन्न निन्दा करना, ३. बारबार निन्दा करना, ४ देव या गुरु साक्षी से निन्दा करना।

---

*दीक्षापाठ

करेमि भंते ! सामाइयं ॥१॥ सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि ॥२॥ जावज्जीवाए ॥३॥ तिविह तिविहेणं मणेण वायाए काएणं न करेमि, न कारवेमि करंतपि अण्णं न समणुजाणामि ॥४॥ तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥५॥

प्र० : वोसिराने का अर्थ क्या है ?

उ० छोडना, त्यागना ।

प्र० पापी आत्मा और धर्मी आत्मा—इस प्रकार क्या एक ही जीव की दो आत्माएँ होती है ?

उ० . प्रत्येक की आत्मा एक ही होती है, परन्तु जब आत्मा पाप की भावना और पाप की क्रिया करती है, तब वह पापी आत्मा कहलाती है और जब आत्मा धर्म की भावना और धर्म की क्रिया करता है, तव वही आत्मा धर्मी आत्मा कहलाती है । पापी आत्मा को वोसिराने का अर्थ है—पाप-भावना और पाप-क्रिया छोडना ।

प्र० क्या घर, व्यापार, समाज, राज्य आदि सवका कार्य करते हुए सामायिक नही हो सकती ?

उ० . सामायिक मे केवल अनुमोदन की ही कोटि खुली रहती है, शेष रही कोटियो से हिंसा आदि सभी पापो को पूर्ण रूप से त्यागना पडता है ।

घर, व्यापार, समाज आदि के काम करते हुए मोटी-मोटी हिसा आदि पाप ही छूट पाते है, परन्तु सम्पूर्ण हिंसा आदि पाप नही छूट पाते। अत उस समय सामायिक नही हो सकती ।

हाँ, उस समय मोटी हिंसा आदि पापो से छूटने के लिए अहिंसा आदि पॉच अणुव्रत तथा दिग्व्रत आदि तीन गुणव्रत धारण करने चाहिएँ। उनसे सामायिक की अपेक्षा कम, किन्तु खुले की अपेक्षा बहुत समभाव की प्राप्ति होती है ।

प्र० : सामायिक के लिए प्रत्याख्यान (प्रतिज्ञा) आवश्यक क्यो है ?

उ० . प्रत्येक व्रत को प्रत्याख्यानपूर्वक लेने से १. किये जाने वाले व्रत का नाम स्पष्ट होता है। २. उसका स्वरूप समझ मे आता है। ३-४. व्रत के क्षेत्र और काल की मर्यादा निश्चित होती है। ५. व्रत के पालन को कोटि (विधि) का ज्ञान होना है। ६ प्रत्याख्यान मे पूर्व के पापो की निन्दा, गर्हा आदि की जाती है, जिससे प्रत्याख्यान-पालन मे दृढता आती है, इत्यादि, प्रत्याख्यान-पूर्वक व्रत लेने मे कई लाभ हैं।

प्र० सामायिक करने मे आज्ञा आवश्यक क्यो है ?

उ० प्रत्येक व्रतादि कार्य मे आज्ञा लेने से १. अनुशासन का पालन होता है। २ आत्मा मे विनय गुण बढता है। ३ गुरुदेव को हमारी पात्रता का ज्ञान होता है। ४ 'मैं सब-कुछ कर सकता हूँ'—ऐसा अहकार उत्पन्न नही होता। ५. गुरुदेव अवसर आदि के जानकार होते है, वे इस समय यह करना या अन्य कार्य करना—इसका विवेक करा सकते हैं। इत्यादि, आज्ञा लेने मे कई लाभ हैं ?

प्र० गुरु महाराज के न होने पर सामायिक की आज्ञा किन से ली जाय ?

उ० . यदि साधु, साध्वी का योग न हो, तो जानकार या बडे श्रावक, श्राविका की आज्ञा लेनी चाहिए। किसी का भी योग न होने पर उत्तर दिशा, पूर्व दिशा या ईशान कोण मे वन्दना-विधि करके भगवान् महावीर स्वामीजी से आज्ञा लेनी चाहिए।

प्र० क्या सामायिक लेने के लिए केवल यह प्रत्याख्यान का पाठ पढना पडता है ?

उ० · नही। इसके अतिरिक्त और भी विधि करनी पडती है। वह अगले पाठो मे बताई जायगी।

जब तक अन्य पाठ कठस्थ न हो और विधि की जानकारी न हो, तब तक केवल इस पाठ को पढकर ही कई सामायिक व्रत ग्रहण करते हैं।

प्र० . सामायिक पालने की विधि क्या है ?

उ० : वह भी अगले पाठो मे बताई जायगी।

जब तक उसके लिए आवश्यक पाठ कठस्थ न हो और विधि न जाने, तब तक ली हुई सामायिक तीन नमस्कार मन्त्र गिनकर या केवल सामायिक पारने का पाठ पढ कर ही कई सामायिक व्रत पालते है।

प्र० . सामायिक से क्या लाभ हैं ?

उ० · १ अट्ठारह पाप छूटते है। २ समभाव की प्राप्ति होती है। ३. एक घडी साधु-सा जीवन बनता है। ४. जैसे खुले समय मे बडे पशु, पक्षी, मनुष्य आदि की दया और रक्षा की भावना होती है, वैसे ही सामायिक मे छोटे-से-छोटे जीवो की भी दया और रक्षा करना चाहिए—ऐसी भावना उत्पन्न होती है और दृढ बनती है। ५ ससार के कार्य करते हुए अरिहतो की वाणी सुनने-वाचने का अवसर कठिन रहता है, सामायिक करने से वह अरिहतो की वाणी सुनने-वाचने का अवसर मिलता है। ६. सामायिक, पौषध आदि व्रत मे रहे हुए श्रावक-श्राविकाओ की सेवा का लाभ मिलता है। इत्यादि सामायिक से बहुत-से लाभ हैं।

◆

पाठ १२ बारहवाँ

एयस्स नवमस्स : सामायिक पारने का पाठ

१. एयस्स नवमस्स सामाइय-वयस्स पंच अइ-यारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा। तं जहा-मण-दुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे सामाइ-यस्स सइ-अकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया। तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

२. सामाइयं सम्मं काएणं न फासियं न पालियं न तीरियं न किट्टियं न सोहियं न आराहियं। आणाए अणुपालियं न भवइ। तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

हिन्दी पाठ

३. दस मन के, दस वचन के और बारह काया के—इन सामायिक के बत्तीस दोष में से किसी दोष का सेवन किया हो, तो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कडं'।

४. स्त्री-कथा, भात-कथा, देश-कथा और राज-कथा—इन चारों में से कोई विकथा की हो, तो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कडं'।

५. आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रह संज्ञा—इनमें से कोई संज्ञा की हो, तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

शब्दार्थ :

एयस्स=इस। **नवमस्स**=नववें। **सामाइय**=सामायिक। **वयस्स**=व्रत के। **पंच**=पाँच। **अइयारा**= अतिचार। **जाणियव्वा**=जानने योग्य हैं। **समायरियव्वा**=आचरण करने योग्य। **न**=नहीं है।

तंजहा=वे इस प्रकार है :

मण=मन का। **दुप्पणिहाणे**=दुष्प्रणिधान। **वय**= वचन का। **दुप्पणिहाणे**=दुष्प्रणिधान। **काय**=काया का। **दुप्पणिहाणे**=दुष्प्रणिधान। **सामाइयस्स**=सामायिक की। **सइ**=स्मृति। **अकरणया**=न करना (न रखना)। **सामा-इयस्स**=सामायिक को अनवस्थित। **करणया**=करना।

यदि ये अतिचार लगे हो, तो

मि=मेरा। **दुक्कड**=दुष्कृत (पाप)। **मिच्छा**=मिथ्या (निष्फल) हो।

सम्मं=सम्यक रूप में। **काएणं**=काया से। **सामाइयं**= सामायिक का। १. **फासियं**=(प्रारभ मे प्रत्याख्यान का पाठ न पढने से स्पर्श। **न**=न किया हो। २. **पालियं**=(मध्य में सावद्ययोग न छोड़ने से) पालन। **न**=न किया हो। ३. **तीरियं**= (सामायिक को अन्त मे पॉच मिनट अधिक न बढ़ाने से) तीर पर। **न**=न पहुँचाई हो। ४. **किट्टियं**=(सामायिक समाप्त होने पर सामायिक के गुणो आदि का) कीर्त्तन। **न**=न किया हो। ५. **सोहियं**=(सामायिक मे लगे अतिचारो की आलोचना प्रतिक्रमण करके सामायिक को) शुद्ध। **न**=न बनाई हो। **आराहियं**=(इस प्रकार सामायिक की) आराधना। **न**=न

की हो। **आणाए**=(अरिहंत भगवान् की आज्ञानुसार सामायिक की) अनुपालना। **न**=न। **भवई**=हुई हो।

तो

तस्स=उसका। **मि**=मेरा। **दुक्कडं**=दुष्कृत (पाप)। **मिच्छा**=मिथ्या (निष्फल) हो। **विकथा**=सामायिक (संयम) की विराधना करने वाली कथा। १. **स्त्रीकथा**=स्त्री की, (क) जाति की, (ख) कुल की, (ग) रूप की, (घ) वेश की आदि की निन्दा या प्रशंसा-रूप कथा करना। २ **भक्तकथा**=(क) भोजन में इतना घी आदि लगा, (ख) इतने पकवान बने, (ग) इतनी वनस्पति लगी, (घ) इतने रुपये व्यय हुए आदि या निन्दा-प्रशंसा-रूप कथा करना। ३ **देशकथा**= (क) अमुक देश में उस लडकी से लग्न किया जाता है, (ख) वैसा भोजन जिमाया जाता है, (ग) वैसे मकान बनाये जाते हैं, (घ) स्त्री-पुरुष वैसे वेश पहनते हैं—इत्यादि निन्दा या प्रशंसा-रूप कथा करना। ४. **राजकथा**=(क) अमुक राजा घूमने आदि के लिए राजधानी से ऐसे ठाटबाट से निकला, (ख) उसने विजय आदि करके इस प्रकार राजधानी में प्रवेश किया, (ग) अमुक राजा के पास या राज्य में इतनी सेना, शस्त्र आदि है, (घ) इतने धन-धान्य आदि के कोष, कोष्ठागार हैं—आदि निन्दा या प्रशंसा-रूप कथा करना।

संज्ञा=अभिलाषा। १. **आहार-संज्ञा**=सामायिक में भोजन आदि की अभिलाषा। २. **भय-संज्ञा**=भयंकर देव, हिंस्र पशु आदि से डरना। ३. **मैथुन-संज्ञा**=स्त्री आदि के कामभोग की अभिलाषा। ४. **परिग्रह-संज्ञा**=धर्मोपकरण के अतिरिक्त सम्पत्ति की अभिलाषा तथा धर्मोपकरण पर मूर्च्छा।

पाठ १३ तेरहवाँ

'एयस्स नवमस्स' प्रश्नोत्तरी

प्र० : अतिचार किसे कहते है ?

उ० : व्रत के तीसरे दोष को। व्रत भग करने का विचार होना १. 'अतिक्रम' है। साधनो को जुटा लेना २. 'व्यतिक्रम' है। व्रत को कुछ भग करना ३. 'अतिचार' है तथा व्रत को सवथा भग कर देना ४. 'अनाचार' है। ये व्रत के सब चार दोष हैं।

प्र० : 'दुष्प्रणिधान' किसे कहते हैं ?

उ० : मन, वचन या काया के योग को अशुभ प्रवृत्ति मे लगाना तथा अशुभ प्रवृत्ति मे एकाग्र बनाना 'दुष्प्रणिधान' है।

प्र० : सुप्रणिधान किसे कहते है ?

उ० : मन, वचन या काया के योग को शुभ प्रवृत्ति मे लगाना तथा शुभ प्रवृत्ति मे एकाग्र बनाना 'सुप्रणिधान' है।

प्र० : सामायिक की स्मृति न रखने का क्या भाव है ?

उ० : १. सामायिक का प्रत्याख्यान लेना ही भूल जाना। २ 'अभी मैं सामायिक मे हूँ'—यह भूल जाना। ३. 'मैंने सामायिक कब ली', ४ 'कितनी ली'—यह भूल जाना। ५ 'वर्ष मे या महीने मे इतनी सामायिक करूँगा'—इस प्रकार लिए हुए प्रत्याख्यान को भूल जाना। इत्यादि।

प्र० : सामायिक को अनवस्थित करने का क्या भाव है ?

उ० : १. सामायिक विधि से न लेना। २. विधि से न

पारना। ३. सामायिक का काल पूरा होने से पहले पारना। ४. सामायिक से ऊबना ५. सामायिक कब पूरी होगी—इस प्रकार विचार करना, बार-बार घड़ी की ओर देखते रहना। ६ वर्ष मे या महीने मे जितनी सामायिकें करने का प्रत्याख्यान किया हो, उतनी सामायिकें न करना। ७. सामायिक जिस समय, प्रात, सध्या, पक्षी, (पक्खी) आदि को करने का नियम लिया हो, उस समय न करना। इत्यादि।

प्र० : अनाचार के समान अतिक्रमादि तीन का 'मिच्छा मि दुक्कडं' क्यो नही ?

उ० : अतिक्रम और व्यतिक्रम से अतिचार बड़ा है, अत. अतिचार के मिच्छा मि दुक्कड से अतिक्रम व्यतिक्रम का भी 'मिच्छा मि दुक्कड' समझ लेना चाहिये। अनाचार से सामायिक पूरी भग हो जाती है, इसलिए अनाचार के लिए तो फिर से सामायिक करनी पडती है।

प्र० : सामायिक के गुणादि का कीर्त्तन कैसे करना चाहिए ?

उ० : १. सामायिक के लाभ पहले बताए जा चुके हैं। उनका कीर्त्तन करना। २. सामायिक को बताने वाले अरिहत देव तथा गुरु का कीर्त्तन करना—जैसे 'धन्य है, अरिहतों को तथा गुरुदेवो को, जिन्होने सामायिक जैसी महान् फलवाली क्रिया बतलाई।' ३. सामायिक करके अपने को धन्य मानना—जैसे 'आज का दिन धन्य है कि मैं सामायिक कर सका'। ४. सामायिक की भावना करना—जैसे 'ऐसी सामायिक मुझे प्रतिदिन होती रहे'। इत्यादि।

प्र० : विराधना किसे कहते हैं ?
उ० . स्पर्श आदि पाँच बोल मे से एक भी बोल व्रत को साधना मे कम होना ।

प्र० · आराधना किसे कहते हैं ?
उ० . स्पर्श आदि पाँच बोल सहित व्रत की साधना करना ।

◆

पाठ १४ चौदहवाँ

सामायिक के उपकरण

विजयकुमार एक छोटे गाँव का विद्यार्थी था। वह शिक्षण के लिए बडे नगर मे आया। वहाँ उसने लौकिक शिक्षा के साथ जैनशाला मे धार्मिक शिक्षा भी पाई।

जब वह घर लौटा, तो अपने छोटे भाई जयन्त के लिए दूसरी-दूसरी वस्तुओ के साथ सामायिक के उपकरण भी खरीद कर ले गया।

उस छोटे गाँव मे साधुओ का पधारना नही हो पाता था। न वहाँ कोई जैनशाला थी। जैन के नाम पर उस गाँव मे अकेले उसी का घर था। धर्मशीला माता का स्वर्गवास हो गया था। पिता खेती-बाडी करते थे। उनकी धर्म मे कोई रुचि न थी, इसलिए जयन्त को कोई धार्मिक सस्कार नही मिल सके थे।

विजय की इच्छा थी—मै जयन्त को भी धार्मिक बनाऊँ, क्योकि धर्म बहुत लाभकारी है। यदि मैं उसको भी धार्मिक बना सका, तो वह मेरे लिए इस छोटे गाँव मे धर्म का साथी बन जायगा।

घर पहुँचने पर छोटे भाई जयन्त ने विजय का बहुत स्वागत किया। भोजन-पान आदि हो जाने पर विजय ने जयन्त को अन्य सब वस्तुएँ देने के साथ सामायिक के उपकरण भी दिये।

जयन्त : ये सब क्या हैं ?

विजय : धर्म के उपकरण हैं।

जयन्त : उपकरण किसे कहते है ?

विजय : धर्म की करणी मे सहायक साधनो को।

जयन्त : (आसन को देखकर) भय्या ! यह कपडे का जाडा टुकडा क्या है ? यह किस काम मे आता है ?

विजय : इसका नाम 'आसन' है। यह धर्म-क्रिया करते समय बैठने के काम मे आता है। यह लगभग हाथ भर लम्बा-चौडा है, अत इस पर सुविधा से बैठ सकते हैं। सामायिक नामक जो धर्म-क्रिया है, उसमे पैरो को लम्बा नही किया जाता, अत यह इतना छोटा है।

जयन्त : क्या सामायिक गद्दी, गद्देदार कुर्सी, पलग आदि पर बैठकर नही की जा सकती ?

विजय : नही। क्योकि उसमे १ आराम बढ़ता है, २. आलस्य बढता है, ३ अहकार बढता है। सामायिक मे १. परीषह (कष्ट) सहना चाहिए, २. आलस्य नही करना चाहिए व ३ अहकार दूर करना चाहिए।

एक बात यह भी है—उनमे बिनौले आदि हो सकते हैं, वे जीव सहित होते हैं। उन पर बैठने पर उनके ४. जीवों की हिंसा होती है।

साथ ही यदि उनमे कोई कीडी आदि छोटे जीव घुस जायँ, तो उनकी रक्षा के लिए उन्हे वहाँ देखना और निकालना कठिन हो जाता है।

जयन्त : (धोती देखकर) भय्या! तुम तो पेण्ट, चड्डी, पायजामा आदि पहनने वाले हो, इसलिए इसकी क्या आवश्यकता है?

विजय : सामायिक मे पेण्ट, चड्डो, पायजामा, कुरता, बनियान आदि धर्म-अयोग्य वेश नही पहने जाते। सामायिक मे धर्म के योग्य वेश धोती, दुपट्टा आदि पहने या ओढे जाते हैं। इसलिए धोती के साथ यह दुपट्टा भी है।

जयन्त : सामायिक मे धर्म-अयोग्य वेश क्यो नही पहना जाता? धर्म-योग्य वेश क्यो पहना जाता है?

विजय : १. धर्म-अयोग्य वेश मे कोई छोटे कीडी आदि जीव घुस जायँ, तो उनकी रक्षा के लिए उन्हे देखना और निकालना कठिन हो जाता है।

२ धर्म-अयोग्य वेश पलटकर धर्म-योग्य वेश पहनने से सासारिक भावनाओ के परिवर्तन मे सहायता मिलती है। जैसे सैनिक वेश पहनने से कायरता की भावना मिटकर वीरता की भावना जगती है।

३. धर्म-अयोग्य सासारिक वेश पलटने मे यह लाभ भी है कि दूसरे लोग समझ जाते हैं कि 'यह धर्म-क्रिया

कर रहा है।' इससे वे हमे कोई सासारिक वात नही कहते या हमारे सामने कोई सासारिक वात नही करते।

जयन्त : (मुख-वस्त्रिका देखकर) यह क्या है? क्या यह टुकडा पसीना पोछने के लिए है? परन्तु यह कुछ जाडा है, पसीना पोछने के लिए पतला कपडा अच्छा रहता है। यह कपडा चौकोर भी नही और इस कपडे के ऊपर डोरी क्यो है?

विजय : इस कपडे को 'मुख-वस्त्रिका' कहते है। यह अपने-अपने हाथ से सोलह अगुल चौडा और इक्कीस अगुल लम्वा होता है। पहले इसकी चौडाई को घडी करके आधी की जाती है। पीछे लम्वाई को दो वार घडी करके पाव की जाती है। तव यह कपडा आठ अंगुल चौड़ा और लगभग पाँच अगुल लम्वा रह जाता है और आठ पट वाला वन जाता है।

चार पट ऊपर और चार पट नीचे करके इसके वीच यह डोरी डाली जाती है और फिर (मुँह पर वाँध कर दिखाते हुए) इस प्रकार मुँह पर वाँधी जाती है।

जयन्त : इसे ऐसी वना कर मुँह पर क्यो वाँधी जाती है?

विजय : १. हमारे मुँह से वोलते समय जो वेगवान् वायु निकलने लगती है, उससे वाहरी वायु के जीव टकरा कर मर जाते है। वायु भी जीवरूप है। इसे आठ पट करके मुँह पर वाँधने पर मुँह से जो वायु वेग से निकलती है, वह इस मुख-वस्त्रिका से टकरा कर इधर-उधर फैल जाती है, अत इससे वायु के जीवो की हिंसा रुकती है। इस प्रकार यह मुख-वस्त्रिका

वायुकाय के जीवो की रक्षा के लिए ऐसी बना कर मुंह पर बाँधी जाती हैं। २. मुख-वस्त्रिका मुंह पर बँधी होने से त्रस जीव मुंह में प्रवेश करके मरते नहीं तथा ३. मुंह का थूक दूसरे पर या पुस्तकों पर गिरता नही—इसलिए भी यह मुंह पर बाँधी जाती है। ४. यह मुख-वस्त्रिका जैन धर्म का ध्वज (झण्डा) है—इसलिए भी इसे शरीर के मुख्य भाग मुख पर बाँधी जाती है।

जयन्त : मुख-वस्त्रिका पतले कपडे की क्यों नही बनाई जाती है?

विजय : मुख-वस्त्रिका पतले कपडे की बनाने पर १. उससे वायु का वेग ठीक रुक नही पाता। २. कभी-कभी वह मुंह मे आने लगती है, जिससे बोलने मे कठिनता हो जाती है। ३. पतले कपडे की मुंहपत्ति नीचे के दोनो कोनों से बहुत मुड जाती है—इसलिए भी मुख-वस्त्रिका पतले कपड़े की नही बनाई जाती।

जयन्त : मुख-वस्त्रिका जाडे कपडे की क्यो नही बनाई जाती है ?

विजय : जाडे कपड़े की मुख-वस्त्रिका से बाहर शब्द स्पष्ट और तेज निकल नही पाता, इसलिए।

जयन्त : यदि जाडे कपडे की चार पट की या पतले कपडे की सोलह पट की मुख-वस्त्रिका बना ली जाय, तो क्या आपत्ति है ?

विजय : इससे व्यवस्था और एकता भग हो जाती है।

जयन्त : यदि मुख-वस्त्रिका को हाथ में पकड कर मुंह के सामने रख ली जाय, तो क्या आपत्ति है ? उसमे डोरा डालना आवश्यक क्यो है ?

विजय : १ भगवान् की स्तुति आदि कई बाते हाथ जोड कर की जाती हैं और उस समय अधिकतर हाथ मुंह से दूर रहते हैं। यदि हाथ मे मुख-वस्त्रिका रक्खी जाय, तो उस समय मुँह पर मुँहपत्ति नहीं रह सकती। २ दो-तीन घण्टे तक लगातार सामायिक मे बोलना पडे, तो हाथ के सहारे मुँह पर मुँहपत्ति रखना कठिन हो जाता है। ३. 'मैं अभी नही बोल रहा हूँ'—यह सोच कर यदि हाथ की मुँहपत्ति इधर-उधर रखने मे आ जाय, इधर इतने मे यदि खाँसी, जभाई आदि आ जाय और ढूंढने से समय पर मुँहपत्ति न मिले, तो अयतना (जीवहिंसा) होती है। ४ हाथ मे मुँहपत्ति रखने वाला, जब-जब आवश्यक हो, तब तक मुख-वस्त्रिका को मुँह पर लगा लेने का ध्यान रख ले—यह सम्भव नही, क्योकि सामान्यतया मनुष्यो मे इतना उपयोग (विवेक) नही रहता। इसलिए मुखवस्त्रिका मे डोरा डाल कर उसे मुँह पर बाँधना आवश्यक है।

जयन्त : अच्छा, और यह छोटे झाड़ू-सा क्या है तथा यह किस काम मे आता है ?

विजय : इसे 'पूँजनी' कहते है। १ आसन बिछाने से पहले इसके द्वारा भूमि को पूंज ली जाती है, जिससे कोई जीव आसन के नीचे दब कर मर न जाय। २ कोई कीडी-मकोडी आदि जन्तु आसन पर चढ जाय, तो इससे उसे धीरे-से दूर कर दिया जाता है। ३ यदि कोई डास-मच्छर हमे काटे, तो हाथ से खुजालने से वह कभी-कभी मर तक जाता है, इससे पहले उसे

हटा कर फिर खुजलाने से उसकी हिंसा नही होती।
४. रात को कही जाना-आना पडे, तो पहले इससे भूमि पूँज कर मार्ग-शुद्ध किया जाता है, जिससे जीव हिसा न हो, इत्यादि यह पूँजनी कई कामो में आती है।

जयन्त : यह ऊन से क्यो बनाई जाती है ?

विजय : क्योकि यह १ कोमल रहे। कठिन झाडू से छोटे कोमल जीव मर जाते है, इसलिए पूजनी कोमल होना आवश्यक है। २. ऊन से बनवाने का दूसरा लक्ष्य यह है कि यह शीघ्र मैली नही होती।

जयन्त इसमें यह डडी क्यो लगी है ?

विजय : सुविधापूर्वक पकड कर पूँजने के लिए। इसे बहुत सावधानी से रखनी चाहिए। तेजी से गिरने पर इससे भी जीवहिसा हो सकती है।

जयन्त : अच्छा, इस माला का नाम क्या है, यह किस काम मे आती है ?

विजय : इस माला का नाम 'नमस्कारावली' (नवकार वाली) है, क्योकि अधिकतर इससे नमस्कार नामक मन्त्र गिना जाता है। तीर्थंकरो के नाम का जप करते समय भी यह काम आती है। और भी जप या अन्य स्मरण के समय यह सख्या जानने के काम मे आती है।

जयन्त : इसमे कितनी मणियाँ होती हैं ?

विजय : इसमे १०८ मणियाँ होती हैं। एक-एक मणि को एक-एक नमस्कार-मन्त्र गिनकर खिसकाया जाता है, जिससे १०८ नमस्कार मन्त्र की एक माला पूरी हो जाती है।

जयन्त : इसमे जो फुन्दा लगा है, उसे क्या कहते है ?

विजय : उसे 'मेरू' कहते हैं। उसकी मणि में गिनती नहीं है। वहाँ पहुचने पर माला समाप्त हो जाती है।

जयन्त : यह माला सादी और अल्प मूल्य वाली क्यो है ?

विजय : क्योकि मन धर्म मे लगा रहे, इसके रूप-रग मे मन न चला जावे।

जयन्त : (एक छोटी-सी पुस्तक उठाकर देखते हुए) यह पुस्तक किसकी है ? (कुछ पन्ने उलट कर) इसमें सब अंक ही अक क्यो हैं तथा २-५-३-१-४ यों उल्टे-सुल्टे अक क्यो हैं ?

विजय : यह पुस्तक आनुपूर्वी की है। इसमे छपे हुए अंको के इस क्रम को आनुपूर्वी कहते हैं। इसमे जहाँ जो अक है, वहाँ नमस्कार मन्त्र के उस अंक वाले पद का उच्चारण किया जाता है। जैसे, जहाँ एक है, वहाँ 'णमो अरिहताण' का उच्चारण किया जाता है। इसमे सब २० कोष्ठक (कोठे) हैं। प्रत्येक कोष्ठक में १ से ५ तक अंक ६ वार दिये हैं। इसलिए आनुपूर्वी को गिनने से नमस्कार मन्त्र का १२० वार स्मरण हो जाता है।

इसमे उल्टे-सुल्टे अंक इसलिए हैं कि मन स्थिर रह सके। क्योकि मन स्थिर रहे विना 'कहाँ क्या वोलना'—इसका ध्यान नही रह सकता।

जयन्त : मन स्थिर करने की क्या आवश्यकता है ?

विजय : स्थिर मन से किया हुआ जप आदि काम अधिक फलदायी होता है।

जयन्त : और यह पुस्तक किसकी है। इसमे यह सब क्या लिखा है ?

विजय : यह धार्मिक पुस्तक है। १. इसमे कई तत्व-ज्ञान की बाते है, जिससे ज्ञान बढता है। २ कई तीर्थंकर आदि महापुरुषो की कहानियाँ है, जिससे अनुकरण की भावना जगती है। ३. कई अच्छी-अच्छी स्तुतियाँ है। जिससे मन पवित्र बनता है और ४. कई सुन्दर-सुन्दर उपदेश है, जिससे आत्मा सुधरती है।

जयन्त : ये सब धार्मिक उपकरण तुम कहाँ से लाये ?

विजय : मैं जिस नगर मे पढता हूँ, वहाँ की जैनशाला से।

जयन्त : ये सब क्यो लाये ?

विजय : इसलिए कि तुम भी धर्म करो और धार्मिक बनकर मेरे सच्चे धर्म-भाई बनो। बोलो, धर्म करोगे ? मेरे सच्चे भाई बनोगे ?

जयन्त : अवश्य !

◆

पाठ १५ पन्द्रहवाँ

विवेक

आज जैनशाला मे नये शिक्षक श्रावकजी की नियुक्ति हुई थी। वे समय से पहले जैनशाला मे पहुँचे, पर शाला मे कोई छात्र उपस्थित न था।

जैनशाला आरम्भ होने के समय से लगभग १५ मिनिट से भी पीछे निर्दोषचन्द्र, तटस्थकुमार और उपकारनाथ जैनशाला मे आते दिखाई दिये। वे तीनो ही जैनशाला के नामाङ्कित छात्र थे।

तीनो मुंह मे कुछ खाते चले आ रहे थे। निर्दोषचन्द्र

सबसे आगे था। उसकी आँखें कभी ऊपर और कभी तिरछी देख रही थी। अचानक उसे पत्थर की ठोकर लगी और वह मुंह के बल नीचे गिर पडा।

तटस्थकुमार और उपकारनाथ दोनो एक-दूसरे के गले मे हाथ डाले पीछे चले आ रहे थे। उपकारनाथ ने निर्दोषचन्द्र को नीचे गिरते देखा, तो बहुत हँसा। उसने कहा · धन्यवाद, निर्दोष ! बडा अच्छा उपकार का काम किया। बेचारी कीड़ियाँ इस योनि मे बहुत दु-ख पा रही थी, तुमने उन्हे इस दु खभरी योनि से छुडाकर उन पर बहुत ही उपकार किया है।

तटस्थकुमार ने उपकारनाथ से कहा : उपकार ! देखो, कर्म कितने न्यायवान हैं ! कल उसने तुम्हे गिराया, तो आज वह ठोकर खाकर स्वय गिर गया। कर्म न्याय करने मे देर करते हैं, अन्धेर नही।

निर्दोषचन्द्र किसी तरह सँभला। उसने अपने मुँह की धूल झाड़ी, कपडे ठीक किये और शाला मे प्रवेश किया।

अध्यापकजी देख रहे थे कि ये पीछे आनेवाले छात्र अपने साथी की इस दशा को देखकर क्या करते हैं ? परन्तु उन्होने जो-कुछ देखा-सुना, उससे उन्हे बहुत दु'ख हुआ। वे निर्दोषचन्द्र के पास पहुँचे। जहाँ उसे लगी थी, उसे दबाया। जहाँ-कही चोट आई थी, उस पर औषधि की।

पीछे उससे प्रेमपूर्वक मधुर शब्दो मे कहा देखो, सदा नीचे देखकर चला करो। १ इससे कीड़ी आदि जीवो की रक्षा होती है, २. हम भी ठोकर से बचते हैं और ३. कोई वस्तु पड़ी हुई हो, तो वह मिल भी जाती है।

निर्दोष : (अपने को निर्दोष बताते हुए) श्रीमान्जी ! मैं तो अपने पाठ को दुहराता चला आ रहा था। मेरा

ध्यान इधर-उधर नही था। परन्तु अन्य छात्र बडे अविवेकी है। उन्होने पत्थर को रास्ते मे ही लाकर रख दिया। फिर ठोकर न लगे, तो और क्या हो ?

उपकारनाथ और तटस्थकुमार दोनो आकर भूमि पर ही प्रवेश-द्वार पर बैठ गये। टाग पर टाग चढा ली और शाला के बाहर की ओर देखने लगे।

अध्यापकजी ने उन दोनो की ओर देखते हुए कहा . देखो, छात्र-अवस्था मे खाते हुए परस्पर गले मे हाथ डाले चलना नहीं चाहिए। फिर जैनशाला मे आते समय तक इस प्रकार की प्रवृत्ति वहुत अनुचित है।

जब तुम्हारा साथी ठोकर खाकर गिर पडा, तब तुम केवल देखते रहे, हँसते रहे और बाते छाँटते रहे—पर इसकी कोई सेवा न की। करुणा के प्रसग पर सदा ही अनुकपा-भाव सहित सेवा के लिए तत्पर रहना चाहिए।

तुम तीनो जैनशाला मे कितनी देरी से पहुँचे हो ? यहाँ समय पर पहुँचना चाहिए। और अव इस प्रकार अभिमान के आसन से बैठ गये हो। अपने-से बडो के सामने विनय के आसन से बैठना चाहिए तथा तुम्हारा अपना आसन कहाँ है ? तुम्हारा बैठने का स्थान कौनसा है ? सदा आसन लगाकर अपने स्थान पर बैठना चाहिए। हाँ, अब सामायिक लो और अध्ययन आरम्भ करो।

उपकार : आपने शिक्षा देकर हम पर वहुत उपकार किया है, पर श्रीमान्‌जी ! आप आज ही पधारे हैं, अत आज तो सामायिक से छुट्टी मिलनी चाहिए। फिर कभी आप कहेगे, तो हम आपको दो-चार सामायिक अधिक कर देगे।

तटस्थ : (टोंकते हुए कडे स्वर मे) उपकार ! तुम्हे इस प्रकार नये अध्यापकजी को उत्तर नही देना चाहिए। यह अनुशासन का भग है। परन्तु अब पाठशाला का इतना समय नही रहा कि सामायिक आ सके, अत. अध्यापकजी का सामायिक के लिए कहना भी अविवेक है।

अध्या० : तटस्थकुमार ! यदि कभी सामायिक जितना समय नही रह जाता, तो थोडे समय का 'सवर' (अट्ठारह पाप का एक करण, एक योग से त्याग) किया जा सकता है। समय को जितना भी हो, सार्थक बनाना चाहिए।

फिर आज लोक (व्यावहारिक) पाठशाला की छुट्टी है। यहाँ का समय पूरा होने पर तुम्हे जाना कहाँ है? आज एक के स्थान पर तीन सामायिके कर सकते हो। आज विलम्ब से पहुँचे—इसके पश्चाताप के रूप मे भी तुम्हे छुट्टी के दिन एक सामायिक विशेप करनी चाहिए। खेलो से भी आत्मा के कल्याण के लिए अधिक रुचि रखनी चाहिए।

तुम्हे यह बात भी ध्यान मे रखनी चाहिए कि बडो की भूल हो, तो भी उसे अविनय के साथ मत कहो, किन्तु उन्हे विनय से निवेदन करो। यह भी हो सकता है कि उनकी उचित शिक्षा तुम्हे तुम्हारी अल्प बुद्धि के कारण समझ मे न आवे, अत बड़ो की वात अविवेकपूर्ण है—ऐसा शीघ्र निर्णय करना ठीक नही है।

निर्दोषचन्द्र ने (यह सुनकर) शीघ्रता से कुरता उतारा। आसन खोला। ज्यो-त्यो मुंह पर मुँहपत्ति बाँधी और शरीर पर दुपट्टा डालते हुए कहा· श्रीमान्‌जी! देखिये, मुझे चोट आ गई है, फिर भी मैंने बिना आपके कहे ही सामायिक ले ली है। मैं कितना विवेकशील हूँ?

आ० : धन्यवाद! पर अपनी मुँहपत्ति देखो—कितनी टेढी-मेढी है और उसे उल्टी ही बाँध ली है। इसका डोरा भी ऊपर का नीचे और नीचे का ऊपर बाँध लिया है। मुँहपत्ति ठीक करो।

और देखो, तुम्हारे नाक में श्लेष्म आ रहा है, वह इस पर भी कुछ लग गया दीखता है—उसे शुद्ध करो। श्लेष्म में समूर्च्छिम नामक जीवो की उत्पत्ति हो जाती है।

हाँ, नाक शुद्ध करते समय भूमि का ध्यान रखना। कही वहाँ जीव न हो, जो श्लेष्म से दब कर मर जायँ। श्लेष्म वोसिराने के साथ उस पर धूल-राख आदि डाल देनी चाहिए, ताकि उस पर बैठने पर मक्खी आदि उसी में चिपक कर मर न जाय।

(निर्दोषचन्द्र नाक शुद्ध करके आ गया। उसके पश्चात्)

तुमने कुरता खोल कर दुपट्टा तो पहन लिया, पर पायजामा अब तक पहने हुए हो। सामायिक में धोती पहननी चाहिए और वह भी लांग न लगाते हुए पहननी चाहिए।

हाँ, एक बात और है। तुम्हें सामायिक की विधि आदि ध्यान में होते हुए भी बिना विधि सामायिक क्यो ली? पुन. विधि करो और फिर सामायिक लो।

निर्दोष : श्रीमान्‌जी ! यह सब भूल उपकारनाथ की है। आप तो नये आये हैं। पुराने अध्यापकजी ने उपकारनाथ से कहा था कि मुझे सामायिक की विधि और उपकरणो के सम्बन्ध मे बतावे, पर उसने आप जैसे नहीं बताया।

मैंने जो मुंहपत्ति बाँधी, वह इसी ने इस प्रकार बाँधना सिखाई। इसने धोती को पहनना अनावश्यक बताया और केवल प्रतिज्ञा-सूत्र से ही सामायिक प्रत्याख्यान का काम निकल सकता है—ऐसा कहा। मैं इसमे पूरा निर्दोष हूँ।

उपकारनाथ ने सामायिक का वेश पहन कर सामायिक की विधि के साथ प्रत्याख्यान का पाठ पूरा करते हुए कहा :

श्रीमान्‌जी ! यह निर्दोष झूठ बोलता है। देखिये, मेरी मुख-वस्त्रिका कितनी अधिक धुली हुई, कितनी सुन्दर जमी हुई और कितनी कुशलता से मुंह पर पहनी हुई है। क्या मैं इसे ऐसी मुंहपत्ति बाँधना सिखाता ?

मैंने सांसारिक वेश पूरा त्याग दिया है और पूरा सामायिक वेश पहन लिया है तथा विधि से सामायिक ग्रहण की है। निर्दोष को चाहिए कि वह मुझ से इन सब बातों की अमूल्य शिक्षा ग्रहण करे। मै सब के लिए स्वय को आदर्श उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत करने की महान् सेवा बजाता हूँ, परन्तु यह मेरा उपकार ही नही मानता। कृतघ्न कहीं का !

तटस्थकुमार भी अब तक पूरे तैयार हो चुके थे। उन्होने कहा :

उपकारनाथ अवश्य ही ऐसे हैं, जिनसे शिक्षा ली जा सकती है। परन्तु इनकी पूंजनी और माला की क्या अवस्था है? ये केवल अपनी मुख-वस्त्रिका सजाने का काम करते है। पूंजनी और माला के प्रति ध्यान नही देते।

इनकी डण्डी पर न तो फलियाँ ठीक लिपटी हुई हैं, न उन्हे डोरे से ठीक बाँधा गया है। फलियाँ ऊँची-नीची दीख रही हैं और डोरा लटक रहा है।

माला का डोरा चार बार तोड दिया। जहाँ-तहाँ उसने गाँठे लगा दी हैं और एक स्थान पर तो अब तक गाँठ भी नही लगी है। मणियाँ कई बार बिखर चुकी हैं। अब इनकी माला मे ८० मणियाँ भी नही रही होगी।

अध्या० : उपकारनाथ! तटस्थकुमार जो-कुछ कह रहा है, यदि वह सत्य है, तो वैसा नही होना चाहिए। उपकरण धर्म मे सहायक हैं, उनकी उपेक्षा अच्छी नही। उनको सदा व्यवस्थित और सम्भाल कर रखना चाहिए और हाँ, देखो, उपकारनाथ! यदि कोई असत्य बोलता भी हो, तो उसके प्रति व्यग करना, क्रोध करना या कलहभरी वाणी कहना ठीक नही। अच्छे विद्यार्थियो-को शात रहना चाहिए। प्रत्येक विद्यार्थी को अपना मित्र समझते हुए उसके साथ 'मित्रता बने और मित्रता बढे'—ऐसी वाणी बोलनी चाहिए। पुत्र की कलहभरी वाणी माँ को भी अच्छी नही लगती, तो वह दूसरो को कैसे अच्छी लग सकती है? सदा ही मिश्री-सी मधुर वाणी बोलनी चाहिए। (तटस्थकुमार की ओर देखते हुए) और देखो,

तटस्थकुमार ! किसी की चुगली खाना भी एक पाप है। इससे आपस मे वैर-विरोध वढता है। अपने समान साथी की सब के सामने निन्दा करना और भी ठीक नही। सब से अच्छा यह है कि उसे एकान्त में चेता दो। यदि इससे वह न सुधरे, तो एकान्त में वडो से कह दो।

(निर्दोषकुमार की ओर देख कर) अच्छा, अब निर्दोष ! अपनी पुस्तक लाओ। अब तक तुम्हारे कितने पाठ हुए है ?

निर्दोष : (श्रावकजी को पुस्तक देते हुए) अब तक चौदह पाठ हुए हैं।

श्रा० : (पुस्तक देखकर) निर्दोष ! देखो, पुस्तक की क्या दशा हो गई है ? अब तक पुस्तक आधी भी नहीं हो पाई कि पन्ने फट गये है, इसके चारो ओर कितनी धूल लगी है। इसमे कई स्थानो पर तैल आदि के कलङ्क (वव्वे) भी लग गये हैं।

निर्दोष : श्रीमान्‌जी ! पुस्तक की ऐसी दशा वनने मे मेरा कोई दोष नही है। एक वार मेरा छोटा भाई रो रहा था। मैंने उसे यह पुस्तक खेलने को दी, परन्तु उसने इसके पन्ने फाड़ डाले। एक वार मैंने यह पुस्तक घर के द्वार पर रखी, सेवक ने वही सारे घर का कचरा इकट्ठा कर दिया। एक बार यही जैनशाला मे हमे मिठाई खिलाई गई, उसके कण इस पुस्तक मे चिपक गये। वताइए, इसमे मैं दोषी हूँ या मेरा छोटा भाई, सेवक और हमे मिठाई खिलाने वाले दोषी है ?

अध्या० : देखो, निर्दोष ! अपना दोष होते हुए भी दोष न स्वीकारने से सुधार नही होता । बच्चे को खेलने के लिए खिलौना दिया जाता है, पुस्तक कोई खिलौना नही है । बच्चो को पुस्तक देने से पुस्तक फटने का भय रहता है, इसलिए उन्हे पुस्तक नही देनी चाहिए । तुमने घर के द्वार पर पुस्तक रखने की असावधानी क्यो की ? वहाँ तो कचरा इकट्ठा किया ही जाता है । सेवक को भले ध्यान न पहुँचा हो, पर तुम्हारा कर्त्तव्य था कि 'तुम अपनी पुस्तक को कही ऊँचे और सुरक्षित स्थान पर रखते ।' मिठाई देने वाले तुम्हारा उत्साह बढाने के लिए और तुम्हारे प्रति अपना प्रेम प्रकट करने के लिए मिठाई देते है, परन्तु तुम उल्टे उन्हे दोषी बना रहे हो ! मिठाई आदि खाते समय अपनी पुस्तक को एक ओर रखकर फिर मिठाई आदि को शान्ति से और धीरे खानी चाहिए, जिससे पुस्तक न बिगडे ।

(उपकारनाथ की ओर मुंह करके) अच्छा, उपकारनाथ ! तुम अपनी पुस्तक बताओ ।

उपकार : (अपनी पुस्तक श्रावकजी को देते हुए) देखिये, श्रीमान् ! मेरी पुस्तक नई-सी है । मैंने किसी दूसरे की पुस्तक का अच्छा जाडा-सा पुट्ठा उतारकर इस पर चढा दिया है । मैं इसकी प्राण से भी अधिक रक्षा करता हूँ । एक दिन भी इसे खोलकर नही पढता । इसे अपने घर के आले मे कपडे मे लपेट कर रखा करता हूँ । प्रायः इसे जैनशाला मे भी नही लाता ।

आज आप नये अध्यापकजी आये हैं, अत प्रदर्शन के लिए ले आया हूँ।

अ० : उपकारनाथ! तुम्हे जैनशाला मे पुस्तके इसलिए नही दी जाती कि तुम उसे आले मे ले जाकर रख दो। पुस्तक पढने के लिए है। उनको पढने के काम मे लाना चाहिए।

'मेरी पुस्तक अच्छी रहे, इसलिए दूसरो की पुस्तको से काम चला लूँ। यदि दूसरो की पुस्तक बिगडे, तो इससे मुझे क्या?' ऐसी भावना अच्छी नहीं है। इस भावना से आपस मे मैत्री और एकता नही बढती।

बहुत वार दूसरो की पुस्तको से काम चलाने से या तो दूसरो के अध्ययन मे वाधा पडती है या अपने स्वय के अध्ययन मे बाधा पडती है। अत. अपनी पुस्तक का उपयोग करना चाहिए।

अपनी पुस्तक की रक्षा के लिए भी किसी दूसरे की वस्तु लेना चोरी है। यह अच्छे छात्र का लक्षण नही है। कभी किसी की चोरी न करो।

(तटस्थकुमार की ओर मुँह करके हाथ लम्बा करते हुए) अच्छा, तटस्थकुमार! तुम अपनी पुस्तक बताओ।

तटस्थ : श्रीमान्‌जी! मैं पुस्तक के झगडे मे नही पडता। यदि अच्छी रखो, तो प्रशसा होती है और यदि बुरी रखो, तो निन्दा होती है। मैं निन्दा-प्रशसा से दूर रहना चाहता हूँ, इसलिए मैंने यहाँ से पुस्तक ही नही ली।

यहाँ सुनते हुए कुछ स्मरण रह जाता है, तो मुझे प्रसन्नता नही, यदि कुछ स्मरण नही रहता, तो खेद नहीं। मैं प्रसन्नता और खेद को बुरा समझता हूँ।

मैं परीक्षा भी इसीलिए नही देता। यदि उत्तीर्ण हो जायँ, तो अभिमान होता है, यदि अनुत्तीर्ण हो जायँ, तो अपमान होता है। मैं मानापमान मे पडना नहीं चाहता।

अध्या० : तटस्थकुमार ! तुम्हारी ये बातें ऐसी हैं कि 'मक्खी न बैठे, इसलिए नाक ही कटवा लो।' परन्तु होना यह चाहिए कि नाक रक्खो, पर उस पर मक्खी बैठने न दो। प्रशसा जैसा कार्य करो, पर फूलो नही। उत्तीर्ण बनो, पर अभिमान करो नही।

धार्मिक कार्यों मे जो प्रसन्नता होती है, वह त्यागने योग्य नही है तथा ज्ञान का स्मरण न रहना आदि धार्मिक कार्य मे कमी पडने पर खेद होना ही चाहिए, तभी धर्म मे प्रगति होगी।

एक बात यह भी तुम ध्यान रखना कि अपनी भूल को बड़ो के सामने प्रकट कर देने मे ही लाभ है। मैंने विवरण-पत्र को देख लिया है, उसके अनुसार तुमने यहाँ से पुस्तक ली है और उसमे तुम्हारे हस्ताक्षर भी हैं। ज्ञात होता है कि उसे तुमने कही खो दी है। स्मरण रक्खो, वैद्य या दाई के सामने अपनी सच्ची स्थिति प्रकट कर देने वाला ही अन्त मे सुखी बनता है। स्थिति प्रकट न करने वाला कुछ समय के लिए भले सुखी बन जाय, पर अन्त मे सुखी नहीं बन सकता। तुम सच्चे सुखी बनने जैसा काम करो।

(तीनो की ओर लक्ष्य करके) जैसा तुम तीनो ने नाम पाया है, उसे निरर्थक न वनाते हुए सार्थक वनाओ।

इतने में शाला के अन्य सभी छात्र साथ मे ही अनुशासन व व्यवस्थापूर्वक शाला मे प्रविष्ट हुए। उन्होने क्रम से खडे होकर श्रावकजी का अभिवादन किया। फिर उसमे से एक प्रतिनिधि छात्र ने कहा—श्रावकजी! हम सभी आपके स्वागत के लिए स्टेशन गये थे। वहुत समय तक वहाँ गाडी की प्रतीक्षा करते रहे। फिर जानकारी हुई कि आप मोटर से पधार गये है। हम आपका स्वागत न कर सके—इसका हमे वहुत खेद है। शाला मे पहुँचने मे भी विलम्व हुआ—आशा है, आप हमे क्षमा करेंगे।

अध्यापकजी ने स्वागत आदि का उत्तर देते हुए कहा : मैं आपके १. अनुशासन, २. व्यवस्था और ३ विनय से प्रसन्न हूँ। जानकारी न होने के कारण हुई भूल को भी आपने भूल स्वीकार की—इससे मेरे हृदय मे आप सभी आज से ही वस गये हैं। आपके ज्ञान और चारित्र की वृद्धि हो—यह मैं शुभ-कामना करता हूँ।

इस समय तक जैनशाला का समय समाप्त हो चुका था। श्रावकजी यात्रा से थके हुए भी थे, फिर भी वे चाहते थे कि अध्ययन आरम्भ किया जाय और कुछ समय चलाया जाय, परन्तु छात्रो ने श्रावकजी के विश्राम के लिए अध्ययन स्थगित रक्खा और शाति के साथ विसर्जित हो गये।

पाठ १६ सोलहवाँ

३. इच्छाकारेणं : आलोचना का पाठ

इच्छाकारेणं संदिसह भगवं ! इरियावहियं पडिक्कमामि इच्छं, इच्छामि पडिक्कमिउं ॥१॥ इरिया-वहियाए विराहणाए ॥२॥ गमणागमणे ॥३॥ पाणक्कमणे बीयक्कमणे हरियक्कमणे ओसा-उत्तिंग-पणग-दग-मट्टी-मक्कडा-संताणा-संकमणे ॥४॥ जे मे जीवा विराहिया ॥५॥ एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया ॥६॥ अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया, ठाणाओ ठाणं, संकामिया, जीवियाओ, ववरोविया ॥७॥ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

शब्दार्थ :

आज्ञा के लिए प्रार्थना

भगवं=हे भगवान् । इच्छाकारेणं=आप अपनी इच्छा से । संदिसह=आज्ञा कीजिए ।

अपनी इच्छा

मैं । इरियावहियं=ईर्यापथि की क्रिया का (चलने से लगने वाली क्रिया का) । पडिक्कमामि=प्रतिक्रमण करना चाहता हूँ ।

गुरुदेव की आज्ञा मिलने पर

इच्छं=आपकी आज्ञा प्रमाण है।

उद्देश्य

इरियावहियाए=मार्ग में चलने से हुई। विराहणाए=विराधना से। पडिक्कमिउं=प्रतिक्रमण करने की। इच्छामि=इच्छा करता हूँ।

विराधित जीवों के कुछ नाम

गमणागमणे=जाने-आने में। पाणक्कमणे=किसी (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) प्राणी को दबाया हो। बीयक्कमणे=बीज को दबाया हो। हरियक्कमणे=हरित (वनस्पति) को दबाया हो। ओसा=ओस। उत्तिंग=कीड़ी नगरा। पणग=पाँच रंग की काई (लोलण फूलण)। दग=सचित्त पानी। मट्टी=सचित्त मिट्टी या। मक्कडा संताणा=मकड़ी के जाले को। संकमणे=कुचला हो। इत्यादि प्रकार से,

विराधित सभी जीव

मे=मैंने। जे=जिन। जीवा=जीवों की। विराहिया=विराधना की हो। चाहे वे,

विराधित जीवों की ५ जाति

१ एगिंदिया=एक इन्द्रिय वाले। २. बेइंदिया=दो इन्द्रिय वाले। ३. तेइंदिया=तीन इन्द्रिय वाले। ४ चउरिंदिया=चार इन्द्रिय वाले। या ५. पंचिंदिया=पाँच इन्द्रिय वाले हो। उनको,

विराधना के १० प्रकार

१. **अभिहया**=सम्मुख आते हुओ पर पैर पड गया हो या उन्हें हाथ से उठा कर दूर फेंक दिये हो। २. **वत्तिया**=धूल आदि से ढँके हों। ३. **लेसिया**=मसले हों (भूमि पर रगडे हों)। ४ **संघाइया**=इकट्ठे किये हों। ५ **संघट्टिया**=छुए हो। ६ **परियाविया**=परिताप (कष्ट) पहुँचाया हो। ७. **किलामिया**=मरे हुए जैसे कर दिये हो। ८ **उद्दविया**=भयभीत किये हो। ९ **ठाणाओ**=एक स्थान से, **ठाणं**=अन्य स्थान पर। **संकामिया**=डाले हों। १० **जीवियाओ**=जीवन से, **ववरोविया**=रहित किये हों। तो,

प्रतिक्रमण

तस्स=उनका। **मि**=मेरा। **दुक्कडं**=दुष्कृत (पाप)। **मिच्छा**=मिथ्या (निष्फल) हो।

◆

पाठ १७ सत्रहवाँ

'इच्छाकारेणं' प्रश्नोत्तरी

प्र० : 'इच्छाकारेण' सामायिक का कौनसा पाठ है ?
उ० . तीसरा पाठ है।

प्र० : यह पाठ कब बोला जाता है ?
उ० सामायिक लेते समय तिक्खुत्तो से वन्दना करके तथा सामायिक पालते समय सीधे नमस्कार मन्त्र, पढ़ने के

पश्चात् बोला जाता है तथा सामायिक लेते समय कायोत्सर्ग मे भी बोला जाता है।

प्र० : इच्छाकारेण के पाठ का दूसरा नाम क्या है ?

उ० : आलोचना का पाठ।

प्र० : इसे आलोचना का पाठ क्यो कहते हैं ?

उ० : इससे जीव-विराधना की आलोचना की जाती है, इसलिये।

प्र० : विराधना किसे कहते है ?

उ० : १. जीवो को दु ख पहुँचाने वाली क्रिया को तथा २. जीवों को दु.ख पहुँचना।

प्र० : क्या चलने से ही विराधना होती है।

उ० : नही। उठने से, बैटने से, हाथ-पॉव पसारने से, सिकोड़ने से आदि क्रियाओ से भी जीव-विराधना होती है।

प्र० : तव इच्छाकारेण से चलने से होने वाली जीव-विराधना की ही आलोचना क्यो की है ?

उ० : जैसे 'रोटी खाई'—इस वाक्य मे रोटी शव्द से शाक, दाल, चावल आदि सव आ जाते हैं। इसी प्रकार यहाँ चलने से होने वाली जीव-विराधना की आलोचना से सभी प्रकार से होने वाली जीव-विराधना की आलोचना की गई समझनी चाहिये।

प्र० : जीव-रक्षा के लिए यदि किसी जीव को एक स्थान से दूसरे सुरक्षित स्थान पर पूंज कर हटावे, तो क्या विराधना का पाप लगता है ?

उ० : नही। विना कारण सुख से बैठे जीवो को इधर-उधर पूंज कर हटाना ठीक नही है। पर रक्षा के लिए तो

उन्हें पूंज कर एक स्थान से दूसरे सुरक्षित स्थान पर हटाना ही चाहिए। इससे उन्हे कष्ट तो होता ही है, पर इसके लिए दूसरा उपाय नही है। जो इससे थोडी विराधना होती है, उसके लिए 'मिच्छा मि दुक्कड' देना (कहना) चाहिये।

प्र० : क्या किसी का मन दु खाना तथा कटु वचन बोलना विराधना नही है ?

उ० : है। इसलिए किसी का मन दु खे ऐसा काम भी नही करना चाहिए तथा ऐसी वाणी भी नही बोलनी चाहिए। इस पाठ मे यद्यपि शरीर को कष्ट पहुँचाने से होने वाली १० प्रकार की विराधना का ही 'मिच्छा मि दुक्कड' दिया है (कहा है), पर उससे मन-वचन की विराधना का मिच्छा मि दुक्कड भी समझ लेना चाहिए।

प्र० : क्या 'मिच्छा मि दुक्कड' कहने से ही पाप निष्फल हो जाता है (धुल जाता है) ?

उ० : नही। बिना मन केवल जीभ से कहने से पाप निष्फल नही हो जाता। मन के पश्चाताप के साथ कहने से अवश्य ही निष्फल होता है। अत 'मिच्छा मि दुक्कड' मन के पश्चाताप के साथ कहना चाहिए।

प्र० : जीव-विराधना न हो—इसका उपाय क्या है ?

उ० : 'यतना रखना'।

प्र० : 'यतना' किसे कहते है ?

उ० : १. जीव-विराधना का प्रसग न आवे—इसका पहले से ही ध्यान रखना तथा २. प्रसग आने पर जीव-विराधना टालने का प्रयत्न करना।

प्र० : जीव-विराधना न हो—इसके लिये पहले से ही ध्यान कैसे रखना चाहिए ?

उ० : जीव-विराधना के स्थान से दूर बैठना चाहिए। जैसे पृथ्वीकाय की यतना के लिए जहाँ सचित्त मिट्टी हो, अपकाय की यतना के लिए जहाँ पानी के घडे रक्खे हो, नल चलता हो, तेजस्काय की यतना के लिये जहाँ लोग आग तपते हो, वायुकाय की यतना के लिए जहाँ वायु अधिक चलती हो, वनस्पतिकाय की यतना के लिये जहाँ धान के थैले पडे हों, घट्टी हो, वृक्षो से पत्ते-फूल-बीज गिरते हो, त्रसकाय की यतना के लिए जहाँ कीडो-मकोडो के बिल हो, मकडी के जाले हो, खटमलो के स्थान हो, कीडी, मकोड़ी, मकडी आदि के जाने-आने के मार्ग हो—वहाँ नही बैठना चाहिए। यदि दूसरा स्थान न हो, तो हाथ भर दूरी से बैठने का ध्यान रखना चाहिए—जिससे पृथ्वीकायादि तथा द्वीन्द्रियादि की हिसा का प्रसग ही उपस्थित न हो।

इसी प्रकार कुत्ते, गाय आदि घुस जायँ—ऐसे फाटक खुले नही रखना चाहिए, जिससे फिर उन्हे ताड कर निकालना न पड़े। गिर कर कोई जीव कैद न हो जाय या मर न जाय—इसलिए पात्र खुले नही रखना चाहिए। किसी का पैर पड़ कर समूच्छिम जीवो की हिसा न हो, मच्छर आदि पैदा न हो—इसलिए मल-मूत्र जहाँ-तहाँ परठना (डालना) नही चाहिए। किसी का मन न दु खे—इसलिए मीठी तथा ऊँची बोली मे ज्ञान-चर्चा या बातचीत करना चाहिए। बिना पूछे कोई काम भी नहीं करना चाहिए। इत्यादि ध्यान रखने से जीव-विराधना का प्रसग प्राय. नही आता।

प्र० : जीव-विराधना का प्रसंग आने पर विराधना टालने के लिये क्या प्रयत्न करना चाहिये।

उ० : अधिक जीव-विराधना न हो—इसका प्रयत्न करना चाहिये। जैसे, पृथ्वीकाय की यतना के लिये जाते-आते पैर मे मिट्टी लग जाय, तो पैरो को पूंजकर बैठना चाहिये। अपकाय की यतना के लिये कपडा पानी से भीग जाय, तो उसे एक ओर रख देना चाहिये। रात्रि को बाहर जाते-आते मस्तक और अन्य अग कपडे से भली भाँति ढककर जाना चाहिये,(जिससे रात्रि को सूक्ष्म बरसने वाली वर्षा के जीवो की मस्तक तथा अन्य अगों की ऊष्णता से विराधना न होवे।) तेजस्काय की यतना के लिये वस्त्र मे कोई चिनगारी लग जाय, तो यतना से दूर कर देना चाहिये। वायुकाय की यतना के लिये वायु से कपडे उडने लगे, तो वायुरहित स्थान मे जाकर बैठ जाना चाहिये। वनस्पतिकाय की यतना के लिये पत्ते, बीज आदि आ गिरें, तो धीरे-से उठाकर एक ओर जाकर रख देना चाहिये, पर बैठे-बैठे फेकना नही चाहिये। त्रसकाय की यतना के लिये कीडी, मकोडी आदि आसन या शरीर पर चढ जायं, तो देख-पूंज कर अलग करना चाहिये। कुत्ते आदि को शब्द से या धीरे-से हो दूर करना चाहिये। दिन को देख कर तथा रात्रि को मार्ग पूंजकर आना-जाना चाहिए। आसन आदि को देख-पूंजकर उठना-बैठना तथा सोना चाहिए। शरीर को देख-पूंजकर खुजालना चाहिए। ज्ञान-चर्चा या बातचीत करते हुए कोई कटु शब्द निकल जाय या कभी किसी के मन के विपरीत कोई काम हो जाय, तो हाथ जोड़कर नम्रता से क्षमा-याचना करना चाहिये।

इत्यादि प्रयत्न करने से अधिक होने वाली विराधना टल जाती है।

प्र० : इच्छाकारेण से क्या केवल जीव-विराधना की आलोचना की जाती है ?

उ० : नही। अट्ठारह पापो में जीव-विराधना (हिंसा) का पाप पहला (मुख्य) है। इसलिए 'इच्छाकारेण' से जो जीव-विराधना की आलोचना की है, उससे शेष रहे हुए १७ पापो की भी आलोचना की गई समझनी चाहिए। (यहाँ भी पहले दिया हुआ 'रोटी खाई' का दृष्टान्त समझ लेना चाहिए।)

पाठ १८ अट्ठारहवाँ

४. तस्सउत्तरी : उत्तरीकरण का पाठ

तस्स-उत्तरी-करणेणं, पायच्छित्त-करणेणं, विसोहि-करणेणं, विसल्लो-करणेणं, पावाणं कम्माणं, निग्घायणट्ठाए, ठामि काउस्सग्गं। अन्नत्थ ऊससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं जंभाइएणं, उड्डुएणं, वाय-निसग्गेणं, भमलीए, पित्त-मुच्छाए ॥१॥ सुहुमेहिं अंग-संचालेहिं, सुहुमेहिं खेल-संचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठि-संचालेहिं ॥२॥ एवमाइएहिं, आगारेहिं,

अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो ॥३॥ जाव अरिहंताणं भगवंताणं णमोक्कारेणं न पारेमि ॥४॥ ताव कायं, ठाणेणं मोणेणं झाणेणं, अप्पाणं वोसिरामि ॥५॥

शब्दार्थ :

किसके लिए ?

१. **तस्स**=उसकी (उस पाप सहित आत्मा को)। **उत्तरी**= विशेष उत्कृष्टता। **करणेणं**=करने के लिए। २. **पायच्छित्त**= प्रायश्चित्त। ३. **विसोहि**=विशुद्धि तथा ४. **विसल्ली**=शल्य (काँटे) रहित। **करणेण**=करने के लिए। ५. **पावाणं**= आठो या (अठारह ही) पाप। **कम्माणं**=कर्मों का। **निग्घायणट्ठाए**=नाश करने के लिए।

क्या करता हूँ ?

काउसग्गं=कायोत्सर्ग। **ठामि**=करता हूँ।

किन आगारो को छोड कर ?

१. **ऊससिएणं**=उच्छ्‌वास (ऊँचा श्वास)। २. **नीससिएणं**= निश्वास (नीचा श्वास)। ३. **खासिएणं** = खाँसी। ४ **छीएणं**=छींक। ५ **जंभाइएणं**=जभाई (उबासी)। ६ **उड्डुएणं**=उगाल (डकार)। ७. **वायनिसग्गेणं**=अधोवायु ८. **भमलीए**=भ्रम (पित्त के उठाव से होने वाला चक्कर)। ६ **पित्तमुच्छाए**=पित्त-विकार की मूर्च्छा। १०. **सुहुमेहिं**= सूक्ष्म (थोडा, हल्का)। ११. **अंगसंचालेहिं**=अंग का सचार (अगो का फड़कना, रोमाच होना, हिलना)। १२ **खेल**=

श्लेष्म (कफ) का। संचालेहिं=संचार। १३. दिट्ठि=दृष्टि (आँखों का, पलकों का) संचालेहिं=संचार।

एवमाइएहिं=इत्यादि। आगारेहिं=आगारों को। अन्नत्थ=छोड़कर।

क्या हो ?

मे=मेरा। काउसग्गो=कायोत्सर्ग। अभग्गो=थोड़ा भी खण्डित न हो। अविराहिओ=पूरा नष्ट न हो।

कब तक ?

जाव=जब तक। अरिहंताणं=अरिहंत। भगवंताणं=भगवान् को। नमुक्कारेणं=नमस्कार करके (णमो अरिहंताणं कहकर)। न=(कायोत्सर्ग को) न। पारेमि=पार लूँ।

तब तक कायोत्सर्ग कैसे ?

ताव=तब तक। कायं=काया को। ठाणेणं=(एक स्थान पर) स्थिर करके। मोणेणं=(वचन से) मौन करके। झाणेणं=(मन से) ध्यान करके (रहूँगा)।

अप्पाणं=(पहले की अपनी पापी) आत्मा को। वोसिरामि=वोसिराता हूँ।

◆

पाठ १६ उन्नीसवाँ

तस्सउत्तरी प्रश्नोत्तरी

प्र० : 'तस्सउत्तरी' सामायिक सूत्र का कौनसा पाठ है ?
उ० : चौथा पाठ है।

प्र० : यह पाठ कब बोला जाता है ?
उ० : 'इच्छाकारेण' के बाद।

प्र० : यह पाठ बोलकर क्या किया जाता है ?
उ० : कायोत्सर्ग।

प्र० : कायोत्सर्ग में क्या बोला जाता है ?
उ० : सामायिक लेते समय इच्छाकारेणं और पालते समय लोगस्स बोला जाता है।

प्र० : इस पाठ का दूसरा नाम क्या है ?
उ० : उत्तरीकरण का पाठ।

प्र० : इसे उत्तरीकरण का पाठ क्यों कहते हैं ?
उ० : इससे आत्मा को विशेष उत्कृष्ट बनाने के लिए कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा की जाती है, इसलिए।

प्र० : प्रायश्चित्त किसे कहते हैं ?
उ० : १. जिससे पाप कटकर आत्मा शुद्ध बने तथा २. पाप कटकर आत्मा का शुद्ध बनना।

प्र० : विशुद्धि किसे कहते हैं ?
उ० : अच्छे परिणामो से (विचारो से) आत्मा का विशेष शुद्ध बनना।

प्र० : शल्य (मोक्ष-मार्ग के काँटे) कितने है ?

उ० : तीन हैं—१ माया-शल्य (क्रोध, मान, माया, लोभ) २. निदान-शल्य (धर्मकरणी का मोक्ष के अलावा फल चाहना) ३. मिथ्यादर्शन-शल्य (मिथ्यात्व)।

प्र० : आगार (आकार) किसे कहते है ?

उ० : प्रत्याख्यान (पच्चक्खाण) मे रहने वाली १. मर्यादा तथा २. छूट को।

प्र० : कायोत्सर्ग मे आगार क्यो रक्खे जाते हैं ?

उ० : क्योकि १. जीव-रक्षा आदि के लिए कायोत्सर्ग बीच में छोडना पडता है तथा २. कायोत्सर्ग मे श्वास आदि रोके नही जा सकते।

प्र० : प्रकट 'इच्छाकारेण' से एक बार पाप धुल जाने पर दुबारा कायोत्सर्ग से और उसमे 'इच्छाकारेण' या 'लोगस्स' से पापो का नाश करने की आवश्यकता क्या है ?

उ० : जैसे अधिक मैला कपड़ा एक बार पानी से धोने से पूरा स्वच्छ नही होता, उसे दुबारा क्षार (सोडा, साबुन आदि) लगा कर धोना पड़ता है। उसी प्रकार आत्मा-रूप कपड़ा अधिक पाप वाला होने पर प्रकट आलोचना-रूप पानी से पूरा धुल नही पाता, इसलिए उसे कायोत्सर्ग और उसमे 'इच्छाकारेणं' या लोगस्स-रूप क्षार लगाकर दुबारा पूरा स्वच्छ बनाना पड़ता है।

प्र० : मच्छर आदि काटने लगे, तो इच्छाकारेण या लोगस्स पूरा होने से पहले ही 'णमो अरिहताण' कह कर कायोत्सर्ग पाला जा सकता है क्या ?

उ० : नही। मच्छरादि काटने लगे,तो कष्ट सहन करना चाहिए। कष्ट आने पर उन्हे सहन करने पर ही सच्चा कायोत्सर्ग होता है। ऐसा कायोत्सर्ग ही सच्चा प्रायश्चित्त है। वही पापो को पूरा धो कर आत्मा को पूरा विशुद्ध बना सकता है। यदि मच्छरादि के काटने से कायोत्सर्ग पाल लिया जाय, तो वह कायोत्सर्ग का भग कहलाता है।

प्र० : 'इच्छाकारेण' या 'लोगस्स' पूरे गिनने के बाद ही कायोत्सर्ग पाला जाता है, तो पारने के लिए 'णमो अरिहताण' कहने की आवश्यकता क्या है ?

उ० : १. कायोत्सर्ग आदि जो भी प्रत्याख्यान (प्रतिज्ञा) जितने समय के लिए किये जाते हैं, उसमे कुछ और समय बढाने का नियम है, उसे पालने के लिए। यह नियम इसलिए है कि समय से पहले प्रत्याख्यान पालने से जो व्रत भग हो सकता है, वह न हो सके तथा २ व्यवस्थित कार्य-पद्धति के लिए।

प्र० : जहाँ कायोत्सर्ग किया हो, वहाँ आग लग जाय, बाढ आ जाय, डाकू लूटने लगे, राजा का उपद्रव हो जाय, भीत, छत आदि गिरने लगे, सर्प, सिंह आ जाय—तो उस समय प्राण-रक्षा के लिए वहाँ से हटकर दूर जाना पडे, तो कायोत्सर्ग का भङ्ग होता है या नही ?

उ० : जहाँ तक हो सके, मृत्यु तक का भी भय छोड़कर कायोत्सर्ग मे दृढ रहना श्रेष्ठ है, परन्तु यदि कोई प्राण-रक्षा के लिए ऐसा कर ले, तो कायोत्सर्ग भङ्ग नही माना जाता।

प्र० : प्राणी-रक्षा के लिए—जैसे बिल्ली चूहे को पकडती हो, तो बिल्ली से छुड़ाकर चूहे की रक्षा के लिए कायोत्सर्ग

बीच मे ही छोडा जा सकता है या नही ? अथवा स्वधर्मी की सेवा के लिए—जैसे वे मूर्च्छा खाकर गिर रहे हो या गिर पडे हो, तो उन्हे उठाने-करने के लिए कायोत्सर्ग बीच मे ही छोडा जा सकता है या नही ?

उ० : १. प्राणी-रक्षा, २ स्वधर्मी-सेवा आदि के लिए तत्काल कायोत्सर्ग बीच मे ही छोड देना चाहिए। इससे कायोत्सर्ग भङ्ग नही होता, क्योंकि कायोत्सर्ग मे ऐसी मर्यादा रक्खी जाती है। परन्तु इन कार्यो को समाप्त करके पुनः कायोत्सर्ग कर लेना चाहिए।

प्र० : कायोत्सर्ग समाप्त होने पर क्या बोलना चाहिए ?

उ० . एक प्रकट नमस्कार मत्र तथा ध्यान पारने का पाठ।

प्र० : ध्यान पारने का पाठ बताइए।

उ० : कायोत्सर्ग मे आर्त्त-ध्यान या रौद्र-ध्यान ध्याया हो, धर्म-ध्यान (या शुक्ल-ध्यान) न ध्याया हो, कायोत्सर्ग मे मन-वचन-काया चलित हुई हो, तो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड'।

◆

पाठ २० बीसवाँ

५. लोगस्स : चतुर्विंशतिस्तव का पाठ

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्म-तित्थयरे जिणे।
अरिहन्ते कित्तइस्सं, चउवीसं पि केवली ॥१॥

उसभ मजियं च वन्दे, संभव-मभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चन्दप्पहं वन्दे ॥२॥
सुविहिं च पुप्फदंतं, सीअल सिज्जंस वासुपुज्जं च ।
विमल-मणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥३॥
कुंथुं अरं च मल्लिं, वन्दे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च ।
वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ॥४॥
एवं मए अभित्थुआ, विहुय-रय-मला पहीण-जर-मरणा ।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥५॥
कित्तिय-वंदिय-महिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।
आरुग्ग-बोहिलाभं, समाहि-वर-मुत्तमं दिन्तु ॥६॥
चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा ।
सागर-वर-गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥७॥

शब्दार्थ :

गुण-स्मरण के साथ नाम-स्मरण-रूप कीर्त्तन की प्रतिज्ञा

लोगस्स = लोक का । **उज्जोयगरे**=उद्योत करने वाले । **धम्म**=धर्म के । **तित्थयरे**=तीर्थंकर । **जिणे**=आत्म-शत्रुओं को जीतनेवाले । **अरिहंते**=आत्म-शत्रुओ को नष्ट करने वाले । **चउवीस**=चौबीसो । **पि**=ही । **केवली**=केवलियो का (केवल ज्ञानियो का) । **कित्तइस्सं**=कीर्त्तन करूँगा ।

नाम-स्मरण-रूप कीर्त्तन

१. **उसभं**=ऋषभ (नाथ) । **च**—और । २. **अजियं**=अजित (नाथ) को । **वंदे**=वदना करता हूँ । ३. **संभवं**—सभव

(नाथ)। च=और। ४. अभिणंदणं=अभिनन्दन। च—और। ५. सुमइं=सुमति (नाथ)। ६. पउमप्पहं=पद्मप्रभ। ७. सुपासं=सुपार्श्व (नाथ)। च=और। ८. चंदप्पहं=चन्द्रप्रभ। जिणं=जिनको। वंदे=वदना करता हूँ। च=और। ९ सुविहि=सुविधि (नाथ)। पुप्फदंतं=(सफेद कमल के फूल के समान स्वच्छ दाँत होने से) जिनका दूसरा नाम पुप्पदत है, उनको। १०. सीअल=शीतल (नाथ)। ११. सिज्जंस=श्रेयास (नाथ)। १२. वासुपुज्ज=वासुपूज्य। १३. विमलं=विमल (नाथ)। च=और। १४. अणंतं=अनत (नाथ)। जिणं=जिन। १५. धम्मं=धर्म (नाथ)। च=और। १६. संतिं=शान्ति (नाथ) को। वंदामि=वदना करता हूँ। १७. कुंथुं=कुन्थु (नाथ)। च=और। १८. अरं=अर (नाथ)। १९. मल्लिं=मल्ली (नाथ)। २०. मुणिसुव्वयं=मुनिसुव्रत। च=और। २१. नमि=नमि (नाथ)। जिणं=जिनको। वंदे=वदना करता हूँ। २२. रिट्ठनेमिं=अरिष्टनेमि। २३. पासं=पार्श्व (नाथ)। च=और। तह=उसी प्रकार। २४. वद्धमाणं=वर्द्धमान (स्वामी) को। वंदामि=वदना करता हूँ।

प्रार्थना

एवं=इस प्रकार। मए=मेरे द्वारा। अभित्थुआ=स्तुति किये गये। विहुय-रय-मला=जिन्होने पाप-कर्म-रूप रज-मैल धो डाला। पहीण-जर-मरणा=जरा (बुढ़ापा) और मरण नष्ट कर दिये (वे)। चउवीसं=चौवीस। पि=ही। जिणवरा=जिनवर। तित्थयरा=तीर्थंकर। मे=मुझ पर। पसीयंतु=प्रसन्न हो।

कित्तिय = जिनका (देवताओं के इन्द्र, असुरों के इन्द्र तथा नरेन्द्र तीनो लोक) ने कीर्त्तन किया है। **वंदिय** = वन्दन किया है। **महिया** = पूजन किया है (ऐसे)। **जे** = जो। **ए** = ये। **लोगस्स** = (तीनो) लोक मे। **उत्तमा** = उत्तम। **सिद्धा** = सिद्ध हैं (वे मुझे)। **आरुग्ग** = सिद्धत्व (मोक्ष और उसके उपाय)। **बोहि** = १. बोधि (सम्यक्त्व) का। **लाभं** = लाभ (और) **उत्तमं** = उत्तम। **वरं** = श्रेष्ठ। **समाहि** = २. समाधि (चारित्र)। **दिंतु** = देवे।

चंदेसु = चन्द्रो से भी। **निम्मलयरा** = अधिक निर्मल। **आइच्चेसु** = सूर्यो से भी। **अहियं** = अधिक। **पयासयरा** = प्रकाश करने वाले। **वर** = श्रेष्ठ। **सागर** = सागर (के समान)। **गंभीरा** = गभीर। **सिद्धा** = सिद्ध। **मम** = मुझे। **सिद्धि** = सिद्धि (मोक्ष)। **दिसंतु** = दिखावे (देवे)।

◆

पाठ २१ इक्कीसवाँ

लोगस्स प्रश्नोत्तरी

प्र० : 'लोगस्स' सामायिक सूत्र का कौनसा पाठ है ?

उ० : पाँचवाँ पाठ है।

प्र० : यह पाठ कब बोला जाता है ?

उ० : ध्यान पारने का पाठ बोलने के बाद तथा सामायिक सूत्र पालते समय यह कायोत्सर्ग में भी बोला जाता है।

प्र० : इस पाठ का दूसरा नाम क्या है ?

उ० : चतुर्विंशतिस्तव का पाठ।

प्र० : इसे चतुर्विंशतिस्तव का पाठ क्यों कहते है ?

उ० : इससे चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति की जाती है, इसलिए।

प्र० : 'लोक का उद्योत करने वाले' का भाव क्या है ?

उ० : विश्व का ज्ञान कराने वाले।

प्र० : यहाँ कीर्त्तन किसे कहा है ?

उ० : मन से १. नाम स्मरण करने को और २. गुण-स्मरण करने को।

प्र० : यहाँ वन्दन किसे कहा है ?

उ० : मुख से १. नाम-स्तुति करने को और २. गुण-स्तुति करने को।

प्र० : यहाँ पूजन किसे कहा है ?

उ० : पूज्य मानकर (स्मरणीय और स्तवनीय मानकर) काया (पचांग नमाकर) से नमस्कार करना।

प्र० : क्या तीर्थंकरो की फूलो से पूजा करना 'पूजन' नहीं कहलाता ?

उ० : नहीं। तीर्थंकरादि के सामने जाते हुए पहला अभिगमन है—सचित्त का त्याग। जव सचित्त को लेकर तीर्थंकरादि के सामने जाने का भी निषेध हैं, तव सचित्त फूलों से उनकी पूजा करना 'पूजन' कैसे कहला सकता है ?

प्र० : कीर्त्तन तथा वन्दन से क्या लाभ होता है ?

उ० : १. ज्ञान वढता है। जसे, गुणो के स्मरण तथा स्तुति से यह ज्ञान होता है कि कौनसे गुणों वाला देव सच्चा देव हो सकता है ? तथा नामो के स्मरण तथा स्तुति से यह ज्ञान होता है कि ऐसे गुणों वाले सच्चे देव कौन हुए ?

२. श्रद्धा बढती है। जैसे, इन गुणों वाले देव ही सच्चे देव हैं तथा इन नामो वाले देव ही सच्चे देव हुए।

३. नये पाप-कर्म बँधते हुए रुकते हैं। क्योकि मन में स्मरण चलने से मन में आहारादि की सज्ञाएँ उत्पन्न नही होती तथा वचन से स्तुति होती रहने पर वचन से स्त्री आदि विकथाएँ नही होती।

४. पुण्य बँधते हैं। क्योकि स्मरण मन का शुभ योग है तथा स्तुति वचन का शुभ योग है।

५. पुराने पाप-कर्म क्षय होते हैं। क्योकि स्मरण तथा स्तुति, स्वाध्याय तथा धर्म-ध्यान-रूप हैं।

प्र० : लोगस्स में तीर्थंकरो को, जो अरिहन्त हैं, उन्हे सिद्ध भी क्यो कहा ?

उ० : १. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय—ये आठ कर्मों मे चार मुख्य कर्म हैं। इनको नष्ट कर देने से तीर्थंकरो का आत्म-कल्याण का काम प्रायः सिद्ध हो चुका है, इसलिए। २. वर्त्तमान की अपेक्षा तो वे सिद्ध हैं ही।

प्र० : क्या तीर्थंकर किसी पर प्रसन्न होते है ?

उ० : नहीं। क्योंकि वे राग-द्वेषरहित होते हैं।

प्र० : तब 'तीर्थंकर मुझ पर प्रसन्न हो'—ऐसी प्रार्थना क्यो की जाती है ?

उ० : इसलिए कि ऐसी प्रार्थना से हम मे मोक्ष-प्राप्ति की योग्यता आती है और हम मे मोक्ष-प्राप्ति की योग्यता आना ही 'तीर्थंकरो का प्रसन्न होना' माना गया है।

उ० : चतुर्विंशतिस्तव का पाठ।

प्र० : इसे चतुर्विंशतिस्तव का पाठ क्यों कहते हैं ?

उ० : इससे चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति की जाती है, इसलिए।

प्र० : 'लोक का उद्योत करने वाले' का भाव क्या है ?

उ० : विश्व का ज्ञान कराने वाले।

प्र० : यहाँ कीर्त्तन किसे कहा है ?

उ० : मन से १. नाम स्मरण करने को और २. गुण-स्मरण करने को।

प्र० : यहाँ वन्दन किसे कहा है ?

उ० : मुख से १ नाम-स्तुति करने को और २. गुण-स्तुति करने को।

प्र० : यहाँ पूजन किसे कहा है ?

उ० : पूज्य मानकर (स्मरणीय और स्तवनीय मानकर) काया (पचाग नमाकर) से नमस्कार करना।

प्र० : क्या तीर्थंकरो की फूलो से पूजा करना 'पूजन' नहीं कहलाता ?

उ० : नहीं। तीर्थंकरादि के सामने जाते हुए पहला अभिगमन है—सचित्त का त्याग। जब सचित्त को लेकर तीर्थंकरादि के सामने जाने का भी निषेध है, तब सचित्त फूलों से उनकी पूजा करना 'पूजन' कैसे कहला सकता है ?

प्र० : कीर्त्तन तथा वन्दन से क्या लाभ होता है ?

उ० : १. ज्ञान बढता है। जसे, गुणो के स्मरण तथा स्तुति से यह ज्ञान होता है कि कौनसे गुणों वाला देव सच्चा देव हो सकता है ? तथा नामो के स्मरण तथा स्तुति से यह ज्ञान होता है कि ऐसे गुणों वाले सच्चे देव कौन हुए ?

२. श्रद्धा बढती है। जैसे, इन गुणों वाले देव ही सच्चे देव हैं तथा इन नामो वाले देव ही सच्चे देव हुए।

३. नये पाप-कर्म बँधते हुए रुकते हैं। क्योंकि मन में स्मरण चलने से मन में आहारादि की सज्ञाएँ उत्पन्न नही होतीं तथा वचन से स्तुति होती रहने पर वचन से स्त्री आदि विकथाएँ नही होतीं।

४ पुण्य बँधते हैं। क्योकि स्मरण मन का शुभ योग है तथा स्तुति वचन का शुभ योग है।

५. पुराने पाप-कर्म क्षय होते हैं। क्योकि स्मरण तथा स्तुति, स्वाध्याय तथा धर्म-ध्यान-रूप हैं।

प्र० : लोगस्स मे तीर्थंकरो को, जो अरिहन्त हैं, उन्हें सिद्ध भी क्यो कहा ?

उ० : १. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय—ये आठ कर्मों मे चार मुख्य कर्म हैं। इनको नष्ट कर देने से तीर्थंकरो का आत्म-कल्याण का काम प्राय सिद्ध हो चुका है, इसलिए। २. वर्त्तमान की अपेक्षा तो वे सिद्ध हैं ही।

प्र० : क्या तीर्थंकर किसी पर प्रसन्न होते हैं ?

उ० : नहीं। क्योकि वे राग-द्वेषरहित होते हैं।

प्र० : तब 'तीर्थंकर मुझ पर प्रसन्न हो'—ऐसी प्रार्थना क्यो की जाती है ?

उ० : इसलिए कि ऐसी प्रार्थना से हम में मोक्ष-प्राप्ति की योग्यता आती है और हम मे मोक्ष-प्राप्ति की योग्यता आना ही 'तीर्थंकरो का प्रसन्न होना' माना गया है।

उ० : चतुर्विंशतिस्तव का पाठ।

प्र० : इसे चतुर्विंशतिस्तव का पाठ क्यों कहते हैं ?

उ० : इससे चौवीस तीर्थंकरों की स्तुति की जाती है, इसलिए।

प्र० : 'लोक का उद्योत करने वाले' का भाव क्या है ?

उ० : विश्व का ज्ञान कराने वाले।

प्र० : यहाँ कीर्त्तन किसे कहा है ?

उ० : मन से १. नाम स्मरण करने को और २. गुण-स्मरण करने को।

प्र० : यहाँ वन्दन किसे कहा है ?

उ० : मुख से १. नाम-स्तुति करने को और २. गुण-स्तुति करने को।

प्र० : यहाँ पूजन किसे कहा है ?

उ० : पूज्य मानकर (स्मरणीय और स्तवनीय मानकर) काया (पचाग नमाकर) से नमस्कार करना।

प्र० : क्या तीर्थंकरो की फूलो से पूजा करना 'पूजन' नहीं कहलाता ?

उ० : नहीं। तीर्थंकरादि के सामने जाते हुए पहला अभिगमन है—सचित्त का त्याग। जब सचित्त को लेकर तीर्थंकरादि के सामने जाने का भी निषेध है, तब सचित्त फूलों से उनकी पूजा करना 'पूजन' कैसे कहला सकता है ?

प्र० : कीर्त्तन तथा वन्दन से क्या लाभ होता है ?

उ० : १. ज्ञान बढता है। जसे, गुणों के स्मरण तथा स्तुति से यह ज्ञान होता है कि कौनसे गुणों वाला देव सच्चा देव हो सकता है ? तथा नामो के स्मरण तथा स्तुति से यह ज्ञान होता है कि ऐसे गुणों वाले सच्चे देव कौन हुए ?

२. श्रद्धा बढती है। जैसे, इन गुणो वाले देव ही सच्चे देव हैं तथा इन नामो वाले देव ही सच्चे देव हुए।

३. नये पाप-कर्म बँधते हुए रुकते हैं। क्योकि मन में स्मरण चलने से मन में आहारादि की सज्ञाएँ उत्पन्न नहीं होती तथा वचन से स्तुति होती रहने पर वचन से स्त्री आदि विकथाएँ नही होती।

४. पुण्य बँधते हैं। क्योकि स्मरण मन का शुभ योग है तथा स्तुति वचन का शुभ योग है।

५. पुराने पाप-कर्म क्षय होते हैं। क्योकि स्मरण तथा स्तुति, स्वाध्याय तथा धर्म-ध्यान-रूप हैं।

प्र० : लोगस्स में तीर्थंकरो को, जो अरिहन्त हैं, उन्हे सिद्ध भी क्यो कहा ?

उ० : १. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय—ये आठ कर्मों मे चार मुख्य कर्म हैं। इनको नष्ट कर देने से तीर्थंकरो का आत्म-कल्याण का काम प्राय: सिद्ध हो चुका है, इसलिए। २. वर्त्तमान की अपेक्षा तो वे सिद्ध हैं ही।

प्र० : क्या तीर्थंकर किसी पर प्रसन्न होते हैं ?

उ० : नहीं। क्योकि वे राग-द्वेषरहित होते हैं।

प्र० : तब 'तीर्थंकर मुझ पर प्रसन्न हो'—ऐसी प्रार्थना क्यो की जाती है ?

उ० : इसलिए कि ऐसी प्रार्थना से हम में मोक्ष-प्राप्ति की योग्यता आती है और हम मे मोक्ष-प्राप्ति की योग्यता आना ही 'तीर्थंकरो का प्रसन्न होना' माना गया है।

उ० : चतुर्विंशतिस्तव का पाठ।

प्र० : इसे चतुर्विंशतिस्तव का पाठ क्यों कहते हैं ?

उ० : इससे चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति की जाती है, इसलिए।

प्र० : 'लोक का उद्योत करने वाले' का भाव क्या है ?

उ० : विश्व का ज्ञान कराने वाले।

प्र० : यहाँ कीर्त्तन किसे कहा है ?

उ० : मन से १. नाम स्मरण करने को और २. गुण-स्मरण करने को।

प्र० : यहाँ वन्दन किसे कहा है ?

उ० : मुख से १. नाम-स्तुति करने को और २. गुण-स्तुति करने को।

प्र० : यहाँ पूजन किसे कहा है ?

उ० : पूज्य मानकर (स्मरणीय और स्तवनीय मानकर) काया (पचाग नमाकर) से नमस्कार करना।

प्र० : क्या तीर्थंकरो की फूलो से पूजा करना 'पूजन' नहीं कहलाता ?

उ० : नहीं। तीर्थंकरादि के सामने जाते हुए पहला अभिगमन है—सचित्त का त्याग। जब सचित्त को लेकर तीर्थंकरादि के सामने जाने का भी निषेध है, तब सचित्त फूलो से उनकी पूजा करना 'पूजन' कैसे कहला सकता है ?

प्र० : कीर्त्तन तथा वन्दन से क्या लाभ होता है ?

उ० : १. ज्ञान बढता है। जैसे, गुणो के स्मरण तथा स्तुति से यह ज्ञान होता है कि कौनसे गुणों वाला देव सच्चा देव हो सकता है ? तथा नामों के स्मरण तथा स्तुति से यह ज्ञान होता है कि ऐसे गुणों वाले सच्चे देव कौन हुए ?

तोर्थंकर सम्यक्त्व तथा चारित्र देते हैं और मोक्ष दिखाते हैं।

प्र० : आज तीर्थंकर जब कि मोक्ष मे पधार गये है और उपदेश नही देते है, तब ऐसी प्रार्थना क्यो की जाय ?

उ० : इसलिए कि वे जो उपदेश दे गये हैं, वे हम मे उतरे और हम मोक्ष देखे। ऐसी प्रार्थना से उनके उपदेश धारण करने की हमारी भावना दृढ बनती है और धारण कर हम मोक्ष के निकट बनते है।

प्र० : क्या तीर्थंकरो की प्रार्थना से सांसारिक पदार्थ—जैसे पत्नि, पुत्र धन, घर आदि मिल सकते हैं ?

उ० : हाँ।

प्र० : तो क्या सासारिक पदार्थों को तीर्थंकर देते हैं ?

उ० . नही। किन्तु उनकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर तीर्थंकरो के भक्तदेव सासारिक पदार्थ देते हैं या अपने-आप सासारिक पदार्थ मिलते है।

प्र० : क्या तीर्थंकरो से सासारिक पदार्थ की प्रार्थना करना उचित है ?

उ० : नही। लोगस्स मे की गई प्रार्थना के समान मोक्ष की पात्रता आये, सम्यक्त्व जागे, चारित्र धारण हो, मोक्ष प्राप्त हो—ऐसी ही प्रार्थना करनी चाहिए।

प्र० : यदि कोई सासारिक प्रार्थना करता हो, तो ?

उ० : करना छोड दे। न छोड़ सके, तो सासारिक प्रार्थना को दुर्बलता समझे और धार्मिक प्रार्थना को ही सच्ची प्रार्थना समझे।

प्र० : तीर्थंकर चन्द्रो से अधिक निर्मल कैसे ?

उ० . चन्द्र मे कुछ कलक (कालापन) दीखता है, पर तीर्थंकरों मे चार घाति-कर्म-रूप कलक नही होता, इसलिए वे चन्द्रो से अधिक निर्मल है।

प्र० तीर्थंकर सूर्यो से अधिक प्रकाश करने वाले कैसे ?

उ० : सूर्य कुछ ही क्षेत्र तक प्रकाश करता है, पर तीर्थंकर अपने केवल ज्ञान से सब क्षेत्रो को जानते हैं और प्रकाशित करते हैं। इसलिए तीर्थंकर सूर्यो से अधिक प्रकाश करने वाले हैं।

पाठ २२ बाईसवाँ

७. नमोत्थुणं : शक्रस्तव का पाठ

(पहला) नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं ॥१॥ आइगराणं तित्थयराणं सयं संबुद्धाणं ॥२॥ पुरिसुत्तमाणं पुरिससोहाणं पुरिस-वर-पुंडरीयाणं पुरिस-वर-गंधहत्थीणं ॥३॥ लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहियाणं लोगपईवाणं लोगपज्जोयगराणं ॥४॥ अभयदयाणं चक्खु-दयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं बोहिदयाणं ॥५॥ धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं धम्म-

सारहीणं धम्म-वर-चाउरंत-चक्कवट्टीणं ॥६॥ 'दीवो†ताणं सरणं गई पइट्ठा', अप्पडिहय-वर-नाण-दंसण-धराणं, विअट्टछउमाणं ॥७॥ जिणाणं जावयाणं तिन्नाणं, तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं, मुत्ताणं मोयगाणं ॥८॥ सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं, सिव-मयल-मरुअ-मणंत-मक्खय मव्वाबाह-मपुणरावित्ति-सिद्धिगइ-नामधेयं ठाणं सपत्ताणं, नमो जिणाणं जियभयाणं ॥९॥

(दूसरा) नमोत्थुणं . सिद्धिगइ नामधेयं ठाणं संपाविउ कामाणं। नमो जिणाणं जियभयाणं।

शब्दार्थ

नमोत्थुणं=नमस्कार हो।

किनको ?

अरिहंताणं=सभी अरिहन्त। भगवन्ताणं=भगवन्तो को।

अरिहत भगवान् स्वयं कैसे हैं ?

आइगराणं=धर्म की आदि करने वाले। तित्थयराणं=धर्म-तीर्थ की रचना करने वाले। सयं=स्वय ही। संबुद्धाणं=बोध पाने वाले।

अरिहत भगवान् सबमे कैसे हैं ?

पुरिसुत्तमाणं=सब पुरुषो मे श्रेष्ठ। पुरिस=सब पुरुषो मे।

---

†व्याकरण की दृष्टि से 'दीव-ताणसरण-गई-पइट्ठाणं' पाठ होना चाहिए। किन्तु 'उववाइयसुत्त' मे उपर्युक्त पाठ ही है।

सीहाणं=सिंह के समान (पराक्रमी)। **वर**=श्रेष्ठ। **पुंडरीयाणं**=पुण्डरीक कमल के (श्रेष्ठ जाति के कमल के) समान (मनोहर)। **वर**=श्रेष्ठ। **गंधहत्थीणं**=गंध हस्ती के (जिसके मद की गंध से दूसरे हाथी भाग जाते है, उसके) समान (परवादियो को भगाने वाले)।

अरिहंत भगवान् विश्व के लिए कैसे है ?

लोगुत्तमाणं=लोक मे उत्तम। **लोग**=लोक के। **नाहाणं**=नाथ (अनिष्ट का नाश करने वाले)। **हियाणं**=हितकारी (इष्ट की प्राप्ति कराने वाले)। **पइवाणं**=दीपक (लोक को प्रकाश देने वाले) तथा। **पज्जोयगराणं**=प्रद्योत करने वाले (लोक को प्रकाशित करने वाले)।

अरिहत भगवान् हमे क्या देने वाले है ?

अभय=अभय के। **दयाणं**=देने वाले। **चक्खु**=(ज्ञान की) आँखे। **मग्ग**=(मोक्ष का) मार्ग। **सरण**=(मोक्ष की) शरण। **जीव**=(सयम रूप) जीवन तथा। **बोहि**=बोधि (सम्यक्त्व)। **दयाण**=देने वाले।

अरिहत भगवान् हमारे लिए क्या करते हैं ?

धम्म=धर्म के। **दयाणं**=देने वाले। **धम्म**=धर्म के। **देसयाणं**=(उप) देशक। **धम्म**=धर्म के। **सारहीणं**=सारथी। **धम्म**=धर्म के। **वर**=श्रेष्ठ। **चाउरंत**=चार (गति) का अन्त करने वाले। **चक्कवट्टीणं**=चक्रवर्ती। **दीवो**=(ससार-समुद्र मे डूबते हुओ को) द्वीप के समान। **ताणं**=त्राणभूत (रक्षक)। **सरणं**=शरणभूत। **गइ**=गतिभूत। **पइट्ठा**=प्रतिष्ठा (आधार) भूत।

किस शक्ति से ऐसा उपकार करते है ?

अप्पडिहय = (क्योकि वे) अप्रतिहत (पर्वतादि से कही भी न रुकने वाले)। **वरनाण** = श्रेष्ठ ज्ञान (केवल ज्ञान तथा) **दंसणं** = (केवल) दर्शन के। **धराण** = धारक हैं उन्होंने। **विअट्टछउमाणं** – ज्ञानावरणीयादि चार कर्म नष्ट कर दिये है।

अद्वितीय उपकारी : अपने समान बनाने वाले

जिणाण = (स्वय आत्म-शत्रुओं को) जीते हुए। **जावयाणं** = (तथा दूसरों को भी) जिताने वाले। **तिण्णाणं** = (स्वयं ससार-समुद्र को) तिरे हुए। **तारयाणं** = (तथा दूसरो को भी) तारने वाले। **बुद्ध णं** = (स्वय) बोध पाये हुए। **बोहयाणं** = (तथा दूसरों को भी) बोध प्राप्त कराने वाले। **मुत्ताणं** = (स्वयं कर्म-बन्धन से छूटे हुए। **मोयगाणं** = (तथा दूसरो को भी) छुडाने वाले (ऐसे)। **सव्वन्नूणं** = सर्वज्ञ। **सव्वदरिसीणं** = सर्वदर्शी।

अरिहत भगवान् कैसे स्थान को पधारे ?

सिवं = शिव (उपद्रवरहित)। **अयलं** = अचल (स्थिर)। **अरुअ** = अरुज (रोगरहित)। **अणंतं** = अनत (अन्तरहित)। **अवखयं** = अक्षय (क्षयरहित)। **अव्वाबाह** = अव्याबाध (बाधा-रहित)। **अपुणरावित्ति** = अपुनरावृत्ति (पुनरागमन रहित)। **सिद्धि गइ** = सिद्धि गति। **नामधेयं** = नाम वाले। **ठाणं** = स्थान को। **संपत्ताणं** = प्राप्त हुए। (दूसरे मे)। **संपाविउकामाणं** = पाने की इच्छा वाले (योग्यता वाले)।

जियभयाणं = (ऐसे) भय को जीतने वाले। **जिणाणं** = जिनको। **नमो** = नमस्कार हो।

पाठ २३ तेईसवाँ

नमोत्थुणं प्रश्नोत्तरी

प्र० : नमोत्थुणं सामायिक सूत्र का कौनसा पाठ है ?
उ० : सातवाँ पाठ है।

प्र० : छठा पाठ कौनसा है ?
उ० : 'करेमि भंते' अर्थात् सामायिक का प्रत्याख्यान लेने का पाठ।

प्र० : 'करेमि भंते' कब बोला जाता है ?
उ० : सामायिक लेते समय लोगस्स पढ़ लेने के पश्चात् वंदना करके।

प्र० : नमोत्थुणं कब पढा जाता है ?
उ० : सामायिक लेते समय 'करेमि भंते' से सामायिक लेने के बाद तथा पारते समय लोगस्स के बाद।

प्र० : इस पाठ का दूसरा नाम क्या है ?
उ० : शक्रस्तव का पाठ।

प्र० : इसे शक्रस्तव का पाठ क्यों कहते है ?
उ० : पहले देवलोक के इन्द्र, जिनका नाम शक्र है, वे भी इसी नमोत्थुणं से अरिहन्तों व सिद्धों की स्तुति करते हैं। इसलिए इसे 'शक्रस्तव' कहा जाता है।

प्र० : अरिहन्तों तथा सिद्धो की स्तुति (स्तव) कैसे करनी चाहिए ?
उ० : जैसे कि लोगस्स या नमोत्थुणं में की गई है, अर्थात् उन्होंने दीक्षित बनकर जो तप किये और गुण प्राप्त किये, केवली बनकर जो उपकार किये, मोक्ष पहुँचकर जो सुख प्राप्त किये—उन्हीं कार्यों की स्तुति करनी चाहिए।

परन्तु उन्होने ससार मे रहते जो-कुछ सासारिक कार्य किये, उसकी स्तुति नही करनी चाहिए।

प्र० : नमोत्थुरण के पढ़ने से क्या लाभ हैं ?

उ० : लोगस्स के पढने से जो लाभ हैं, प्रायः वे ही लाभ नमोत्थुरण से भी होते हैं, क्योकि दोनो मे तीर्थंकरो का कीर्त्तन, वन्दन और पूजन किया गया है।

प्र० : लोगस्स और नमोत्थुरण मे क्या अन्तर है ?

उ० : लोगस्स में प्रधान रूप से १. नाम-स्मरण २ नाम-स्तुति ३. नमस्कार और ४. प्रार्थना है तथा नमोत्थुरण मे १. गुरण-स्मरण २ गुरण-स्तुति और ३. नमस्कार है।

प्र० : जबकि लोगस्स और नमोत्थुरण दोनो समान लाभ वाले हैं, तब दोनो की क्या आवश्यकता है ?

उ० : १. नाम-स्मरण, नाम-स्तुति, प्रार्थना, गुरण-स्मरण, गुरण-स्तुति, नमस्कार आदि सभी भक्ति के विविध रूप हैं। सभी रूपो से की गई भक्ति, सर्वाङ्गीरण होती है, अतः लोगस्स, नमोत्थुरणं दोनो आवश्यक हैं।

२. सभी की आत्माएँ समान नहीं होती। किसी की नाम-स्मरण और नाम-स्तुति-रूप भक्ति मे विशेष तल्लीनता होती है, तो किसी की प्रार्थना मे विशेष तल्लीनता होती है, किसी की गुरण-स्मरण और गुरण-स्तुति मे विशेष तल्लीनता होती है, तो किसी की नमस्कार मे विशेष तल्लीनता होती है। इनमे से कोई भी भक्त भक्ति के लाभ से वचित न रहे—इसलिए भी लोगस्स तथा नमोत्थुरण दोनो आवश्यक हैं।

३. कोई नाम-स्मरण या नाम-स्तुति या प्रार्थना या गुरण-स्मरण या गुरण-स्तुति या नमस्कार इनमे से—किसी एक

ही भक्ति को उचित और अन्य प्रकार की भक्ति को अनुचित न बतावे, इसलिए भी लोगस्स और नमोत्थुणं दोनो आवश्यक है।

प्र० : सभी प्रकार की भक्ति मे कौनसी भक्ति सर्वश्रेष्ठ है ?

उ० : गुण-स्मरण-रूप भक्ति।

प्र० : क्या इस भक्ति से सभी भक्तियो का काम चल सकता है ?

उ० : सामान्यतया नही। कोई भक्ति अधिक लाभ कर सकती है, पर दूसरी भक्ति का काम नही कर सकती। इसलिए सभी भक्तियाँ करनी चाहिए।

पाठ २४ चौबीसवाँ

सामायिक के ३२ दोष

मन के १० दोष

गाथा :

१ अविवेक २ जसो कित्ती ३ लाभत्थी,
४ गव्व ५ भय ६ नियाणत्थी।
७ संसय ८ रोस ९ अविणउ,
१० अबहुमाणए, दोसा भाणियव्वा ॥१॥

हिन्दी छाया :

१ अविवेक २ यशःकीर्ति ३ लाभार्थी,
४ गर्व ५ भय ६ निदानार्थी।

७ संशय ८ रोष ९ अविनय,
१० अबहुमान—ये मनोदोष ॥१॥

१. **अविवेक**=सावद्य-निरवद्य आदि का विवेक न रखे। २ **यशःकीर्त्ति**=नाम, आदर-सत्कार आदि की इच्छा से सामायिक करे। ३. **लाभार्थ**=धन, पुत्र, स्त्री आदि के लाभ के लिए करे। ४ **गर्व**=सामायिक की शुद्धता, सख्या तथा अपने कुल आदि का गर्व करे। ५ **भय**=श्री सघ की निन्दा, समाज का अपवाद, राज का दण्ड, लेनदार की उपस्थिति आदि के भय से करे। ६ **निदान**=मोक्ष के अतिरिक्त अन्य फल की इच्छा से करे। ७. **संशय**='अब तक कुछ फल नही हुआ, अब क्या होगा ?' आदि सामायिक के फल मे सशय करे। ८. **रोष**=रूठ-झगड कर सामायिक करे या सामायिक मे राग-द्वेष करे। ९ **अविनय**=सामायिक तथा देव गुरु धर्म का विनय न करे। १० **अबहुमान**=अति प्रेरणा से या परवश होकर करे, हृदय मे बहुमान न हो या न रखे।

वचन के १० दस दोष

गाथा :

१ कुवयण २ सहसाकारे,
३ सछंद ४ संखेव ५ कलहं च।
६ विगहावि ७ हासो ८ ऽसुद्धं,
९ निरवेक्खो, १० मुणमुणा, दोसादस ॥२॥

हिन्दी छाया :

१ कुवचन २ सहसाकार
३ स्वच्छंद, ४ संक्षेप ५ कलह तथा।

६ विकथा ७ हास्य ८ अशुद्ध,
९ निरपेक्ष, १० मुम्मुन वचन दोष ॥२॥

१ कुवचन = विषयकारी, कपाययुक्त, अपशब्द आदि वचन कहे। २ सहसाकार = बिना विचारे चार भाषा मे से कोई भी भाषा बोले। ३. स्वच्छन्द = निरकुश होकर बोले। ४. सक्षेप = सामायिक की विधि पूरी न करे, पाठो को सक्षेप मे बोले। ५. कलह = वचन-युद्ध करे, क्लेशकारी वचन बोले। ६. विकथा = स्त्री-कथादि चार कथाओ मे से कोई कथा करे। ७. हास्य = हास्य, कौतुहल, व्यग आदि करे। ८ अशुद्ध = पाठो को 'वाइद्ध' आदि अतिचार सहित अशुद्ध पढे अथवा अव्रती को आदर-सत्कार दे, उसे आने-जाने के लिए कहे। ९ निरपेक्ष = पाठ उपयोग-शून्य या उपेक्षा करके पढे। १०. मुम्मुन = पाठ स्पष्ट न बोले, गुनगुनावे।

काया के १२ बारह दोष

गाथा :

१ कुआसणं २ चलासणं ३ चलदिट्ठी,
४ सावज्ज किरिया ५ ऽऽलंबण ६ ऽऽकुंचण पसारणं।
७ आलस्स, ८ मोडन ९ मल १० विमासणं।
११ निद्दा १२ वैया वच्चत्ति, बारस काय दोसा ॥३॥

हिन्दी छाया :

१ कुआसन २ चलासन ३ चलदृष्टि,
४ सावद्यक्रिया ५ ऽऽलंबन ६ आकुञ्चन प्रसारण।

७ आलस्य ८ मोटन ९ मल १० विमासन,
११ निद्रा १२ वैयावृत्य, ये बारह काय दोष ॥३॥

१. **कुआसन**=अविनय-अभिमानयुक्त आसन से बैठे। जैसे—पैर पसारे, पाँव पर पाँव चढ़ाकर बैठे। २. **चलासन**=बिना कारण अग का आसन, वस्त्र का आमन या भूमि का आसन बदले। ३. **चलदृष्टि**=दृष्टि स्थिर न रखे, बिना कारण इधर-उधरदेखता रहे। ४. **सावद्यक्रिया**=पाप-क्रिया करे, सासारिक क्रिया करे, आभूषण, घर, व्यापारादि की रखवालो करे या सकेत आदि करे। ५. **आलंबन**=रोगादि कारण बिना भीत, खभे आदि का टेका ले। ६ **आकुंचन प्रसारण**=अकारण हाथ-पैर सिकौड़े-पसारे। ७ **आलस्य**=आलस्य से अग मोडे। ८. **मोटन**=हाथ-पेर की अगुलियाँ मोडे-चटकावे। ९. **मल**=शरीर का मल उतारे। १०. **विमासन**=शोकासन से बैठे, बिना पूंजे खाज खुजाले, रात्रि मे बिना पूंजे मर्यादा या आवश्यकता से अधिक चले। ११. **वयावृत्य**=बिना कारण दूसरो से सेवा करावे (या **कंपन**) स्वाध्यायादि करते डोलता रहे।

◆

पाठ २५ पच्चीसवाँ

'सामायिक' प्रश्नोत्तरी

प्र० सामायिक कहाँ करनी चाहिए ?

उ० . सामायिक निरवद्य स्थान मे करे। जहाँ तक हो,

१. जहाँ सन्त विराजते हों, वहाँ या उनके अभाव में २. जहाँ श्रावक सामायिकादि धर्म-क्रिया कर रहे हो या ३. करते हो, उस स्थान मे सामायिक करे। यदि ४. अपने घर मे सामायिक करना पडे, तो घर की रखवाली आदि के भाव उत्पन्न न हो, ऐसे एकान्त स्थान मे सामायिक करने का उपयोग रक्खे।

प्र० : सामायिक किस समय करनी चाहिये ?

उ० : यदि सामायिक एक से अधिक-कम वनती हो, तो १ प्रातः उठते ही करे या २. भोजन से पहले तक सामायिक कर लेने का प्रयत्न रक्खे। यदि उस समय तक न वन सके, तो ३. सूर्यास्त से पहले ही चउविहाहार (१. अशन, २ पान, ३. खाद्य, ४. स्वाद्य) या तिविहाहार (पानी छोड कर) का प्रत्याख्यान करके सायकाल प्रतिक्रमणादि के समय सामायिक करे। अथवा यदि यह भी अनुकूलता न हो, तो ४. जव भी अवसर मिले, तभी सामायिक करे। परन्तु जहाँ तक हो, किसी भी दिन को सामायिक क्रिया-रहित न जाने देने का प्रयत्न करे।

प्र० सामायिक का वेश कैसे पहने तथा उपकरण कैसे रक्खे ?

उ० : निरवद्य स्थान को देख-पूंजकर वहाँ अपना आसन लगावे। सासारिक वेश—कुरता, टोपी, पगडी, पेण्ट, पायजामा आदि—उतारे। एक लाग वाली धोती लगावें। (सतिजी के स्थान का आगार)। दुपट्टा लगाना हो, तो स्त्रियो के सामने निश्चित रूप से तथा अन्य समय में भी प्राय किसी भी कधे या वाहु को खुला न रखते हुए दुपट्टा लगावे। मुख-वस्त्रिका का प्रतिलेखन करके उसमे

डोरा डालकर मुँह पर बाँधें। माला, पुस्तक आदि को अपने आसन पर रक्खे। पूंजनी को पुस्तक से कुछ दूर रक्खे, पुस्तक पर न रक्खे।

प्र० : सामायिक लेने की विधि क्या है ?

उ० : सन्तों के उपाश्रय में सामायिक करने का अवसर आवे, तो विनय के लिए पहले सन्तो को वन्दन करे, फिर वेश-परिवर्तन करे। फिर पुनः १. तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार पचांग वन्दना करे। 'तिक्खुत्तो से करेमि' तक बोलते हुए तीन बार प्रदक्षिणावर्त करे। फिर दोनों घुटने भूमि पर टिका कर दोनों हाथों को सीप के समान जोडकर मस्तक पर लगाकर 'वंदामि से पज्जुवासामि' तक का पाठ बोलें। फिर पचाग झुकाते हुए 'मत्थएणं वदामि' कहे। तीन बार वन्दना करके चउवीसत्थव (आलोचना आदि) की आज्ञा ले। यदि गुरुदेव न हो, तो पूर्व या उत्तर दिशा में मुंह करके भगवान् महावीर-स्वामी को या सीमधरस्वामी को वदन करे। फिर यदि बडे श्रावक उपस्थित हों, तो उनसे 'चउवीसत्थव' की आज्ञा ले। न हो, तो भगवान् से ही आज्ञा ले। आज्ञा लेकर २ नमस्कार मत्र पढे। फिर ३. इच्छाकारेणं का पाठ बोलकर ईर्यापथिक की आलोचना करें। फिर ४. तस्सउत्तरी बोलकर प्रायश्चित्त आदि के लिए कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा करे। 'वोसिरामि' तक बोलने के पश्चात् कायोत्सर्ग करके कायोत्सर्ग मे इच्छाकारेण के पाठ का 'इरिया वहियाए विराहणाए से ववरोविया' तक का अश मन मे चिन्तन करे। इस प्रकार कायोत्सर्ग-पूर्वक दूसरी बार की आलोचना-रूप प्रायश्चित्त से

पूर्ण शुद्धि करके पूर्व की प्रतिज्ञानुसार 'णमो अरिहंताणं' कह कर कायोत्सर्ग पारे। फिर 'णमो अरिहन्ताण से साहूण' तक एक प्रकट नमस्कार मन्त्र पढ। फिर ध्यान पारने का पाठ पढे। फिर कीर्त्तन के लिए चतुर्विंशतिस्तव-रूप ५. लोगस्स का पाठ पढ़े। फिर वन्दन करके गुरुदेव से या बडे श्रावक से सामायिक का प्रत्याख्यान करे या उनकी आज्ञा होने पर अथवा उनके अभाव में भगवान् की साक्षी से स्वय ६. 'करेमि भते' के पाठ से सामायिक का प्रत्याख्यान करे। पाठ मे 'जाव नियम' शब्द से आगे जितनी सामायिके लेनी हों, उतने मुहूर्त उपरान्त का कथन करे। फिर ७. दो नमोत्थुणं पढे। सिद्ध भगवान् को दिये जाने वाले पहले नमोत्थुण में 'ठाणं सपत्ताण' तथा अरिहन्त भगवान् को दिये जाने वाले दूसरे नमोत्थुण मे 'ठाण सपाविउ कामाण' कहे। यों यह सामायिक लेने की विधि पूरी हुई।

प्र० : सामायिक पारने की विधि क्या है ?

उ० : सामायिक पारने को भी प्राय यही विधि है। जो अन्तर है, वह इस प्रकार है :

सामायिक में अट्ठारह सावद्य योग (पाप) का प्रत्याख्यान किया जाता है। इसलिए सामायिक करने की तथा उसके लिए चउवीसत्थव की गुरुदेव आदि से आज्ञा ली जाती है। परन्तु सामायिक पारने पर सावद्य योग (पाप) खुले हो जाते है। उन्हे खोलने की गुरुदेव आदि आज्ञा नहीं देते। इसलिए सामायिक पारने की आज्ञा के लिए वन्दना आदि न करे।

सीधे ही २. 'नमस्कार मन्त्र' ३. 'इच्छाकारेण' और ४. 'तस्सउत्तरी' बोलकर कायोत्सर्ग करे। कायोत्सर्ग मे ५. लोगस्स का ध्यान करे। सामायिक लेते समय कायोत्सर्ग में जैसे इच्छाकारेण के पाठ के कुछ आगे-पीछे के शब्द छोड़े जाते हैं, वैसे लोगस्स मे एक भी पद नहीं छोड़े अर्थात् 'लोगस्स से दिसतु' तक पूरा पाठ बोले। फिर 'णमो अरिहताण' कहकर कायोत्सर्ग पारे। फिर एक प्रकट नमस्कार मन्त्र तथा कायोत्सर्ग पारने का पाठ कहे। फिर एक प्रकट लोगस्स कहे।

'करेमि भते के पाठ से सामायिक ली जाती है।' इसलिए पारते समय वह पाठ न बोले। सीधे ही पहले के समान ७ दो नमोत्थुणं दे। फिर सामायिक पारने का पाठ ८. 'एयस्स नवमस्स सामाइयवयस्स' पूरा कहे। फिर एक नमस्कार मन्त्र पढ़ें। यों यह सामायिक पारने की विधि पूरी हुई।

प्र० : सामायिक की विधि खडे रहकर करना चाहिए या बैठकर ?

उ० : जहाँ तक शरीर मे थोडी भी शक्ति हो, वहाँ तक मनोबल रखकर खडे रहकर विधि करना श्रेष्ठ है। शक्ति होते हुए भी बिना कारण बैठे-बैठे सामायिक की विधि करने से 'अविनय-अबहुमान' नामक दोष लगता है। कारण होने पर भी जहाँ तक सम्भव हो, पर्यंक (आलथी-पालथी) आदि अच्छे आसन लगाकर बैठें। कुआसन से नही बैठें।

प्र० : खडे रहने की विधि क्या है ?

उ० : सशक्त और कारणरहित अवस्था मे खडे रहते समय

पैरो के अगले भाग मे चार अगुल का तथा पिछले भाग मे कुछ कम चार अगुल का अन्तर डालकर खडे रहना चाहिए। इस समय मस्तक को कुछ झुकाकर रखना चाहिए तथा दृष्टि चल न रखते हुए स्थिर रखनी चाहिए।

प्र० : खडे रहने की ऐसी मुद्रा को क्या कहते हैं और क्यों कहते है ?

उ० : ऐसी मुद्रा को 'जिनमुद्रा' कहते हैं। १. जिनेश्वर (अरिहत) भगवान् कायोत्सर्ग आदि इसी मुद्रा से करते है, इसलिए इसे 'जिनमुद्रा' कहते हैं। २ इस मुद्रा से आलस्य पर विजय मिलती है। ३ तन-मन मे दृढता उत्पन्न होकर परिषहो (कष्टो) को सहने की शक्ति आती है। इसलिए भी इसे 'जिनमुद्रा' कहते है।

प्र० : हाथ जोडने की विधि क्या है ?

उ० : दोनो हाथो की अगुलियाँ आपस मे फँसाकर कमल की कली के आकार मे हाथ जोडने चाहिएँ और हाथो की दोनो कोहनियो को नाभि के निकट टिकाना चाहिए।

प्र० : हाथ जोडने की इस मुद्रा को क्या कहते है और क्यों कहते है ?

उ० : इस मुद्रा को 'योगमुद्रा' कहते है। इससे देव, गुरु, धर्म, शास्त्र, आत्मा जिसका भी ध्यान करना हो, उसमें तन-मन अधिक अच्छे जुड़ जाते हैं। इसलिए इसे 'योगमुद्रा' कहते है।

प्र० : क्या सामायिक लेने की और पारने की सारी विधि जिनमुद्रा से खडे रहकर और योगमुद्रा से हाथ जोड कर करनी चाहिए अथवा पर्यंक आदि आसन से बैठ कर और योगमुद्रा से हाथ जोड़ कर करनी चाहिए ?

उ० . नही। कायोत्सर्ग और नमोत्थुण की विधि छोडकर शेष पाठो की विधि करनी चाहिए।

प्र० कायोत्सर्ग की विधि क्या है ?

उ० कायोत्सर्ग जिनमुद्रा मे खडे होकर या पर्यंकादि आसन से बैठकर करना चाहिए, परन्तु योगमुद्रा से हाथ नही जोडने चाहिएँ। यदि कायोत्सर्ग जिनमुद्रा से (खडे रह कर) करना हो, तो दोनो हाथो को घुटनो की ओर लम्बे करके रखने चाहिएँ और खुले रखने चाहिएँ। और यदि पर्यंकासन (आलथी-पालथी) से करना हो, तो बाये हाथ को आलथी-पालथी के बीचोबीच खुला रखना चाहिए और उसी पर दाये (जीमने) हाथ को खुला रखना चाहिए।

प्र० · कायोत्सर्ग मे हाथ इस प्रकार क्यो रक्खे जाते है ?

उ० . हाथो को इस प्रकार रखने से देह के प्रति ममता छूटने मे सहायता मिलती है। कायोत्सर्ग मे देह के प्रति ममता छोडनी चाहिए, इसलिए कायोत्सर्ग मे हाथो को इस प्रकार रक्खा जाता है।

प्र० · नमोत्थुणं देने की विधि क्या है ?

उ० नमोत्थुण देते समय योगमुद्रा से हाथ जोडने चाहिएँ तथा दाये घुटने को मोडकर नीचे भूमि पर टिकाना चाहिए और बाये घुटने को मोडकर खडा रखना चाहिए। (यह नियम सलेखना के पाठ मे पढे जाने वाले नमोत्थुण के लिए लागू नही होता। सलेखना के समय नमोत्थुण पर्यंक आसन से बैठकर पढा जाता है।)

प्र० : नमोत्थुण ऐसे आसन से क्यो पढा जाता है ?

उ० : नमोत्थुण मे भक्ति की जाती है। भक्ति के समय

'भगवान् बडे है और हम छोटे है' यह बताने वाला विनयपूर्ण आसन होना चाहिए। शरीर के दाहिने अग शुभ और बाये अग अशुभ माने गये हैं। अत दाहिना घुटना शुभ और बायाँ घुटना अशुभ है। दाहिना शुभ घुटना नीचे टिकाना और बायाँ अशुभ घुटना खडा रखना 'भगवान् बडे है और हम छोटे है—यह प्रकट करता है। इसलिए नमोत्थुण मे ऐसे आसन से बैठा जाता है। हाथ जोडना तो स्पष्ट ही 'भगवान् (या गुरु) बडे और हम छोटे'—यह बतलाने वाला है ही।

प्र० . सामायिक मे क्या करना चाहिए ?

उ० : सामायिक मे सावद्य योग (अट्ठारह पाप) त्यागे जाते है, इसलिए उन्हे छोडकर निरवद्य योग अपनाना चाहिए। विशिष्ट प्रकार का पुण्य, सवर तथा निर्जरा—ये तीनो निरवद्य योग हैं। इनमे भी ध्यान मुख्य है। इसलिए ध्यान की ओर अधिक लक्ष्य देना चाहिए।

प्र० धर्म-ध्यान करने तथा टिकाने के आलंबन (उपाय) बताइये।

उ० धर्म-ध्यान के आलंबन चार है

१. **वाचना**=वॉचना लेना अर्थात् नया तत्वज्ञान, नई धार्मिक कथाएँ या स्तुतियाँ सीखना।

२. **पृच्छना**=पूछना अर्थात् तत्वज्ञान, धार्मिक कथा या स्तुतियो मे जो भी शका उत्पन्न हो, उन्हे वडो से (ज्ञानियो से) पूछकर दूर करना तथा जिज्ञासा पूरी करना।

३. **परियट्टणा**=परिवर्तना अर्थात् सीखा हुआ तत्वज्ञान, सीखी हुई कथाएँ, स्तुतियाँ तथा प्राप्त किया हुआ समाधान दुहराना।

४. अणुप्पेहा=अनुप्रेक्षा, अर्थात् सीखे हुए तत्वज्ञान को, धर्म-कथाओ को, स्तुतियो को तथा प्राप्त किये हुए समाधान को दुहराते हुए उस पर चिन्तन करना, बारह भावनाएँ भाना।

प्र० : सामायिक शुद्ध और उत्तम कैसे हो ?

उ० सामायिक के समय चारो आलवनों से धर्म-ध्यान करते रहने पर प्राय मन पाप मे नही जाता। यदि कभी चला जाय, तो पुन शीघ्र उससे लौट आता है। मन पाप मे चले जाने पर तत्काल उसे धर्म मे जोडने के साथ ही 'मिच्छा मि दुक्कडं' देना (कहना) चाहिए। इस प्रकार करते रहने पर सामायिक नित्य अधिक शुद्ध और उत्तम होती जायगी।

प्र० वहुत ध्यान रखने पर और वहुत प्रयत्न करने पर भी सामायिक मे मन थोड़ा-बहुत पाप मे चला ही जाता है, जिससे सामायिक मे अतिचार लग जाता है। अत जब तक निरतिचार सामायिक करने का योग्यता न आवे, तब तक सामायिक कैसे की जाय ?

उ० १ किसी भी काम को पूरा शुद्ध करने की योग्यता पहले नही आती। फिर धर्म के काम मे तो पहले योग्यता आना बहुत कठिन है। योग्यता काम करते-करते धीरे-धीरे ही आती है। जो पहले योग्यता आने की प्रतीक्षा मे काम नही करता, वह योग्यता नही पा सकता, वरन् उसके लिए योग्यता पाने का मार्ग ही दूर हो जाता है। इसलिए सामायिक सातिचार हो, तो भी सामायिक करते रहना चाहिए, २ दूसरी बात यह भी है कि ध्यान और प्रयत्न रखते हुए भी सामायिक मे अतिचार लगकर

सामायिक मे हानि हो जाय, तो भी योग में लाभ ही अधिक रहेगा। इसलिए भी सामायिक सतिचार होते हुए भी अवश्य करते रहना चाहिए।

प्र० · हम अणुव्रत-गुणव्रत धारण न करें, दिन रात के २९ भाग तक बड़े-बडे पाप करते रहे और केवल एक सामायिक कर ले, तो उससे क्या लाभ है ?

उ० · कोई विशेष लाभ नही। क्योकि शेष २९ भाग तो पाप में जाते ही है। साथ ही साथ उन पापो के कारण सामायिक के समय मे भी विचारो की अधिक पवित्रता और अच्छे विचारो की अधिक स्थिरता नही रह पाती। इसलिए आप अणुव्रत-गुणव्रत धारण कीजिए और इस प्रकार दिन-रात्रि को अधिक सफल बनाइए।

प्र० . अणुव्रत-गुणव्रत धारण न करने के क्या कारण है ?

उ० : अणुव्रत-गुणव्रत धारण न करने के दो कारण है: १. स्वय मे रही हुई पाप की अधिक रुचि और २ कुटुम्ब, समाज, राज्य आदि दूसरो मे रही हुई अनीति व कुरीति। शुभ भावना और पुरुपार्थ मे दृढता लाने पर पहला कारण शीघ्र और बहुत अशो मे दूर हो सकता है और दूसरा कारण भी कुछ समय से कुछ अश तक दूर हो सकता है। अत आप भावना और पुरुपार्थ कीजिए। अणुव्रत-गुणव्रत धारण बहुत करना कठिन नही है।

प्र० यदि धारण न कर सकें, तो ?

उ० · तो भी सामायिक करने मे आत्मा को कुछ लाभ ही है ·

१. जसे सारे दिन अडियल रहने वाला या उत्पथ में चलने वाला घोडा यदि ४८ मिनिट मे ५ मिनिट भी सुपथ पर चले, तो इसमे कुछ लाभ ही है, हानि नही।

२. या जैसे सारे दिन धूल में खेलने वाला बालक यदि ४८ मिनिट में ५ मिनिट भी शान्त होकर बैठे, तो उसे लाभ ही है, हानि नहीं।

३. या जैसे सारे दिन कष्ट पानेवाले दुःखी को यदि ४८ मिनिट मे ५ मिनिट भी आत्म-शान्ति मिले, तो उसे लाभ ही है, हानि नही।

इसी प्रकार यदि अणुव्रत-गुणव्रत धारण न करने वाला ४८ मिनिट की एक सामायिक करके उसमें पाँच मिनिट भी मन स्थिर रख सके, तो उसमें कुछ लाभ ही है, हानि नही।

४. जैसे ३० हाथ की रस्सी मे से २९ हाथ रस्सी कुएँ में पड गई हो और १ एक हाथ रस्सी में से भी केवल चार अगुल रस्सी ही हाथ मे रही हो, तो उस चार अंगुल रस्सी से भी वह पूरी रस्सी भी एक समय अपने हाथ में आ सकेगी।

५ या जैसे ३० चोरों में से एक चोर थोडा भी अपना बन गया, तो गया हुआ धन उसके द्वारा एक दिन पूरा-पूरा भी अपने हाथ मे आ सकेगा। इसी प्रकार यदि जीवन में एक भी सामायिक चलती रही, तो वह भविष्य मे आत्मा को बचा लेने मे काम ही आयेगी।

६ जिस प्रकार किसी रस्सी को बीच-बीच में से कई स्थानो पर काट दी हो और फिर भले ही गाँठें देकर उसे जोड़ भी दी हो, तो भी उसमे पहले वाला बल नही

रहता, न उसका पहले वाला मूल्य ही रहता है। वैसे ही जीवन की पापी रस्सी को वीच में सामायिकें कर-कर के कई स्थानो से काट दी हो और फिर भले ही उसे जोड दी हो, तो भी उसमे पाप का वल अधिक नही रहता, न पाप का पहले वाला मूल्य (भाव) ही रहता है। इसलिए पाप का वल और मूल्य (भाव) घटाने के लिए भी सामायिक उपयोगी है। अर्थात् एक मनुष्य दिन-रात पाप ही पाप करे, वह सामायिक या अन्य कोई भी धर्म-क्रिया न करे, तो उसके पाप मे जो तीव्र भावना रहेगी, वैसी तीव्र भावना कोई मनुष्य दिन-रात में केवल ही सामायिक करने वाला क्यों न हो, उसमें नहीं रहेगी। क्योकि जैसे अणुव्रत-गुणव्रत के न होने से उसका प्रभाव सामायिक पर पडता है और सामायिक की शुद्धता मे मन्दता आती है, उसी प्रकार सामायिक का प्रभाव २९ मुहूर्त मे होनेवाली पाप की भावना पर और पाप के पुरुषार्थ पर कुछ-न-कुछ अवश्य पडता है और उसमे मन्दता आती है। इसलिए अणुव्रत-गुणव्रत धारण न हो सकने पर भो सामायिक अवश्य करनी चाहिए।

प्र० कुछ वडे-वडे लोग सामायिक करके विकथा निन्दा करने लग जाते हैं। क्या यह ठीक है ?

उ० आप बालक हो, अभी अपना जीवन बनाओ! दूसरों की आलोचना करना वडों का—गुरुओ का काम है। इसका विचार वे करेंगे। हाँ, आप यह अवश्य विचार रक्खो कि १. हम भविष्य में भी सामायिक शुद्ध करते

रहेंगे, २. दूसरों को भी शुद्ध सामायिक कराने वाले बनेंगे और ३. शुद्ध सामायिक करने वालो का अनुमोदन करके उत्साह बढ़ाने वाले होंगे।

अर्थ, भावार्थ, प्रश्नोत्तर और प्रासंगिक जानकारी सहित

सामायिक सूत्र समाप्त

◆

तत्व-विभाग

'पच्चीस बोल' के स्तोक (थोकड़े) के कुछ बोल

सामायिक सूत्र सार्थ के लिए अधिक उपयोगी चुने हुए बारह बोल अर्थ सहित। १, २, ३, ४, ५, ६, १०, १४, १८, १६, २२ और २३ वां। योग १२।

बोल : १. जो भगवान् या गुरुदेव बोले—वचन, कथन, बात। २. समान, वचन, कथन या बातो का समूह। ३ एक विषय। ४. सूत्रित अनेक विषय। ५. ज्ञान, जिसके द्वारा जानने योग्य, छोड़ने योग्य या आदरने योग्य तत्वो की जानकारी हो। ६. अक, सख्या। यह एक अनेकार्थक बहुप्रचलित और जैन पारिभाषिक शब्द है। इसके लिए जैन सूत्रो मे 'स्थान' शब्द का प्रयोग होता है।

स्तोक (थोकड़ा) : १. द्रव्य से, जिसके द्वारा शास्त्र के थोड़े मूल-भूत तत्वो का ज्ञान हो। २. क्षेत्र से, जिसके द्वारा थोडे पृष्ठो मे शास्त्र के मूल-भूत तत्वो का ज्ञान हो। ३ काल से, जिसके द्वारा थोडे समय मे शास्त्र के मूल-भूत तत्वों का ज्ञान

हो। और ४ भाव से, जिसके द्वारा अर्थ-रूप, सग्रह-रूप और क्रम-बद्ध होने के कारण थोडे परिश्रम से शास्त्र के मूल-भूत तत्वो का ज्ञान हो।

◆

पच्चीस बोल का स्तोक (थोकड़ा) सार्थ

पहला बोल : चार गति। दूसरा बोल : पांच जाति। तीसरा बोल : छह काय। चौथा बोल : पांच इन्द्रिय। पांचवां बोल : छह पर्याप्ति। नवमां बोल : बारह उपयोग। दसवां बोल : आठ कर्म। चौदहवां बोल : छोटी नव तत्व के ११५ भेद। अट्ठारहवां बोल : तीन दृष्टि। उन्नीसवां बोल : चार ध्यान। बाईसवां बोल : श्रावकजी के १२ बारह व्रत। तेईसवां बोल : साधुजी के पांच महाव्रत।

पहला बोल : 'चार गति'

गति : पुण्य-पाप के कारण जीव की होने वाली अवस्था-विशेष।

१. नरक गति : जिसमे जाकर महापापी जीव जन्म लेते हैं।

२. तिर्यञ्च गति : जिसमे जाकर सामान्य पापी जीव जन्म लेते हैं।

३. मनुष्य गति : जिसमे जाकर सामान्य पुण्यवान जीव जन्म लेते हैं।

४. देव गति : जिसमे जाकर महा पुण्यवान जीव जन्म लेते है।

तिर्यञ्च मे पाँचो जाति के जीव होते हैं। शेप नरक, मनुष्य तथा देव ये तीनो पञ्चेन्द्रिय ही होते है।

दूसरा बोल : 'पाँच जाति'

जाति : समान इन्द्रियो वाले जीवो का समूह।

१. एकेन्द्रिय : जिनको मात्र एक स्पर्श इन्द्रिय ही हो। जैसे पृथ्वीकाय आदि।

२. द्वीन्द्रिय : जिनको १ स्पर्श और २ रस—ये दो इन्द्रियाँ हो। जैसे लट, गिडौला, शख, सीप, कौडी, जोक, अलसिया इत्यादि।

३. त्रीन्द्रिय : जिनको १ स्पर्श २ रस और ३ घ्राण—ये तीन इन्द्रियाँ हो। जैसे जूं, कीड़ी, मकौडा, लीख, चाचन, खटमल आदि।

४. चतुरिन्द्रिय : जिनको १ स्पर्श २ रस ३ घ्राण और ४ चक्षु—ये चार इन्द्रियाँ हो। जैसे बिच्छू, भौरा, मक्खी, डास, मच्छर आदि।

५. पञ्चेन्द्रिय : जिनको १ स्पर्श २ रस ३ घ्राण ४ चक्षु और ५ श्रोत्र—ये पाँचो इन्द्रियाँ हो। जैसे पशु, पक्षी, मनुष्य आदि।

तीसरा बोल : 'छह काय'

काय : १. शरीर, देह या २. समान शरीर वाले जीवों का समूह।

१. पृथ्वीकाय : पृथ्वी (मिट्टी) ही जिनका शरीर हो। जैसे हीगलू, हड़ताल, भोडल, पत्थर, शीशा, सोना, चाँदी, हीरा, पन्ना आदि।

२ **अप्काय :** अप् (पानी) ही जिनका शरीर हो। जैसे बरसात का पानी, गड्ढे का पानी, ओस का पानी, धूँवर का पानी, कुएँ का पानी, बावडी का पानी, तालाब का पानी, समुद्र का पानी इत्यादि।

३. **तेजस्काय :** तेजस् (अग्नि) ही जिनका शरीर हो। जैसे काष्ठ की अग्नि, कोयले की अग्नि, बिजली की अग्नि, ज्वाला, अग्निकरण आदि।

४. **वायुकाय :** वायु (हवा) ही जिनका शरीर हो। जैसे सामान्य वायु, तिरछी तेज बहने वाली आँधी, ऊपर गोल बहने वाली वायु, गुजारव करती बहने वाली वायु आदि।

५. **वनस्पतिकाय :** वनस्पति ही जिनका शरीर हो। वनस्पति दो प्रकार की होती है—१ प्रत्येक और २ साधारण (निगोद)। जिस शरीर मे वह स्वय अकेला ही मुख्य रूप से रहे—ऐसा शरीर जिसे मिला हो, उसे **प्रत्येक** वनस्पति कहते हैं। जैसे वृक्ष, पौधे, झाडियाँ, लताएँ, बेले, घास, शाक, धान्य आदि। जिस शरीर मे वह और दूसरे भी अनत जीव साधारण रूप से रहे—ऐसा शरीर जिसे मिला हो, उसे **साधारण** वनस्पति कहते है। जैसे कादा, लशुन, गाजर, मूला, आलू, रतालू, नये निकले हुए पत्ते, अकुर वाला धान्य आदि।

ये ऊपर वाले पाँचो काय एकेन्द्रिय हैं तथा स्थावरकाय कहलाते है। जिनका शरीर ऐसा हो कि वे सर्दी-गर्मी से बचने के लिए धूप-छाँव आदि मे आ-जा न सके, उन्हे **स्थावरकाय** कहते है।

६. **त्रसकाय :** जिनका शरीर ऐसा हो कि वे सर्दी-गर्मी से बचने के लिए धूप-छाँव आदि मे आ-जा सकें। द्वीन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय तक ये चार त्रसकाय है।

चौथा बोल : 'पाँच इन्द्रिय'

इन्द्रिय : १. जिससे शब्द आदि जानने की सहायता मिले या २. जिससे आत्मा-रूप इन्द्र की पहचान हो। ऐसा आत्मा का ज्ञान-गुण (भावेन्द्रिय) तथा पुद्गलो का स्कंध (द्रव्येन्द्रिय)।

१ **श्रोत्रेन्द्रिय :** कान, कर्णेन्द्रिय।

२. **चक्षुरिन्द्रिय :** आँख, नेत्रेन्द्रिय।

३. **घ्राणेन्द्रिय :** नाक, नासिकेन्द्रिय।

४. **रसेन्द्रिय :** जिह्वा, जिह्वेन्द्रिय।

५. **स्पर्शेन्द्रिय :** शीत-ऊष्ण आदि स्पर्श को जानने वाली चमडी।

इन पाँच इन्द्रियो मे से स्पर्शेन्द्रिय सभी (छद्मस्थ) जीवो को होती है। एकेन्द्रियो को केवल यही स्पर्शेन्द्रिय होती है। यदि किसी को दो होगी, तो पाँचवी और चौथी होगी। जैसे द्वीन्द्रिय को। यदि किसी को तीन होगी, तो पाँचवी, चौथी और तीसरी होगी—जैसे त्रीन्द्रिय को। यदि किसी को चार होगी, तो पाँचवी, चौथी, तीसरी और दूसरी होगी—जैसे चतुरिन्द्रिय को। पाँच वाले को तो पाँचो होती ही हैं, जैसे पञ्चेन्द्रिय को। अर्थात् पहले की इन्द्रियाँ जिसे है, उसे पिछली २ इन्द्रियाँ अवश्य होगी। पिछली २ इन्द्रियाँ जिसे है, उसे पहले २ की इन्द्रियाँ हो भी सकती है और नही भी हो सकती।

पाँचवाँ बोल : 'छह पर्याप्ति'

पर्याप्ति : शरीरादि के योग्य पुद्गलो को ग्रहण करके उन्हे रसादि रूप मे परिणत करने वाली आत्मा की शक्ति-विशेष।

१. आहार-पर्याप्ति शरीरादि के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करने वाली शक्ति।

२. शरीर-पर्याप्ति शरीर आदि वर्गणा के योग्य ग्रहण किये हुए पुद्गलो में से खल (निःसार) भाग को पृथक करने वाली और शरीर वर्गणा के पुद्गलो से सप्त धातु निर्मित करने वाली शक्ति। सप्त धातु के नाम —१ रस, २ रक्त (लोही), ३ माँस, ४ मेद (चर्बी), ५ हड्डी, ६ मज्जा और ७ वीर्य।

३. इन्द्रिय-पर्याप्ति सप्त धातुओ में से इन्द्रिययोग्य पुद्गलों को ग्रहण करके स्पर्शेन्द्रियादि रूप मे परिणत करने वाली शक्ति।

४. श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति : श्वास और उच्छ्वास योग्य वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके श्वास और उच्छ्वास रूप में परिणत करके (बदल करके) छोडने वाली शक्ति।

५. भाषा-पर्याप्ति : भाषा वर्गणा के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके भाषा-रूप में परिणत करके छोड़ने वाली शक्ति।

६. मनः पर्याप्ति : मनोवर्गणा के योग्य पुद्गलो को ग्रहण करके मन-रूप मे परिणत करके छोडने वाली शक्ति।

इन छः पर्याप्तियो मे से तीन पर्याप्तियाँ सभी (ससारी) जीवों को पूर्ण मिलती ही हैं। एकेन्द्रियो को पहली चार पूरी मिल सकती हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय को पहली पाँच पूरी मिल सकती हैं और पञ्चेन्द्रिय को छहों पूरी मिल सकती हैं।

नवमाँ बोल : 'बारह उपयोग'

पाँच ज्ञान, तीन अज्ञान, तथा चार दर्शन। योग १२।

उपयोग : द्रव्यो में रहे हुए सामान्य या विशेष गुण को जानना। (जानने का व्यापार (प्रवृत्ति) करना)।

पाँच ज्ञान

ज्ञान १. द्रव्यों में रहे हुए विशेष गुण को जानने की लब्धि (शक्ति) तथा २ विशेष गुण का उपयोग (जानना)।

१. मति ज्ञान : १. इन्द्रिय और मन की सहायता से रूपी तथा अरूपी द्रव्यो मे रहे हुए विशेष गुण को जानने की लब्धि (शक्ति) तथा २ विशेष गुण का उपयोग (जानना)।

२. श्रुत ज्ञान : श्रुत की (शास्त्रो की) सहायता से रूपी तथा अरूपी द्रव्यो मे रहे हुए विशेष गुण को जानने की लब्धि (शक्ति) तथा २ विशेष गुण का उपयोग (जानना)।

३. अवधि ज्ञान : १ मात्र आत्मा की सहायता से केवल रूपी द्रव्यो मे रहे हुए विशेष गुण को जानने की लब्धि (शक्ति) तथा २ विशेष गुण का उपयोग (जानना)।

४. मनःपर्याय ज्ञान : १. मात्र आत्मा की सहायता से केवल मन की पर्यायो को जानने की लब्धि (शक्ति) तथा २. विशेष गुण का उपयोग (जानना)।

५. केवल ज्ञान : १. मात्र आत्मा की सहायता से सम्पूर्ण रूपी-अरूपी द्रव्यों में रहे हुए विशेष गुणो को जानने की लब्धि (शक्ति) तथा २ विशेष गुण का उपयोग (जानना)।

तीन अज्ञान

१. मति अज्ञान, २. श्रुत अज्ञान, ३. विभंग ज्ञान : अज्ञान और अज्ञान के इन तीनो भेदो का अर्थ, ज्ञान और ज्ञान के तीनो भेदो के अर्थ के समान है। अन्तर यही है कि सम्यग्-दृष्टि का ज्ञान 'ज्ञान' माना गया है और मिथ्यादृष्टि का ज्ञान 'अज्ञान' माना गया है।

चार दर्शन

दर्शन : १. द्रव्यो मे रहे हुए सामान्य गुण को जानने की लब्धि (शक्ति) तथा २. सामान्य गुण का उपयोग (जानना)।

१. चक्षु दर्शन : १. आँख की सहायता से द्रव्यो मे रहे हुए सामान्य गुण को जानने की लब्धि (शक्ति) तथा २ सामान्य गुण का उपयोग (जानना)।

२. अचक्षु दर्शन : १. कान, नाक, जीभ, स्पर्श तथा मन की सहायता से द्रव्यो मे रहे हुए सामान्य गुण को जानने की लब्धि (शक्ति) तथा २ सामान्य गुण का उपयोग (जानना)।

३ अवधि दर्शन और ४. केवल दर्शन : इन दोनो का अर्थ अवधि-ज्ञान और केवल-ज्ञान के अर्थ के समान है। अन्तर यह है कि विशेष गुण के स्थान पर सामान्य गुण कहना चाहिए।

इन मति-ज्ञानादि बारह मे से एक समय मे किसी एक का ही उपयोग रहता है, अर्थात् किसी एक से ही जानने का व्यापार चलता है, पर एक समय मे एक से अधिक का उपयोग नही रहता। किन्तु जानने की लब्धि (शक्ति) जीवो मे १२ मे से अनेक रहती हैं। एकेन्द्रिय मे मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान तथा अचक्षु-दर्शन तीन की सदैव लब्धि (शक्ति) रहती है तथा कभी मति-अज्ञान का उपयोग, तो कभी श्रुत-अज्ञान का उपयोग, तो कभी अचक्षु-दर्शन का उपयोग— ये तीनो उपयोग भी मिलते है। द्वीन्द्रिय और त्रीन्द्रिय मे मति-ज्ञान तथा श्रुत-ज्ञान मिलाकर पाँच लब्धि तथा पाँच उपयोग मिलते हैं। चतुरिन्द्रिय मे चक्षु-दर्शन मिलाकर छह लब्धि तथा छह उपयोग मिलते है। देव नारक तथा पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च मे अवधि-ज्ञान, विभग-ज्ञान तथा अवधि-दर्शन मिलाकर नव लब्धि तथा नव उपयोग मिलते है। मनुष्य मे बारहो लब्धि तथा बारहो उपयोग मिलते हैं।

दसवाँ बोल : 'आठ कर्म'

कर्म : मिथ्यात्वादि आश्रवो के कारण से आकर आत्मा के साथ बँधे हुए शुभ-अशुभ पुद्गल-विशेष ।

१. ज्ञानावरणीय : आत्मा के ज्ञान गुण को ढकने वाला कर्म, सूर्य के प्रकाश को ढकने वाले 'मेघ' (वादल) के समान ।

२. दर्शनावरणीय : आत्मा के दर्शन गुण को ढकने वाला कर्म, राजा के दर्शन को रोकने वाले 'द्वारपाल' के समान ।

३. वेदनीय : आत्मा को साता असाता वेदन कराने वाला कर्म, जीभ को सुख अनुभव कराने वाली 'मधु' (शहद) और दु ख अनुभव कराने वाली 'असि' (तलवार) के समान ।

४. मोहनीय : आत्मा के श्रद्धा और चारित्र गुण को मोहित (विकृत) करने वाला कर्म, मनुष्य के विवेक और शील को मोहित (विकृत) करने वाले 'मद्य' (मदिरा, शराब) के समान ।

५. आयुष्य : आत्मा को नरकादि गति मे रोके रखने वाला कर्म, अपराधी को कारागृह मे रोके रखने वाली 'हथकडी-बेडी' के समान ।

६. नामकर्म : आत्मा के अमूर्त गुण (वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श रहित होना) को ढककर आत्मा को नाना वर्णादि सहित बनाने वाला कर्म । स्वच्छ वस्त्र पर नाना चित्र बनाने वाले 'चित्रकार' के समान ।

७. गोत्रकर्म : आत्मा के अगुरु लघु गुण (हलका-भारी न होना, ऊँच-नीच न होना) को ढक कर ऊँच-नीच का भेद बनाने वाला कर्म । मिट्टी के छोटे-बडे पात्र बनाने वाले 'कुम्भकार' के समान ।

८. अन्तराय कर्म : आत्मा के वीर्य गुण मे अन्तराय (विघ्न) डालने वाला कर्म। याचको को राजा से मिलने वाले दान मे विघ्न डालने वाले 'भण्डारी' के समान।

इन आठ कर्मो मे से ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय—ये चार कर्म घातीकर्म है। जो आत्मा के भावात्मक गुणो को नाश करे, उसे **घातिकर्म** कहते हैं। आत्मा के भावात्मक गुण चार हैं—१ ज्ञान, २ दर्शन, ३ सम्यक्त्व-चारित्र तथा ४. वीर्य। जो आत्मा के भावात्मक गुणो का नाश न करे, किन्तु अभावात्मक गुणो का नाश करे, उसे **अघाति कर्म** कहते है। आत्मा के अभावात्मक गुण चार हैं—१ निराबाधत्व, २ अमरत्व, ३. अमूर्तत्व और ४. अगुरुलघुत्व। आठ कर्मो मे मोहनीय कर्म सबसे प्रबल, शेष तीन घातिकर्म मध्यम तथा चार अघातिकर्म सबसे दुर्बल है।

चौदहवाँ बोल : 'छोटी नव तत्व के ११५ भेद'

तत्व : वस्तु (पदार्थ) के वास्तविक स्वरूप को 'तत्व' कहते है। मोक्ष-प्राप्ति के लिए जिन्हे जानना आवश्यक है, उन्हे यहाँ तत्व कहा गया है।

१. जीव तत्व के १४ भेद

जीव : जिसमे उपयोग अर्थात् ज्ञानशक्ति हो, अर्थात् जो चेतना-लक्षण हो, उसे 'जीव' कहते हैं। वह सुख-दु:ख का वेदक (अनुभव करने वाला) पर्याप्ति, प्राण, योग, उपयोग आदि सहित, आठ कर्मों का कर्त्ता (करने वाला) और उनका भोक्ता (भोगने वाला) है।

वह भूत, भविष्य और वर्त्तमान तीनो काल मे सदा शाश्वत है।

१- २	सूक्ष्म एकेन्द्रिय	के दो भेद अपर्याप्त और पर्याप्त
३ -४	बादर एकेन्द्रिय	के दा भेद अपर्याप्त और पर्याप्त
५- ६	द्वीन्द्रिय	के दा भेद अपर्याप्त और पर्याप्त
७- ८	त्रीन्द्रिय	के दो भेद अपर्याप्त और पर्याप्त
९-१०	चतुरिन्द्रिय	के दो भेद अपर्याप्त और पर्याप्त
११-१२	असञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय	के दो भेद अपर्याप्त और पर्याप्त
१३-१४	संज्ञा पञ्चेन्द्रिय	के दो भेद अपर्याप्त और पर्याप्त

सूक्ष्म जो काटने से कटे नही, छेदने से छिदे नही, भेदने से भिदे नही, जलाने से जले नही, रोकने से रुके नही, एक या अनेक जीवो के शरीर मिलने पर भी आँखो से दिखाई दे नही, केवल-ज्ञान से दिखाई दे (छद्मस्थ न जान सके। केवली भगवान् के ज्ञानगम्य हो), उसे सूक्ष्म कहते हैं।

बादर : जो काटने से कटे, छेदने से छिदे, भेदने से भिदे, जलाने से जले, रोकने से रुके, एक या अनेक शरीर मिलने पर आँखो से भी दिखाई दे (छद्मस्थ भी जान सके), उसे बादर कहते है।

सञ्ज्ञी : मन. पर्याप्ति सहित जीव।

असंज्ञी : मन· पर्याप्ति रहित जीव।

२ अजीव तत्व के १४ भेद

अजीव : जो उपयोग अर्थात् ज्ञान-शक्ति रहित हो, अर्थात् जो जड लक्षण हो, उसे 'अजीव' कहते है। वह सुख दुख का अवेदक, पर्याप्ति, प्राण, योग, उपयोग आदि रहित, आठ कर्मो का अकर्त्ता और अभोक्ता है।

धर्मास्तिकाय के तीन भेद —१. स्कध ३. स्कधदेश और ३. स्कंध प्रदेश। अधर्मास्तिकाय के तीन भेद—१. स्कंध २. स्कंधदेश और ३ स्कंध प्रदेश। आकाशास्तिकाय के तीन भेद—१. स्कंध २. स्कंधदेश और ३. स्कंध प्रदेश। ये नव (३+३+३=९) तथा दसवाँ काल। ये अरूपी अजीव के दस भेद जानना। रूपी पुद्गलास्तिकाय के चार भेद—१. स्कध २. स्कध देश ३. स्कध प्रदेश और ४ परमाणु। ये कुल चौदह भेद हुए।

अस्तिकाय : सम्पूर्ण प्रदेशो का समूह।

स्कंध . परस्पर जुडा हुआ प्रदेशो का अखण्ड समूह।

स्कधदेश : स्कध मे बुद्धि से कल्पित सविभाग भाग जिसका और भी भाग हो सके—ऐसा भाग। कही-कहीं निर्विभाग भाग जिसका और भाग न हो सके, उसे भी स्कधदेश माना गया है।

स्कधप्रदेश : स्कध मे बुद्धि से कल्पित निर्विभाग भाग, सबसे छोटा भाग, जिसका और भाग न हो सके।

परमाणु : स्कध मे न जुडा हुआ, सबसे छोटा द्रव्य।

३ पुण्य तत्व के ९ भेद

पुण्य : १. जो आत्मा को पवित्र करे, उसे पुण्य कहते है। २ आत्मा के अन्न-दानादि शुभ परिणाम। ३ मन-वचन-काया के अन्नदान आदि शुभ योग। ४ उन दोनो के द्वारा आत्मा के साथ बंधे हुए शुभ प्रकृति वाले उज्ज्वल कर्म-पुद्गल तथा ५ उन पुण्यकर्मों के फल 'पुण्य' है। पुण्य का मधुर फल भोगना बहुत सरल है, किन्तु उसका उपार्जन करना बहुत कठिन है। पुण्य धर्म

का सहायक तथा पथ्य रूप है। (यहाँ पुण्य का बन्ध कराने वाले आत्मा के अन्न-दानादि शुभ परिणाम तथा मन-वचन-काया के अन्न-दानादि शुभ योग को पुण्य कहा है)।

१. **अन्न-पुण्य :** धर्म भाव या अनुकम्पा भाव से अन्न (अर्थात् शाकाहारी भोजन) देना। २. **पान-पुण्य :** पानी देना। ३. **वस्त्र-पुण्य :** वस्त्र (कपड़ा) देना। ४. **लयन-पुण्य :** रहने के लिए घर, स्थानादि देना। ५. **शयन-पुण्य :** सोने-बैठने के लिए शय्या-आसनादि देना। ६. **मनःपुण्य :** ज्ञानादिक धर्म के लिए भाव (या दानादिक धर्म के भाव) तथा जीव-रक्षा-रूप अनुकंपा के भाव रखना। ७. **वचन-पुण्य :** धर्म-वचन, अनुकपा-वचन आदि शुभ वचन बोलना। ८, **काय-पुण्य :** वैयावृत्य, जीव-रक्षा आदि शुभ क्रिया करना। ९. **नमस्कार-पुण्य :** गुणवान को नमस्कार करना।

४. पाप तत्व के १८ भेद

पाप : १. जो आत्मा को मलिन करे, उसे 'पाप' कहते हैं। २ आत्मा के प्राणातिपात आदि अशुभ परिणाम ३ मन-वचन-काया के प्राणातिपातादि अशुभ योग ४ उन दोनो के द्वारा आत्मा के साथ बँधे हुए अशुभ प्रकृति वाले मलिन कर्म पुद्गल तथा ५ उन पाप-कर्मो के कटु फल 'पाप' है। पाप का उपार्जन करना बहुत सरल है, पर उसका कटु फल भोगना बहुत कठिन है। पाप धर्म का विरोधी तथा अपथ्य-रूप है। (यहाँ पाप का बन्ध कराने वाले आत्मा के प्राणातिपातादि अशुभ परिणाम तथा मन-वचन-काया के प्राणातिपातादि अशुभ योग को 'पाप' कहा है।

१. **प्राणातिपात :** जीवहिंसा २. **मृषावाद :** झूठ। ३. **अदत्तादान :** चोरी। ४. **मैथुन :** अब्रह्मचर्य-कुशील। ५. **परिग्रह :** धर्मोपकरणों से अन्य धन, भूमि आदि रखना तथा धर्मोपकरणों पर ममता रखना। ६. **क्रोध :** रोष। ७. **मान :** अहंकार। ८. **माया :** छल, कपट। ९. **लोभ :** लालच और तृष्णा। १०. **राग :** प्रेम। ११. **द्वेष :** वैर, विरोध। १२. **कलह :** क्लेश, लड़ाई। १३. **अभ्याख्यान :** कलंक लगाना। १४ **पैशुन्य :** चुगली खाना। १५. **पर-परिवाद :** निन्दा करना। १६. **रति :** मनोज्ञ विषयों में आनन्द। **अरति :** अमनोज्ञ विषयों में खेद-विषाद। १७. **माया मृषा :** कपट सहित झूठ। १८. **मिथ्यादर्शन शल्य :** कुदेव, कुगुरु, कुधर्म, कुशास्त्र पर श्रद्धा-रूप मोक्ष-मार्ग के काँटे।

५. आश्रव तत्त्व के २० भेद

आश्रव : १. द्वार या नाले को 'आश्रव' कहते हैं। २ आत्मा के मिथ्यात्वादि अशुभ परिणाम। ३. मन-वचन-काया के अयतनादि अशुभ योग तथा ४ उन दोनों के द्वारा आत्मा-रूप नौका (या तालाब) में पाप-कर्म-रूप जल का आना (या आत्मा-रूप वस्त्र में पाप-कर्म-रूप रज का लगना) 'आश्रव' है। (यतनादि शुभ योग और उसके द्वारा पुण्य का आना भी 'आश्रव' है, पर वह पाप आश्रव को रोकने वाला होने से 'संवर' माना गया है। यहाँ आत्मा के मिथ्यात्वादि अशुभ परिणाम और मन-वचन-काया के अयतनादि अशुभ योग को 'आश्रव' कहा है।)

१. **मिथ्यात्व** (सेवन करना) २. **अव्रत** (व्रत प्रत्याख्यान न लेना) ३. **प्रमाद** (करना) ४. **कषाय** (करना) ५. **अशुभ**

योग। ६. प्राणातिपात (हिंसा करना) ७. मृषावाद (झूठ बोलना) ८. अदत्तादान (चोरी करना) ९. मैथुन (सेवन करना) १०. परिग्रह (रखना) ११. श्रोत्रेन्द्रिय वश में न रखना। १२. चक्षुरिन्द्रिय वश मे न रखना। १३. घ्राणेन्द्रिय वश में न रखना। १४. रसेन्द्रिय वश में न रखना। १५. स्पर्शेन्द्रिय वश मे न रखना। १६. मन वश में न रखना। १७. वचन वश में न रखना। १८. काया वश मे न रखना। १९. भंड उपकरण अयतना से उठाना, अयतना से रखना। २० सूई कुशाग्रमात्र अयतना से उठाना, अयतना से रखना।

६ सवर तत्व के २० भेद

संवर : १ कपाट या बाँध (पटिये) को 'सवर' कहते हैं। २ आत्मा के सम्यक्त्वादि शुभ परिणाम, ३ मन-वचन-काया के यतनादि शुभ योग तथा ४. उन दोनो के द्वारा आत्मा-रूप नौका या (तालाब में) मे पाप-कर्म-रूप जल का आगमन रुकना या आत्मा-रूप वस्त्र मे पाप-कर्म रूप रज का लगाव रुकना 'सवर' है। (अयोग तथा पुण्य का रुकना भी सवर है, परन्तु वह छद्मस्थों से अशक्य होने से उपदेश योग्य नहीं है। यहाँ आत्मा के सम्यक्त्वादि शुभ परिणाम तथा मन-वचन-काया के यतनादि शुभ योग को सवर कहा है।)

१ सम्यक्त्व २. व्रत (प्रत्याख्यान लेना) ३. अप्रमाद (प्रमाद न करना) ४. अकषाय (कषाय न करना। ५. शुभ योग। ६. प्राणातिपात विरमण (हिंसा न करना) ७. मृषावाद विरमण (झूठ न बोलना) ८. अदत्तादान विरमण (चोरी न करना) ९. मैथुन विरमण (मैथुन का सेवन न करना) १०. परिग्रह विरमण (परिग्रह न रखना) ११. श्रोत्रेन्द्रिय वश मे रखना

१२. चक्षुरिन्द्रिय वश में रखना १३. घ्राणेन्द्रिय वश मे रखना १४. रसेन्द्रिय वश मे रखना १५. स्पर्शेन्द्रिय वश मे रखना १६ मन वश में रखना १७. वचन वश मे रखना १८. काया वश में रखना १९. भड उपकरण यतना से उठाना, यतना से रखना २० सूई कुशाग्र मात्र यतना से उठाना, यतना से रखना।

७. निर्जरा तत्व के १२ भेद

निर्जरा : १. जीर्ण होकर भिन्न होने को निर्जरा कहते हैं। २. आत्मा के धर्म-ध्यानादि शुभ परिणाम ३. मन-वचन-काया के वेयावृत्य आदि शुभ योग तथा ४. उनके दोनों के द्वारा आत्मा-रूप नौका (या तालाब) मे से पाप-कर्म-रूप जल का निकलना (या आत्मा-रूप वस्त्र मे से पाप-कर्म-रूप रज का निकलना) निर्जरा है। (विपाक से होने वाली अकाम निर्जरा या बाल तप आदि से होने वाली निर्जरा भी निर्जरा है, पर वह आदरणीय न होने से उपदेश योग्य नही है। अयोग से पुण्य की निर्जरा होना भी निर्जरा है, परन्तु वह भी छद्मस्थो से अशक्य होने के कारण उपदेश योग्य नही है। यहाँ आत्मा के ध्यानादि शुभ परिणाम तथा मन-वचन-काया के वैयावृत्यादि शुभ योगो को निर्जरा कहा है।)

१. अनशन : १. भोजन या भोजन-पान न करना (उपवास करना)। इसी प्रकार २ वस्त्र ३ पात्र न रखना, ४. क्रोधादि न करना भी अनशन है।

२. ऊनोदरी : १ भूख से कम भोजन करना। इसी प्रकार २. वस्त्र ३. पात्र कम रखना ४. कोधादि कम करना भी 'ऊनोदरी' है।

३. भिक्षाचरी भिक्षा के दोषो को वर्जते हुए (दोष न लगाते हुए) भिक्षा लाना। मै भोजन-पान की १. वह वस्तु २. उस क्षेत्र मे, ३ उस काल मे, ४ उस प्रकार से मिलने पर ही लूँगा, अन्यथा नही'—इत्यादि अभिग्रह (मन मे निश्चय) करना भी भिक्षाचरी तप मे है।

४. रस परित्याग रस अर्थात् विकृति (विगय) आदि का त्याग करना। विकृति पाँच है। १. दूध २. दही ३ घी ४. तेल ५. गुड-शक्कर। निव्विगई, आयबिल आदि भी रस परित्याग मे हैं।

५. काय क्लेश : काया को कष्ट देना। जसे लोच करना, कठोर आसन लगाना आदि।

६. प्रतिसंलीनता : वश मे रखना। जैसे १. इन्द्रिय, २ कषाय और ३. योग को वश मे रखना, ४ एकान्त मे रहना।

७. प्रायश्चित्त : लगे हुए अतिचार या पाप (दोष) को उतारना। जैसे १. आलोचना (पाप को प्रकट) करना, २. प्रतिक्रमण करना, ३. उपवास आदि दण्ड लेना।

८. विनय : जिससे कर्म दूर हो—ऐसी नम्रता। जैसे खडे होना, हाथ जोड़ना, वन्दना करना आदि।

९. वैयावृत्य : सेवा करना। जैसे आहार-पानी लाकर देना, वोझा उठा लेना, काया कोमल बनाना (पगचपी करना) आदि।

१०. स्वाध्याय : आत्मा की उन्नति करने वाला अच्छा अध्ययन। जैसे १ शास्त्र आदि पढ़ना, कठस्थ करना, २ उनसे सम्बन्ध रखने वाले प्रश्न पूछना, ३. उन्हे दुहराना, ४ उन पर विचार करना, ५ उन्हे दूसरो को सिखाना, समझाना।

११. ध्यान : एकाग्र शुभ मनोयोग तथा मन-वचन-काया का निरोध। जैसे १ आर्त, २ रौद्र ध्यान को छोड कर, ३ धर्म, ४ शुक्ल ध्यान करना।

१२. कायोत्सर्ग : काया का ममत्व छोडना, काया को स्थिर रखना आदि।

प्रथम के छह बाह्य तप हैं। जिनका प्रभाव काया पर विशेष पडे, उन्हे **बाह्य तप** कहते हैं।

सात से बारह तक के भेद आभ्यन्तर तप है। जिनका प्रभाव आत्मा पर विशेष पडे, उन्हे **आभ्यन्तर** तप कहते है।

८. बन्ध तत्व के ४ भेद

बन्ध : १ बन्धन को 'बन्ध' कहते हैं। २ आत्मा के बन्ध योग्य परिणाम, ३ मन-वचन-काया के योग, ४ उन दोनो के द्वारा आत्मा के साथ कर्म-पुद्गलो का लोहपिण्ड और अग्नि के समान या दूध और पानी के समान बन्ध (जुडान) होना और बँधे रहना बन्ध कहलाता है।

१. प्रकृति बन्ध : जीव के साथ बँधे हुए कर्मो मे ज्ञान ढँकना आदि स्वभावो का बँधना।

२. स्थिति बंध : जीव के साथ बँधे हुए कर्मो मे अमुक समय तक जीवो के साथ रहने की काल-मर्यादा का बँधना।

३. अनुभाग बन्ध : जीवन के साथ बँधे हुए कर्मो मे तीव्र मन्द फल देने की शक्ति बँधना।

४. प्रदेश बन्ध : जीव के साथ न्यूनाधिक प्रदेशो वाले कर्म-स्कधो का बन्ध होना।

६ मोक्ष तत्व के चार भेद

मोक्ष : १ छूटने को मोक्ष कहते है। २ आत्मा का पूर्ण विशुद्ध परिणाम। ३ मन-वचन-काया का वियोग एव ४. आत्मा के सम्पूर्ण प्रदेशो से सभी कर्मो का सर्वथा क्षय 'मोक्ष' है। (यहाँ मोक्ष-प्राप्ति होने के मार्गो को 'मोक्ष' कहा है।)

मोक्ष के चार भेद **१. सम्यग्ज्ञान २. सम्यग्दर्शन** (सम्यक् श्रद्धा) **३. सम्यक् चारित्र** और **४. सम्यक्तप।**

नव तत्वो के पहले विस्तृत अर्थ दिये जा चुके हैं। १ सक्षेप मे चेतन 'जीव है। २ जड 'अजीव' है। ३ शुभ वन्ध 'पुण्य' है। ४ अशुभ वन्ध 'पाप' है। ५ वन्ध का मार्ग 'आश्रव' है। ६ वन्ध का अवरोध 'सवर' है। ७ वन्ध क्षय का मार्ग 'निर्जरा' है। ८ दोनो का सयोग 'वन्ध' है। और ९ वन्धन का छूटना 'मोक्ष' है।

अट्ठारहवाँ बोल : 'तीन दृष्टि'

दृष्टि : १ श्रद्धा, २ श्रद्धा वाला।

१. सम्यग्दृष्टि : चार कर्म या अट्ठारह दोप रहित तथा बारह गुण अरिहत देव को ही सुदेव, पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति पालने वाले या २७ गुणो के धारक निर्ग्रन्थ को ही सुगुरु तथा अरिहत प्ररुपित धर्म को (तत्व को) ही सुधर्म मानना। २. मानने वाला।

अट्ठारह दोपो के नाम १ अज्ञान (ज्ञानावरणीय से होने वाला), २ निद्रा (दर्शनावरणीय से होने वाला), ३. मिथ्यात्व (दर्शन मोहनीय से होने वाला), ४. अव्रत,

५ क्रोध, ६ मान, ७. माया, ८ लोभ, ९. राग, १०. द्वेष (कषाय मोहनीय से होने वाले), ११ हास्य, १२ रति, १३ अरति, १४ शोक, १५ भय, १६ जुगुप्सा (नो कषाय मोहनीय से होने वाले), १७ वेद (वेद मोहनीय से होने वाला) तथा १८ अन्तराय (अन्तराय से होने वाला)।

अन्य प्रकार से अठ्ठारह दोषो के नाम : १. अज्ञान, २ निद्रा, ३ मिथ्यात्व, ४ हिसा, ५. झूठ, ६ चोरी, ७ मैथुन (क्रीडा), ८. परिग्रह (प्रेम), ९ क्रोध, १० मान, ११ माया, १२ लोभ, १३ हास्य, १४. रति, १५. अरति, १६ शोक, १७. भय तथा १८ जुगुप्सा।

अरिहत के १२ गुण १ अनन्त ज्ञान, २ अनन्त दर्शन, ३ अनन्त चारित्र, ४. अनन्त बल-वीर्य ५ दिव्य ध्वनि, ६ भामण्डल, ७. स्फटिक सिहासन, ८ अशोक वृक्ष, ९ कुसुम वृष्टि, १० देव दुन्दुभि, ११ तीन छत्र और १२ दो चामर।

पाँच समिति के नाम १ इर्या समिति (उपयोग से चलना), २ भाषा समिति (उपयोग से बोलना), ३ एषणा समिति (उपयोग से आहार लाना, भोगना), ४. आदान निक्षेप समिति (उपयोग से उठाना रखना), ५. परिस्थापना समिति (उपयोग से परठना, त्यागना)।

तीन गुप्ति के नाम १ मनोगुप्ति (मन वश मे रखना), २ वचनगुप्ति (वचन वश मे रखना) और ३ कायगुप्ति (काया वश मे रखना)।

साधुजी के २७ गुण . १-५ पाँच महाव्रत, ६-१० पाँच इन्द्रियो का निग्रह (वश रखना) ११-१४ चार कषायो का त्याग, १५-१६ तीन सत्य—(क) भाव सत्य, (ख) करण सत्य,

(ग) योग सत्य, १८-१६, क्षमा वैराग्य २०-२२ तीन समाहरणता —(क) मन समाहरणता, (ख) वचन समाहरणता, (ग) काय समाहरणता, २३-२५ तीन सम्पन्नता —(क) ज्ञान सम्पन्नता, (ख) दर्शन सम्पन्नता, (ग) चारित्र सम्पन्नता, २६-२७ दो सहनता—(क) वेदना सहनता, (ख) मारणातिक (उपसर्ग) सहनता।

२ **मिथ्यादृष्टि :** अरिहन्त को सुदेव, निर्ग्रन्थ को सुगुरु तथा जैन धर्म को सुधर्म न मानना २. न मानने वाला। अरिहन्त प्ररुपित शास्त्र के एक अक्षर पर भी अरुचि रखना, २ अरुचि रखने वाला। सदोषी सरागी को सुदेव, सग्रन्थ को सुगुरु तथा कुधर्म को सुधर्म मानना, २. मानने वाला।

३. **मिश्रदृष्टि :** सुदेव-कुदेव, सुगुरु-कुगुरु, सुधर्म-कुधर्म सबको समान मानने वाला।

एकेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि, विकलेन्द्रिय सम्यग्दृष्टि व मिथ्या-दृष्टि तथा शेप जीव तीनो दृष्टि वाले होते है।

उन्नीसवाँ बोल : 'चार ध्यान'

ध्यान : एकाग्र शुभ मनोयोग तथा मन-वचन-काया का निरोध।

१. **आर्त ध्यान** · इष्ट वस्तु के सयोग, अनिष्ट वस्तु के वियोग आदि का चिन्तन करना।

२. **रौद्र ध्यान** · १ हिसा, २. झूठ, ३. चोरी और परिग्रह के विपय मे वहुत दुष्ट चिन्तन करना।

३. **धर्म ध्यान :** १. भगवान् की आज्ञा, २. राग-द्वेप के परिणाम, ३ कर्म के फल और ४ लोक की असारता का चिन्तन करना।

४. **शुक्ल ध्यान** · जीवादि के विषय मे बहुत विशुद्ध चिन्तन करना, मेरु के समान काया को अडोल बनाना।

आर्त-ध्यान पहले से छठे गुण-स्थान तक और रौद्र-ध्यान पहले से पाँचवे गुण स्थान तक होता है। धर्म-ध्यान चौथे से सातवें तक तथा शुक्ल ध्यान आठवे से चौदहवे गुण-स्थान तक होता है।

बाईसवाँ बोल : 'श्रावकजी के १२ व्रत'

व्रत : प्रत्याख्यान, नियम, मर्यादा।

१. पहला स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत : इसमें श्रावकजी निरपराध त्रस जीवो को मारने की बुद्धि से मारने का प्रत्याख्यान करते हैं।

२. दूसरा स्थूल मृषावाद विरमण व्रत : इसमे श्रावकजी दुष्ट विचारों से कन्या, गौ, भूमि आदि बडी-बड़ी वस्तुओ के सम्बन्ध में झूठ बोलने का प्रत्याख्यान करते हैं।

३. तीसरा स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत : इसमें श्रावकजी दुष्ट विचारपूर्वक बड़ी-बड़ी वस्तुएँ चुराने का प्रत्याख्यान करते हैं।

४ चौथा स्थूल स्वदार सतोष परदार विवर्जन व्रत : इसमें श्रावकजी पर-स्त्री-सेवन का प्रत्याख्यान करते हैं और स्व-स्त्री की मर्यादा करते हैं।

५. स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत : इसमें श्रावकजी १ भूमि, २ घर, ३ सोना, ४ चाँदी, ५ धन, ६ धान्य, ७ दोपद, ८ चौपद और ९ कुविय (सोना चाँदी से भिन्न) धातु—इन नव बोलो का परिमाण करते हैं।

६. दिशा परिमाण व्रत : इसमे श्रावकजी १ पूर्व, २ पश्चिम, ३ उत्तर, ४ दक्षिण, ५ ऊँची और ६ नीची—इन छह दिशाओ की मर्यादा करते हैं।

७. उपभोग परिभोग परिमाण व्रत : इसमें श्रावकजी २६ बोल की मर्यादा करते है और पन्द्रह कर्मादान का त्याग अथवा मर्यादा करते है।

८. अनर्थ दण्ड विरमण व्रत : इसमे श्रावकजी अनर्थ दण्ड का त्याग करते हैं।

९. सामायिक व्रत : इसमें श्रावकजी प्रतिदिन (या जितने दिन का नियम हो, उतने दिन) शुद्ध सामायिक करते हैं।

१०. दिशावकाशिक व्रत : इसमें श्रावकजी दिशावकाशिक पौषध करते हैं, सवर करते हैं, और १४ नियम चितारते है।

११. प्रतिपूर्ण पौषध व्रत : इसमें श्रावकजी अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा को यो छह (या जितने दिन का नियम हो, उतने दिन) प्रतिपूर्ण पौषध करते हैं।

१२ अतिथि सविभाग व्रत : इसमें श्रावकजी घर पर पधारे हुए साधु-साध्वियो को अन्न-पानादि १४ प्रकार का निर्दोष दान देते है।

श्रावकजी के पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा और पाँचवाँ—ये पाँच व्रत 'अणुव्रत' कहलाते हैं। छठा, सातवाँ और आठवाँ—ये तीन व्रत गुणव्रत कहलाते हैं तथा नवमाँ, दसवाँ, ग्यारहवाँ और बारहवाँ—ये चार व्रत, शिक्षाव्रत कहलाते हैं।

तेइसवाँ बोल : 'साधुजी के ५ महाव्रत'

महाव्रत : तीन करण तीन योग से लिया गया व्रत ।

१ सर्व प्राणातिपात विरमण व्रत : इसमे साधुजी सर्वथा प्रकार से जीव-हिसा नही करते । तीन करण तीन योग से । मन से, वचन से, काया से, करते नही, कराते नही, करते का अनुमोदन करते नही ।

२ सर्व मृषावाद विरमण व्रत : इसमें साधुजी सर्वथा प्रकार से झूठ नही बोलते । तीन करण तीन योग से । मन से वचन से, काया से, बोलते नही, बुलवाते नही, बोलते का अनुमोदन करते नही ।

३ सर्व अदत्तादान विरमण व्रत · इसमे साधुजी सर्वथा प्रकार से चोरी नही करते । तीन करण तीन योग से । मन से, वचन से, काया से, करते नही, कराते नही, करते का अनुमोदन करते नही ।

४ सर्व मैथुन विरमण व्रत इसमे साधुजी सर्वथा प्रकार से मैथुन सेवन नही करते । तीन करण, तीन योग से । मन से, वचन से, काया से । करते नही, कराते नही, करते का अनुमोदन करते नही ।

५. सर्व परिग्रह : इसमे साधुजी सर्वथा प्रकार से परिग्रह नही रखते । तीन करण तीन योग से । मन से, वचन से, काया से, रखते नही, रखाते नही, रखते का अनुमोदन करते नही ।

◆

६. दिशा परिमाण व्रत : इसमें श्रावकजी १ पूर्व, २ पश्चिम, ३ उत्तर, ४ दक्षिण, ५ ऊँची और ६ नीची—इन छह दिशाओ की मर्यादा करते हैं।

७. उपभोग परिभोग परिमाण व्रत : इसमें श्रावकजी २६ बोल की मर्यादा करते है और पन्द्रह कर्मादान का त्याग अथवा मर्यादा करते है ।

८. अनर्थ दण्ड विरमण व्रत : इसमे श्रावकजी अनर्थ दण्ड का त्याग करते हैं ।

९. सामायिक व्रत : इसमें श्रावकजी प्रतिदिन (या जितने दिन का नियम हो, उतने दिन) शुद्ध सामायिक करते हैं।

१०. दिशावकाशिक व्रत : इसमें श्रावकजी दिशावकाशिक पौषध करते हैं, सवर करते हैं, और १४ नियम चितारते हैं ।

११ प्रतिपूर्ण पौषध व्रत : इसमें श्रावकजी अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा को यो छह (या जितने दिन का नियम हो, उतने दिन) प्रतिपूर्ण पौषध करते हैं ।

१२ अतिथि सविभाग व्रत : इसमें श्रावकजी घर पर पधारे हुए साधु-साध्वियो को अन्न-पानादि १४ प्रकार का निर्दोष दान देते हैं ।

श्रावकजी के पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा और पाँचवाँ—ये पांच व्रत 'अणुव्रत' कहलाते हैं । छठा, सातवां और आठवां—ये तीन व्रत गुणव्रत कहलाते हैं तथा नवमां, दसवां, ग्यारहवां और बारहवां—ये चार व्रत, शिक्षाव्रत कहलाते हैं ।

तेइसवाँ बोल : 'साधुजी के ५ महाव्रत'

महाव्रत : तीन करण तीन योग से लिया गया व्रत।

१ **सर्व प्राणातिपात विरमण व्रत :** इसमे साधुजी सर्वथा प्रकार से जीव-हिसा नही करते। तीन करण तीन योग से। मन से, वचन से, काया से, करते नही, कराते नही, करते का अनुमोदन करते नहीं।

२ **सर्व मृषावाद विरमण व्रत :** इसमे साधुजी सर्वथा प्रकार से झूठ नही बोलते। तीन करण तीन योग से। मन से वचन से, काया से, बोलते नही, बुलवाते नही, बोलते का अनुमोदन करते नही।

३ **सर्व अदत्तादान विरमण व्रत :** इसमे साधुजी सर्वथा प्रकार से चोरी नही करते। तीन करण तीन योग से। मन से, वचन से, काया से, करते नही, कराते नही, करते का अनुमोदन करते नही।

४ **सर्व मैथुन विरमण व्रत :** इसमे साधुजी सर्वथा प्रकार से मैथुन सेवन नही करते। तीन करण, तीन योग से। मन से, वचन से, काया से। करते नही, कराते नही, करते का अनुमोदन करते नही।

५. **सर्व परिग्रह :** इसमे साधुजी सर्वथा प्रकार से परिग्रह नही रखते। तीन करण तीन योग से। मन से, वचन से, काया से, रखते नही, रखाते नही, रखते का अनुमोदन करते नही।

◆

सम्यक्त्व (समकित) के ६७ बोल

सम्यक्त्व : जिनेश्वर भगवान् ने जो कुछ कहा, वही सत्य और नि शक है—इस प्रकार अरिहन्त प्ररुपित तत्वो पर श्रद्धा रखना।

पहला बोल—चार श्रद्धान। दूसरा बोल—तीन लिङ्ग। तीसरा बोल—दस विनय। चौथा बोल—तीन शुद्धि। पांचवां बोल—पाँच लक्षरण। छठा बोल—पाँच दूषरण। सातवाँ बोल—पाँच भूषरण। आठवाँ बोल—आठ प्रभावक। नवमाँ बोल—छह आगार। दसवाँ बोल—छह यतना। ग्यारहवाँ बोल—छह स्थान। बारहवाँ बोल—छह भावना।

ये सब मिलाकर ६७ बोल हुए। परिशिष्ट मे तेरहवाँ बोल : सम्यक्त्व की दस रुचि। चौदहवाँ बोल : सम्यक्त्व के पाँच भेद। पन्द्रहवाँ बोल : सम्यक्त्व के आठ आचार। सोलहवाँ बो : सम्यक्त्वी के तीन प्रकार।

पहला बोल : 'सम्यक्त्व के चार श्रद्धान'

श्रद्धान : १. (जैसे पर्वतादि मे धूएँ को देख कर वहाँ अग्नि होने का विश्वास होता है, उसी प्रकार) जिन कार्यो से 'इस पुरुष मे सम्यक्त्व है'—इस का विश्वास हो, उसे 'सम्यक्त्व का श्रद्धान' कहते हैं। अथवा २. जिन कार्यों से धर्म मे श्रद्धा उत्पन्न हो और धर्म-श्रद्धा सुरक्षित रहे, उसे सम्यक्त्व का श्रद्धान कहते हैं।

१. परमार्थ संस्तव : परमार्थ का परिचय करे अर्थात् नव तत्वो का ज्ञान प्राप्त करे।

२. सुदृष्ट परमार्थ सेवन : परमार्थ के अच्छे जानकार अर्थात् नव तत्वो के अच्छे जानकर पुरुषो की सेवा करे।

३. व्यापन्न वर्जन : जिन्होने सम्यक्त्व का वमन कर दिया (छोड दिया)—ऐसे १. निह्नवो की २ अन्य मत धारण कर लेने वालो की तथा ३. नास्तिको की सगति न करे।

४. कुदर्शन वर्जन : अन्य मतावलम्बी कुतीर्थियो की सगति से दूर रहे।

—उत्तराध्ययन सूत्र—अध्ययन २८, गाथा २८ से।

दूसरा बोल : 'सम्यक्त्व के तीन लिंग'

लिंग (जैसे आम के बाहरी पोले रंग से उसमे रहे हुए मधुर रस का अनुमान होता है, वैसे ही) जिस (सहचर) बाहरी गुणो से 'इस पुरुष मे सम्यक्त्व है'—इसका अनुमान हो, उसे 'सम्यक्त्व का लिंग' कहते है।

१. श्रुतानुराग . जैसे तरुण पुरुष राग-रग (सगीत) मे अनुराग (रुचि) रखता है, उसी प्रकार केवली प्ररूपित अहिंसामय वाणी सुनने मे अनुराग रक्खे।

२. धर्मानुराग : जैसे तीन दिन का भूखा पुरुष खीर-खाड का भोजन करने मे अनुराग (रुचि) रखता है, उसी प्रकार केवली प्ररूपित अहिंसामय धर्म-पालन मे अनुराग रखे।

३. देवगुरु वैयावृत्य : जैसे अनपढ (अपठित) पुरुष विद्या गुरु को पाकर हर्षित होता है और विद्या-प्राप्ति के लिए उनकी वैयावृत्य (सेवा) करता है उसी प्रकार देवगुरु के दर्शन पाकर हर्षित हो और धर्म-प्राप्ति के लिए उनकी वैयावृत्य करे।

—अनेक सूत्र से तथा प्रवचन सारोद्धार से।

तीसरा बोल : 'सम्यक्त्वी के दस विनय'

विनय : सम्यक्त्व उत्पन्न होने पर सम्यक्त्वी धर्मदेव आदि का जो वन्दन, भक्ति, बहुमान, गुण वर्णन आदि करता है, उसे 'सम्यक्त्वी का विनय' कहते है।

१ **अरिहत विनय :** अरिहन्त भगवान् का विनय करे।

२. **अरिहंत प्रज्ञप्त धर्म विनय .** अरिहन्त प्ररुपित धर्म का विनय करे।

३. **आचार्य विनय :** आचार्य भगवान् का विनय करे।

४. **उपाध्याय विनय :** उपाध्याय भगवान् का विनय करे।

५ **स्थविर विनय :** स्थविर भगवान् (बहुश्रुत और चिरदीक्षित) का विनय करे।

६. **कुल विनय :** कुल (एक आचार्य के शिष्यो के समुदाय) का विनय करे।

७. **गण विनय :** गंण (अनेक आचार्यो के शिष्यो के समुदाय) का विनय करे।

८. **संघ विनय :** चतुर्विध सघ (साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका) का विनय करे।

९. **क्रिया विनय :** क्रियावान् (क्रिया-पात्र) का विनय करे।

१०. **सांभोगिक विनय :** जो स्वधर्मी, स्वलिगी हो, उनका विनय करे।

—औपपातिक सूत्र से।

चौथा बोल : 'सम्यक्त्व की तीन शुद्धि'

शुद्धि : (जैसे आँख मे पीलिया, मोतिया-बिन्द आदि का न होना दृष्टि की शुद्धि है, वैसे ही) सम्यक्त्वी की दृष्टि मे देव, गुरु व धर्म के सम्बन्ध मे अशुद्धि न होना सम्यक्त्व की शुद्धि है।

१. **देव शुद्धि :** चार कर्म या अट्ठारह दोष रहित तथा बारह गुण सहित अरिहत देव को ही सुदेव माने, अन्य देवो को सुदेव न माने। (वचन से अरिहत देव का ही गुण-ग्राम करे, कुदेवो का न करे, काया से अरिहत देव को ही नमस्कार करे, अन्य देवो को न करे।)

२ **गुरु शुद्धि :** पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति के धारक अथवा २७ गुण धारक जैन-साधुओ को ही सुगुरु माने, अन्य साधुओ को सुगुरु न माने। (वचन से जैन-साधुओ का ही गुण-ग्राम करे, कुगुरुओ का न करे। काया से जैन-साधुओ को ही नमस्कार करे, कुगुरुओ को न करे।)

३. **धर्म शुद्धि :** केवली (अरिहन्त) प्ररुपित अहिंसामय स्याद्वाद सहित जैन-धर्म को ही सुधर्म माने, अन्य धर्मो को सुधर्म न माने। (वचन से जैन-धर्म का ही गुण-ग्राम करे, कुधर्मो को न करे। काया से जैन-धर्म को ही नमस्कार करे, कुधर्मो को न करे।

—'अरिहंतो महदेवो' प्रतिक्रमण सूत्र से।

पाँचवाँ बोल : 'सम्यक्त्व के पाँच लक्षण'

लक्षण : (जैसे ऊष्णता से अग्नि की पहिचान होती है, वैसे ही) जिस (असाधारण) अन्तरग गुण से सम्यक्त्व को

पहचान हो, उसे 'सम्यक्त्व का लक्षण' कहते है।

१. शम (प्रशम) : अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ का उदय न होने दे या शत्रु-मित्र पर समभाव रक्खे।

२. सवेग : धर्म को श्रद्धा और मोक्ष की अभिलाषा रक्खे।

३. निर्वेद : सासारिक काम-भोगो मे उदासीन रहे तथा आरम्भ परिग्रह का त्याग करे।

४. अनुकम्पा : दूसरे जीव को दु खी देख कर या ससार-परिभ्रमण करते हुए देख कर करुणा लावे।

५. आस्तिकता (आस्था) : जिन-वचनो पर विश्वास रख कर दृढ रहे।

—उत्तराध्ययन २९, स्थानांग ४ व ज्ञाता १ से।

छठा बोल : 'सम्यक्त्व के पाँच दूषण (अतिचार)'

दूषण : (जैसे रज से रत्न मलिन (मैला) होता है, वैसे ही) जिस बात से सम्यक्त्व-रूप रत्न दूषित (मलिन) हो, उसे 'मम्यक्त्व का दूषण (अतिचार)' कहते है।

१. शंका : सूक्ष्म तत्व समझ मे न आने पर जिन भगवान् के वचनो मे शका (सदेह) रखना।

२. काक्षा : अन्य मतियो के तप, आडम्बर, पूजादि देखकर उनकी काक्षा (चाह) करना।

३. विचिकित्सा : धर्म-क्रिया (करणी) के फल मे शका (सन्देह) करना अथवा त्यागी साधु-साध्वियो के शरीर-वस्त्रादि मलिन देखकर घृणा करना।

४. पर-पाषण्डी-प्रशंसा : अन्य मति कुतीर्थियों की प्रशसा करना।

५ पर-पाषण्डी-संस्तव : अन्य मति कुतीर्थियो का परिचय करना, उनके पास आना-जाना, उनकी सगति करना।

—उपासक दशांग अध्ययन १ तथा प्रतिक्रमण से।

सातवाँ बोल : 'सम्यक्त्व के पाँच भूषण'

भूषण : (जैसे आभूषणो से नारी की बाहरी शोभा बढती है वैसे ही) जिस गुण या कार्य से सम्यक्त्व की शोभा बढे, उसे 'सम्यक्त्व का भूषण' कहते है।

१. कुशलता : जिन-शासन में कुशल (चतुर) हो।

२. प्रभावना : वहुश्रुतादि ८ बोलो से जिन-शासन की प्रभावना करे।

३. तीर्थ-सेवा : जिन-शासन के चतुर्विध सघ की सेवा करे।

४. स्थिरता : जिन-शासन से डिगते हुए पुरुषो को जिन-शासन मे स्थिर करे।

५. भक्ति : जिन-शासन मे भक्ति रक्खे।

—प्रवचनसारोद्धार ग्रंथ से।

आठवाँ बोल : 'सम्यक्त्व की आठ प्रभावना'

प्रभावना : जिस गुण, लब्धि या क्रिया से लोगो मे सम्यक्त्व की (जैन धर्म की) प्रभावना हो, उसे 'सम्यक्त्व की प्रभावना-कहते है तथा सम्यक्त्व की प्रभावना करने वाले को 'प्रभावक' कहते हैं।

१. **बहुश्रुत (प्रावचनी) :** जिस काल मे जितने सूत्र उपलब्ध हो, उनके रहस्य (मर्म) का जानकार हो।

२. **धर्मकथी :** धर्म-कथा सुनाने मे कुशल (चतुर) हो।

३. **वादी :** प्रतिज्ञा, हेतु, दृष्टान्तादि से अन्य मत का खण्डन करके जैन मत की स्थापना करे।

४. **नैमित्तिक :** निमित्त के द्वारा भूत-भविष्य-वर्त्तमान काल की बात जाने।

५. **तपस्वी :** मासक्षमणादि उग्र तप करे, ब्रह्मचर्यादि कठोर व्रत धारण करे।

६. **विद्या वान् :** प्रज्ञप्ति, रोहिणी आदि अनेक विद्याओ का जानकार हो।

७. **लब्धिसम्पन्न :** वैक्रिय लब्धि, आहारक लब्धि आदि अनेक लब्धियो का धारक हो।

८. **कवि :** शास्त्रानुसार गद्य-पद्य की विशिष्ट रचना करे।

—प्रवचनसारोद्धार से।

नवमाँ बोल : 'सम्यक्त्व के छह आकार (आगार)'

आकार (आगार) : सम्यक्त्व की यतना (रक्षा) के लिए धारण किये जाने वाले अभिग्रह (निश्चय) मे रक्खी जाने वाली छूट को 'सम्यक्त्व के आकार (आगार)' कहते है।

१. **राजाभियोग :** राजा की आज्ञा, दबाव या बलात्कार से इच्छा बिना अन्य मत के गुरु, अन्य मत के देव तथा वेश, श्रद्धा या आचार से अन्य मती बने हुए जैन-साधुओ से आलापादि

करना पडे, तो सम्यक्त्व की प्रवृत्ति मे दोष लगता है, पर सम्यक्त्व भग नही होता ।

२ गणाभियोग : कुटुम्ब, जाति, पचायत, समूह आदि की आज्ञा, दवाव या वलात्कार से इच्छा बिना अन्य मत के गुरु, अन्य मत के देव तथा वेश, श्रद्धा या आचार से अन्य मती वने हुए जैन-साधुओ से आलापादि करना पडे, तो सम्यक्त्व की प्रवृत्ति मे दोष लगता है, पर सम्यक्त्व भग नही होता ।

३. बलाभियोग : शक्ति, सत्ता आदि से बलवान की आज्ञा, दबाव या वलात्कार से इच्छा विना अन्य मत के गुरु, अन्य मत के देव तथा वेश, श्रद्धा या आचार से अन्य मती बने हुए जैन साधुओ से आलापादि करना पडे, तो सम्यक्त्व की प्रवृत्ति में दोष लगता है, पर सम्यक्त्व भग नही होता ।

४. देवाभियोग : देव, देवी की आज्ञा, दबाव या बलात्कार से इच्छा विना अन्य मत के गुरु, अन्य मत के देव तथा वेश, श्रद्धा या आचार मे अन्य मती बने हुए जैन-साधुओं से आलापादि करना पडे, तो सम्यक्त्व की प्रवृत्ति मे दोष लगता है, पर सम्यक्त्व भग नहीं होता ।

५. गुरुनिग्रह : माता-पिता आदि बडों की आज्ञा या दबाव मे इच्छा बिना अन्य मत के गुरु, अन्य मत के देव तथा वेश, श्रद्धा या आचार से अन्य मती वने हुए जैन-साधुओ से आलापादि करना पडे, तो सम्यक्त्व की प्रवृत्ति में दोष लगता है, पर सम्यक्त्व भग नहीं होता ।

६. वृत्तिकान्तार : आजीविका की रक्षा के लिए स्वामी की आज्ञा या दबाव होने पर या अटवी आदि विषम क्षेत्र काल भाव मे फँस जाने पर इच्छा बिना अन्य मत के गुरु, अन्य मत

के देव तथा वेश, श्रद्धा या आचार से अन्य मती बने हुए जैन-साधुओ से आलापादि करना पडे, तो सम्यक्त्व की प्रवृत्ति मे दोष लगता है, पर सम्यक्त्व भग नही होता।

—उपासक दशांग अध्ययन १ से।

दसवाँ बोल : 'सम्यक्त्व की छह यतना'

यतना : (जैसे असुशील पुरुषो के ससर्ग से बचने से पतिव्रता सुशीला स्त्री के शील की रक्षा होती है, वैसे ही) जिस ससर्ग से बचने से सम्यक्त्वी के सम्यक्त्व की रक्षा हो, उसे 'सम्यक्त्व की यतना' कहते हैं।

१. वंदना : अन्य मत के गुरु, अन्य मत के देव तथा वेश, श्रद्धा या आचार से अन्य मती बने हुए जैन-साधुओ की स्तुति (गुणग्राम) न करे।

२ नमस्कार : अन्य मत के गुरु, अन्य मत के देव तथा वेश, श्रद्धा या आचार से अन्य मती बने हुए जैन-साधुओ को नमस्कार न करे।

३. आलाप : अन्य मत के गुरु, अन्य मत के देव तथा वेश, श्रद्धा या आचार से अन्य मती बने हुए जैन-साधुओ से बिना उनके पहले बुलाये स्वय पहले एक बार भी न बोले।

४. सलाप : अन्य मत के गुरु, अन्य मत के देव तथा वेश, श्रद्धा या आचार से अन्य मती बने हुए जैन-साधुओ से बिना उनके दूसरी-तीसरी बार बुलाये, उनसे स्वय बार-बार भी न बोले।

५. दान : अन्य मत के गुरु, अन्य मत के देव तथा वेश, श्रद्धा या आचार से अन्य मती बने हुए जैन-साधुओ को एक बार भी दान न दे।

६. अनुप्रदान : अन्य मत के गुरु, अन्य मत के देव तथा वेश, श्रद्धा या आचार से अन्य मती बने हुए जैन-साधुओ को वार-बार भी न दान दे। (अनुकपा बुद्धि से किसी को भी आलापादि करने या किसी को भी दानादि देने का तीर्थंकर भगवान् द्वारा निषेध नही है।

उपरोक्त आलापादि छहो बोल सुदेव, सुगुरु तथा स्वधर्मी बन्धुओ के साथ अवश्य करे।)

ग्यारहवाँ बोल : 'सम्यक्त्व के छह स्थान'

स्थान : (जैसे स्थान होने पर ही मनुष्य ठहर पाता है, वैसे ही) जिस सैद्धान्तिक सत्य मान्यता के होने पर ही सम्यक्त्व ठहरे (रहे), उसे 'सम्यक्त्व का स्थान' कहते है।

१. जीव है : चेतना लक्षण वाला जीव द्रव्य सत् है, असत् नही है। अर्थात् जीव वास्तविक सत्य पदार्थ है, परन्तु काल्पनिक झूठा पदार्थ नही है।

२. जीव नित्य है : जीव द्रव्य आदि (उत्पत्ति) अत (विनाश) रहित सदा काल शाश्वत है। परन्तु शरीर की उत्पत्ति से जीव की उत्पत्ति और शरीर के नाश से जीव का नाश नही होता है।

३. जीव कर्त्ता है : जीव आठ कर्मों का कर्त्ता है, परन्तु अकर्त्ता नही है। अथवा ईश्वर जीव से कर्म कराता हो या जीव कर्म करता हुआ भी कर्म से निर्लेप रहता हो—यह बात भी नही है।

४. जीव भोक्ता है : जीव आठ कर्मों का भोक्ता है, पर अभोक्ता नही है। अथवा ईश्वर जीव का कर्म का फल

भुगताता हो या कर्म भोगे विना छूट जाते हो—यह वात भी नही है।

५. मोक्ष है : भव्य जीव आठ कर्मो का क्षय करके मोक्ष प्राप्त करते है, परन्तु भगवान् सदा से, भगवान् हो या ससारी, सदा ससारी ही वने रहते हो—ऐसी वात नही है।

६. मोक्ष का उपाय : (क) सम्यग्ज्ञान (ख) सम्यग्दर्शन (ग) सम्यक्चारित्र और (घ) सम्यक्तप—ये चार मोक्ष के उपाय हैं। परन्तु (क) अज्ञान (ख) मिथ्यात्व (ग) अव्रत और (घ) भोग या वाल तप—ये मोक्ष के उपाय नही है।

—सूत्रकृतांग अध्ययन २१ से।

बारहवाँ बोल : 'सम्यक्त्व की छह भावना'

भावना : (जैसे भावना देने से औषधियाँ पुष्ट वनती हैं, वेसे ही) जिस भावना से सम्यक्त्व पुष्ट वने, उसे 'सम्यक्त्व की भावना' कहते हैं।

१. मूल (जड़) : धर्म (चारित्र धर्म) रूप वृक्ष के लिए सम्यक्त्व जड के समान है, क्योकि सम्यक्त्व-रूप जड के विना धर्म-रूप वृक्ष उत्पन्न नही हो सकता।

२. द्वार : धर्म-रूप नगर के लिए सम्यक्त्व द्वार के समान है, क्योकि सम्यक्त्व-रूप द्वार के विना धर्म रूप नगर मे प्रवेश नही हो सकता।

३. नींव (प्रतिष्ठान) : धर्म-रूप प्रासाद (महल) के लिए सम्यक्त्व नीव के समान है, क्योकि सम्यक्त्व-रूप नीव के विना धर्म रूप प्रासाद स्थिर नही रह सकता।

अथवा

दुकान : धर्म-रूप क्रयाणक के लिए सम्यक्त्व-रूप दुकान (आपण) के समान है, क्योकि सम्यक्त्व-रूप दुकान के बिना धर्म-रूप क्रयाणक की रक्षा नही हो सकती।

४ पृथ्वी : धर्म-रूप जगत के लिए सम्यक्त्व पृथ्वी के समान है, क्योकि सम्यक्त्व-रूप पृथ्वी के बिना धर्म-रूप जगत टिक नही सकता।

५. भाजन (पात्र) : धर्म-रूप खीर के लिए सम्यक्त्व पात्र के समान है, क्योकि सम्यक्त्व-रूप भाजन के बिना धम-रूप खीर ग्रहण नही की जा सकती।

६. निधि (पेटी) : धर्म-रूप धन (आभूषणादि) के लिए सम्यक्त्व पेटी के समान है, क्योकि सम्यक्त्व-रूप पेटी के बिना धर्म-रूप धन की रक्षा नही हो सकती।

—अनेक सूत्र तथा प्रवचन सारोद्धार से।

इस स्तोक मे तीन-तीन के बोल दो, चार का बोल एक, पाँच-पाँच के बोल तीन, छह-छह के बोल चार, आठ का बोल एक तथा दस का बोल एक है। ३×२=६,+४×१=४,+५×३=१५, +६×४=२४,+८×१=८,+१०×१=१०। योग ६७।

सम्यक्त्व के ६७ बोल समाप्त।

◆

परिशिष्ट

तेरहवाँ बोल : 'सम्यक्त्व की दस रुचि'

रुचि : (जैसे औषधि से भोजन की अरुचि मिट कर भोजन की रुचि उत्पन्न होती है, वैसे ही) जिस बात से मिथ्यात्व की रुचि हटकर 'सम्यक्त्व की रुचि' उत्पन्न हो अर्थात् सुदेव, सुगुरु, सुधर्म के प्रति रुचि उत्पन्न हो, उसे 'सम्यक्त्व की रुचि' कहते हैं।

१. **निसर्ग रुचि :** किसी को जाति-स्मरणादि से अपने आप सम्यक्त्व उत्पन्न होती है।

२. **उपदेश रुचि :** किसी को सर्वज्ञ या छद्मस्थ के उपदेश सुनने से सम्यक्त्व उत्पन्न होती है।

३. **आज्ञा रुचि :** किसी को देव और गुरु की आज्ञा मानने से सम्यक्त्व उत्पन्न होती है।

४. **सूत्र रुचि :** किसी को सूत्रो का स्वाध्याय करने से सम्यक्त्व उत्पन्न होती है।

५. **बीज रुचि :** किसी को बीज-रूप एक ही पद पर विचार करते रहने से सम्यक्त्व उत्पन्न होती है।

६ **अभिगम :** किसी को सूत्रो के अर्थ पढने से सम्यक्त्व उत्पन्न होती है।

७. **विस्तार रुचि :** किसी को द्रव्यो और पर्यायो का, प्रमाणो और नयो से विस्तारपूर्वक अध्ययन करने से सम्यक्त्व उत्पन्न होती है।

८. क्रिया रुचि : किसी को साधु-श्रावक की क्रिया (करणी) करते रहने से सम्यक्त्व उत्पन्न होती है।

९. संक्षेप रुचि : किसी को 'जो जिनेश्वरो ने कहा है, वही सत्य है और शका रहित है'—सक्षेप मे इतनी श्रद्धा करने से भी सम्यक्त्व उत्पन्न होती है।

१० धर्म रुचि · किसी को 'जिनेश्वरो द्वारा बताया हुआ जैन धर्म (अस्तिकाय धर्म, श्रुत धर्म, चारित्र धर्म) ही सच्चा है'—ऐसी श्रद्धा रखने से सम्यक्त्व उत्पन्न होती है।

—उत्तराध्ययन, अध्ययन २८ से।

चौदहवाँ बोल : 'सम्यक्त्व के पाँच भेद'

१. उपशम सम्यक्त्व : जो दर्शन मोहनीय की तीन तथा अनन्तानुबंधी कषाय की चौकडी—ये सात प्रकृतियाँ उपशम करने पर उत्पन्न हो।

२ क्षायिक सम्यक्त्व : जो इन्ही सात प्रकृतियों को क्षय करने पर उत्पन्न हो।

३. क्षयोपशम सम्यक्त्व : जो इन्हीं सात प्रकृतियो का कुछ क्षय तथा कुछ उपशम करने पर उत्पन्न हो।

४ सास्वादन सम्यक्त्व : जो मिथ्यात्व की ओर जाते हुए सम्यक्त्व का कुछ स्वाद रह जाने से उत्पन्न हो।

५. वेदक सम्यक्त्व : जो क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करने से पहले एक समय सम्यक्त्व मोहनीय का वेदन करने से उत्पन्न हो।

—अनुयोग द्वार आदि अनेक सूत्र तथा प्रवचन सारोद्धार से।

पन्द्रहवाँ बोल : 'सम्यक्त्व के आठ आचार'

आचार : सम्यक्त्वी को जिन आचारों का पालन करना चाहिए, उन्हे सम्यक्त्व के आचार' कहते है।

१. **निःशकित :** सूक्ष्म 'तत्व' समझ मे न आने पर जिन-वचनो मे सन्देह न करे।

२ **निःकांक्षित :** कुतीर्थियो के तप-आडवर, पूजादि देखकर 'अन्य मत' की चाह न करे।

३. **निर्विचिकित्सक** धर्म-क्रिया के फल में सन्देह न करे, त्यागी साधु-साध्वियो के शरीर-वस्त्रादि मलिन देखकर घृणा न करे।

४. **अमूढ दृष्टि** कुतीर्थियो के तप, आडवर, पूजादि देखकर जिन-मत से विचलित न हो।

५ **उपबृंहण (उववूह) :** सम्यक्त्वियो की प्रशंसा और वैयावृत्य करके उनको वढावा दे, स्वय भी अपने सम्यक्त्व को पुष्ट करे।

६. **स्थिरीकरण :** जिन-शासन से डिगते हुए पुरुषों को जिन-शासन मे स्थिर करे।

७. **वात्सल्य :** चतुर्विध सघ से वत्सलता (प्रेम) रक्खे।

८ **प्रभावना :** वहुश्रुतादि ८ वोलो से जिन-शासन को प्रभावना करे।

—उत्तराध्ययन, अध्ययन २८ से।

सोलहवाँ बोल : 'सम्यक्त्वी के तीन प्रकार'

१. कारक : धर्म-क्रिया करे।

२. रोचक : धर्म-क्रिया की रुचि रक्खे, पर करे नही।

३. दीपक : न धर्म-क्रिया करे, न रुचि रक्खे, केवल परोपदेश करे।

—अनेक सूत्र तथा विशेषावश्यक से।

श्रावकजी के २१ गुण

१. तत्वज्ञ : जीवादि नव तत्व (और पच्चीस क्रिया) के जानकार हो।

२. असहाय : धर्म-क्रिया मे किसी की सहायता के अभाव मे धर्म-क्रिया करना न छोडे।

३. अनतिक्रमणीय : देव-दानव आदि से भी निर्ग्रन्थ प्रवचन (जैन धर्म) से चलायमान न हो।

४. निःशंक : निर्ग्रन्थ प्रवचन (जैन धर्म) मे १ शका, २ काक्षा, ३ विचिकित्सा न करे।

५. गीतार्थ : १ लब्धार्थ, २ गृहीतार्थ, ३. पृष्ठार्थ, ४. अभिगृहीतार्थ और ५ विनिश्चितार्थ हो। (अर्थात् सूत्रार्थ को १ दूसरो से पाये हुए, २ स्वय ग्रहण किये हुए, ३ पूछे हुए, ४. समझे हुए तथा ५ निश्चय किए हुए हो)

६. **धर्मानुरक्त :** अस्थि-मज्जा तक धर्म-प्रेम के अनुराग से रगे हुए हो।

७. **परमार्थज्ञ** निर्ग्रन्थ प्रवचन (जैनधर्म) को ही परमार्थ समझे और अन्य सभी लौकिक सुख तथा अन्य मतो को अनर्थ समझें।

८. **उच्छ्रितस्फटिक :** स्फटिक रत्न के समान निर्मल अन्त करण वाले हो।

९. **अपावृत्त द्वार :** दान के लिए द्वार सदा खुले रखे।

१०. **प्रतीत :** राज अन्त.पुर, राज्य-भण्डार आदि मे प्रतीति-पात्र हो।

११. **व्रती :** पाँच अणुव्रत, तीन गुण व्रत पाले, नित्य सामायिक-दिशावकाशिक व्रत आराधे तथा अष्टमी, चतुदर्शी, अमावस्या, पूर्णिमा यो मास के छह दिन पौषध करे।

१२. **सम्यक् अनुपालक :** लिए हुए अहिंसादि व्रत तथा नमस्कार सहित (नवकारसी) आदि प्रत्याख्यान सम्यक् (निर्मल) पाले।

१३. **अतिथि संविभागी :** श्रमण निर्ग्रन्थो को १४ प्रकार का प्रासुक (अचित्त) एषणीय (आधा कर्म आदि रहित) दान दे।

—औपपातिक सूत्र से।

१४. **धर्मोपदेशक :** निर्ग्रन्थ प्रवचन(जैनधर्म)का उपदेश दे।

१५. **सुमनोरथी :** (१ अल्प परिग्रह २. दीक्षा और ३. पडितमरण इन) तीन मनोरथो का नित्य चिन्तन करे।

१६. **तीर्थसेवक :** चतुर्विध सघ की सेवा करे।

१७. **उपासक :** ज्ञानी की उपासना करते हुए नित्य-नये-नये सूत्र सुनकर ज्ञान बढावे।

१८. **स्थिरकारक :** जिन-शासन से डिगते हुए पुरुषो को जिन-शासन मे स्थिर करे।

१६. **प्रतिक्रमणकारी :** उभयकाल दैवसिक, रात्रिक प्रतिक्रमण करे।

२०. **सर्वजीव हितैषी :** सब जीवो का हित चाहे।

२१. **तपस्वी :** यथाशक्ति तपश्चर्या करे।

—अनेक सूत्रो से।

◆

श्रावकजी के चार विश्राम

जैसे १ भार ढोने वाला भार को एक कन्धे से **दूसरे कंधे पर रक्खे** और पहले कन्धे को विश्राम दे—यह पहला विश्राम है। २ भार को **चबूतरे आदि पर** रख कर मल-मूत्र की बाधा दूर करे, खा-पीकर भूख-प्यास की बाधा दूर करे—यह दूसरा विश्राम है। ३. रात्री को धर्मशाला, **मन्दिर आदि मे** रात भर रहे, सो कर दिन भर का श्रम दूर करे—यह तीसरा विश्राम है। ४ जहाँ पर भार पहुँचाना है, **ठेठ वहाँ** भार पहुँचा दे और निश्चिन्त हो जाय—यह चौथा विश्राम है।

इसी प्रकार १. **बारह व्रत और नमस्कार सहित** (नवकारसी) आदि का प्रत्याख्यान धारण करे, वह श्रावक का पहला विश्राम है। २ प्रतिदिन **सामायिक और दिशावकाशिक** व्रत सम्यक् पाले, वह श्रावक का दूसरा विश्राम है। ३. महीने मे छह दिन प्रतिपूर्ण **पौषध** सम्यक् पाले, वह श्रावक का तीसरा

विश्राम है। ४ अन्तिम समय मे सलेखना सथारा करके भक्त प्रत्याख्यान सहित **समाधिमरण** स्वीकार करे, यह श्रावक का चौथा विश्राम है।

चार गति के कारण

१. नरक गति के चार कारण

१. **महा आरम्भ :** अपरिमाण खेती आदि से पृथ्वी-कायादि का महा आरम्भ करना।

२. **महा परिग्रह** . महा तृष्णा, महा ममत्व और अपार धन रखना।

३. **मांसाहार :** मद्य, मास, अण्डे आदि आहार करना।

४. **पञ्चेन्द्रिय वध** · शिकार करना, कसाई का काम करना, मछली, अण्डे आदि का व्यापार करना।

२. तिर्यञ्च गति के चार कारण

१. **माया :** माया करना या माया की बुद्धि रखना।

२. **निकृति :** गूढ माया करना अर्थात् झूठ सहित माया करना या माया का प्रयत्न करना।

३. **अलीक वचन :** कन्या, पशु, भूमि आदि के विषय मे झूठ बोलना।

४. **कूट तोल कूट माप :** देते समय कम तोलना-मापना, लेते समय अधिक तोलना-मापना।

३. मनुष्य गति के चार कारण

१. **प्रकृति भद्रता :** प्राकृतिक (स्वाभाविक, बनावटी नहीं) भद्रता रखना।

२. **प्रकृति विनीतता :** प्राकृतिक विनयशीलता रखना।

३. **सानुक्रोशता :** अनुकम्पा (दया) भाव रखना।

४. **अमत्सरता :** मत्सरता (ईर्ष्या-बुद्धि) का भाव न रखना।

४ देव गति के चार कारण

१. **सराग-संयम :** प्रमाद और कषाय सहित साधुत्व पालना।

२. **संयमा-संयम :** श्रावकत्व पालना।

३. **बाल-तप :** अजैन साधुओं और अजैन गृहस्थों का अज्ञान तप करना।

४. **अकाम-निर्जरा :** अभाव, पराधीनता आदि कारणों से अनिच्छापूर्वक परीषह और उपसर्ग सहन करना।

मोक्ष के चार उपाय

१. सम्यग्ज्ञान, २. सम्यग्दर्शन, ३. सम्यग्चारित्र और ४. सम्यक्तप।

सात व्यसन

१. शिकार, २. चोरी, ३ पर-स्त्री-गमन, ४. वेश्या-गमन, ५. मांसाहार, ६. मदिरा-पान और ७. द्यूत (जूआ)।

तत्त्व-विभाग समाप्त

कथा-विभाग

१. भगवान् महावीर

देवानन्दा की कुक्षि में

भारतवर्ष के बिहार—उडीसा प्रान्त मे **ब्राह्मण कुण्ड** नामक नगर था। वहाँ **ऋषभदत्त** नामक ब्राह्मण रहता था। वह वेद-पारगत और धनाढ्य भी था। उसकी **देवानन्दा** नामक सुरूपा और कुलीन भार्या थी।

१०वें देवलोक से च्यवकर (उतर कर) **भगवान् महावीर स्वामी का जीव आषाढ शुक्ला ६** की रात्रि को देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ मे आया। उस समय आधी नीद मे सुखपूर्वक सोती हुई देवानन्दा को ये **चौदह स्वप्न** आये—१ हाथी, २ वृषभ, ३ सिंह, ४ लक्ष्मी का अभिषेक, ५ दो रत्नमालाएँ, ६ चन्द्र, ७. सूर्य, ८ ध्वज, ९ कुम्भ, १० पद्मकमलयुक्त सरोवर, ११ क्षीरसागर, १२ विमान, १३ रत्न की राशि और १४. धुएँ रहित अग्नि की शिखा। इन स्वप्नों को देख कर देवानन्दा जग गई। उसने अपने पति के पास जाकर ये आए हुए स्वप्न सुनाये। ऋषभदत्त ने उन पर बुद्धि से विचार करके कहा : तुम्हे स्वप्नो के फल मे 'एक पुत्र की प्राप्ति' होगी, जो वेद-पारगत और हमारे कुल का तिलक होगा।

गर्भ संहरण

जब देवानन्दा को गर्भ धारण किये ८२ बयासी दिन और ८२ रात्रियाँ बीत गयी—८३वी रात्रि चल रही थी, तब की बात है। पहले देवलोक के 'शक्र' नामक इन्द्र अपने अवधि-ज्ञान से भरत क्षेत्र को देख रहे थे। उस समय उन्होंने भगवान् को देवानदा ब्राह्मणी के गर्भ मे आये हुए देखा। देखते ही पहले उन्होंने सिद्धो को नमोत्थुण दिया फिर भगवान् महावीर स्वामी को नमोत्थुण देकर नमस्कार किया।

पीछे उन्हे विचार हुआ कि तीर्थकर आदि उत्तम पुरुष, शूद्र कुल मे, अधम कुल मे, अल्प परिवार वाले कुल मे, दरिद्र कुल मे, कृपण (अदातार) कुल मे, भिखारी कुल मे या ब्राह्मण आदि के कुल मे नही आते, परन्तु क्षत्रिय कुल मे ही आते है। कभी-कभी अनन्तकाल मे कोई उत्तम पुरुष अपने पुराने कमाये हुए अशुभ नाम-गोत्र-कर्म क्षय न होने पर यदि शूद्रादि कुल में आ भी जायँ, तो वे उस योनि से बाहर नही निकलते, अत. मेरा कर्त्तव्य है कि—मैं 'गर्भ सहरण' (परिवर्तन) करूँ।

यह विचार कर उन्होने अपने हरिनैगमैषी नामक देव को आदेश दिया कि तुम देवानन्दा नामक ब्राह्मणी के गर्भ मे रहे हुए चरम (अन्तिम) तीर्थंकर भगवान् महावीर को क्षत्रियकुण्ड नगर के महाराजा सिद्धार्थ की महारानी त्रिशलादेवी के गर्भ मे पहुँचाओ और त्रिशलादेवी के गर्भ मे जो कन्या है, उसे देवानन्दा के गर्भ मे पहुँचाओ। हरिनैगमैषी ने शक्र इन्द्र की आज्ञा का पालन किया।

त्रिशला की कुक्षि में आने पर

जिस समय भगवान् का गर्भ सहरण हुआ, उस समय देवानन्दा को ऐसा स्वप्न आया कि 'मेरे वे

१४ चौदह ही स्वप्न त्रिशला क्षत्रियाणी के पास चले गये।' और उसी रात्रि को त्रिशलादेवी को वे चौदह ही स्वप्न आये। महारानी ने उन स्वप्नो को सिद्धार्थ महाराज को जाकर सुनाये। महाराजा ने कहा—कि तुम्हे इसके फल मे एक ऐसा पुत्र प्राप्त होगा, 'जो आगे चल कर राजा बनेगा।' स्वप्न का फल सुनकर रानी प्रसन्न हुई। उसने स्वप्न फल नष्ट न हो, इसलिए स्वप्न जागरण किया। महाराजा ने प्रातःकाल स्वप्न-पाठको को बुलाया और सम्मान के साथ उनसे स्वप्न का फल पूछा। उन्होने कहा—महाराज! ये चौदह स्वप्न तीर्थंकर या चक्रवर्ती की माता को आते हैं। अतः महारानी त्रिशला भविष्य मे तीर्थंकर या चक्रवर्ती बनने वाले पुत्र को जन्म देगी। यह स्वप्न-फल सुनकर सभी को प्रसन्नता हुई। सिद्धार्थ ने स्वप्न-पाठको को सात पीढियो तक चले, इतना धन आदि देकर बिदा किया।

वर्द्धमान नाम का हेतु

जिस रात्रि को भगवान् त्रिशला के गर्भ मे आये, तभी से शक्रेन्द्र की आज्ञानुसार जृंभक जाति के देवो ने सिद्धार्थ के यहाँ सोना-चाँदी का संहरण किया तथा सिद्धार्थ के धन, धान्य, राज्य, सेना, कोष अन्तःपुर, यश, सत्कार आदि की भी बहुत वृद्धि हुई। जिससे राजा रानी दोनो ने यह निश्चय किया कि हम अपने इस पुत्र का नाम 'वर्द्धमान' देगे। ऐसा था भगवान् का पुण्य प्रभाव।

माता के प्रति अनुकंपा

(उससे) कुछ समय पीछे की बात है—गर्भ मे रहे हुए भगवान् महावीर स्वामी ने 'अपनी माता को कष्ट न हो' इस

अनुकपा-भाव से अगोपाग सकोच लिए और निश्चल हो गये। पर त्रिगला को यह विचार हो गया कि 'मेरा गर्भ या तो किसी ने चुरा लिया है या वह मर गया है, या वह गल गया है. क्योंकि पहले वह हिलता-डुलता था, अव वह हिलता-डुलता नही।' इस विचार से त्रिशला को वहुत चिता हो गयी। रानी की चिता से सारा राजप्रासाद भी चिन्तित हो गया। उसमे होने वाले गाने-वजाने-नाचने आदि सभी वन्द हो गये। यह उल्टी स्थिति देखकर भगवान् ने गर्भ मे हिलना-डुलना आरभ कर दिया। तव त्रिगला को पुन सन्तोष और विश्वास हुआ। रानी के सन्तोष तथा विश्वास पर राजप्रासाद मे भी हर्ष छा गया।

भगवान् को तव यह विचार हुआ—जसे मेरा हित के लिए किया गया कार्य अहित के लिए हुआ, इसी प्रकार भविष्य मे लोग पराये का हित करेगे, फिर भी उन्हे प्रत्यक्ष (तत्काल) मे प्राय अहित मिलेगा। (कर्म तो शुभ ही वँधेगे।) उसके पश्चात् उन्होने ममतावश यह अभिग्रह (निश्चय) किया कि 'मैं माता-पिता के जीवित रहते दीक्षित नही वनूँगा।'

भगवान् का जन्म

दोनो गर्भ के मिलाकर आपाढ शुक्ल ६ छठ की रात से **चैत्र शुक्ला १३ तेरस** की रात तक ९ महीने और साढे सात (कुछ अधिक सात) रात वीतने पर, जव ग्रह-नक्षत्र उच्च स्थान पर थे, दिशा निर्मल थी, शकुन उत्तम थे, वायु प्रदक्षिणावर्त थी, धान्य निपजा हुआ था और देश मुखी था, तव त्रिगला ने सुखपूर्वक भगवान् को जन्म दिया।

भगवान् का जन्म होते ही कुछ समय के लिए तीनों लोक मे प्रकाश और नारकीय आदि सभी जीवो को शान्ति

मिली। ५६ छप्पन दिशा-कुमारियो ने आकर भगवान् का शुचि-कर्म, मगल-गान आदि कार्य किया। उसी समय अच्युत आदि त्रेसठ इन्द्र तो अपने परिवार सहित मेरु पर्वत पर गये और शक्रेन्द्र भगवान् के जन्म-स्थान पर पहुँचे। वहाँ उन्होने भगवान् और माता त्रिशला को वदन किया। फिर त्रिशला माता की स्तुति करके उन्हे अपना परिचय देते हुए कहा—'मैं भगवान् का जन्म-कल्याण मनाने आया हूँ, अत आप भयभीत न हो।' यह कह कर उन्होने परिवार सहित त्रिशलाजी को 'अवस्थापिनी' नामक गाढ निद्रा दे दी। पश्चात् भगवान् का प्रतिविम्ब वनाया। उसे माता के पास रक्खा और भगवान् को अपने हाथो मे उठाकर जय जयकार के मध्य मेरु पर्वत पर लाये। वहाँ जीताचार (अनादि रीति) के अनुसार सबने मिलकर भगवान् का जन्म-कल्याण मनाया।

मेरु कंपन

उस समय भगवान् को सैकडो घडो से स्नान कराने के पहले भगवान् का छोटा-सा शरीर देख शक्रेन्द्र के मन मे शका हुई कि 'भगवान् इतनी अधिक जलधार को कैसे सहन कर सकेगे ? भगवान् ने अवधि-ज्ञान से शक्रेन्द्र की इस शका को जानकर उस शका को दूर करने के लिए बायें पैर के अँगूठे से ही मेरु पर्वत को कँपा दिया। यह देखकर शक्र के मन की शका दूर हो गई। ऐसा था भगवान् का बाल्यकाल का शारीरिक बल।

भगवान् का जन्म-कल्याण महोत्सव हो जाने पर शक्रेन्द्र ने उसी रात मे भगवान् को माता के पास ले जा कर

रख दिया तथा दी हुई अवस्थापिनी निद्रा हटाकर वे अपने स्थान को चले गये।

सिद्धार्थ द्वारा जन्मोत्सव

महाराजा सिद्धार्थ ने प्रातःकाल होने पर भगवान् का जन्मोत्सव मनाने का आदेश दिया। बन्दी छोडे गये। मान-उन्मान (तोल-माप) मे वृद्धि की गई। नगर को सजाया गया। शुल्क-कर आदि रोके गये। नाट्य वाद्य, गीत, नृत्य आदि के साथ दस दिन विताये गये। पुरजनो ने हर्ष मे सिद्धार्थ राजा को सहस्रो लाखो स्वर्ण-मुद्राएँ आदि भेट की। राजा ने भी प्रतिदान मे इसी प्रकार दिया। ग्यारहवे दिन अशुचि-कर्म निवारण करके बारहवे दिन महाराज ने सभी ज्ञाति मित्र आदि को भोज दिया और उनके सामने अपने पूर्व निश्चय को प्रकट करते हुए भगवान् का नाम वर्द्धमान रक्खा।

पाँच धायपूर्वक पालन

उसके पश्चात् महाराजा सिद्धार्थ ने भगवान् के संरक्षण के लिए ये पाँच धाएँ रक्खी—१ दूध, अन्न आदि पिलाने खिलाने वाली, २. स्नान, मजन, शुद्धि आदि करने वाली, ३ आभूषण, वस्त्र, केश, पुष्प आदि का अलंकार करने वाली, ४ क्रीडा कराने वाली और ५ अंक (गोद) मे रखने वाली। ये सब धाये सिद्धार्थ ने अपने हर्ष और कुल-रीति आदि के लिए ही रक्खी। क्योंकि शक्रेन्द्र भगवान् के अंगूठे मे अमृत भर देते है और भगवान् उस अंगूठे को ही चूसते है तथा भगवान् के शरीर मे किसी प्रकार अशुचि न तो रहती है, न लगती है तथा भगवान् बाल-अवस्था मे भी रोते आदि नही है।

इस प्रकार भगवान् चम्पक वृक्ष की भाँति क्रमशः सुखपूर्वक बढने लगे।

बालक वर्धमान की देव-परीक्षा

आठ वर्ष के होने से पहले की बात है। भगवान् यद्यपि क्रीडा की इच्छारहित थे, पर समान वय वाले बालको के आग्रह से वे नगर के बाहर खेलने के लिऐ गये। वहाँ वृक्ष पर चढने-उतरने का खेल आरम्भ हुआ।

इधर देवलोक मे **शक्रेन्द्र** ने सभा के बीच यह प्रशसा की —'भगवान् यद्यपि इतने छोटे बच्चे हैं, परन्तु उन्हे कोई भयभीत नही कर सकता।' यह सुनकर एक **मिथ्यादृष्टि देव** इन्द्र के वचनो को असत्य करने के लिए वहाँ आया और भयकर सर्प का रूप बना कर जहाँ वर्धमानादि खेल रहे थे, उस वृक्ष को लिपट गया। सभी बच्चे उस भयकर सर्प को देखकर भयभीत हुए और भागने लगे। परन्तु निर्भय वर्धमान ने उस भयकर सर्प को हाथो से उठाया और एक ओर ले जा कर रख दिया। यह देखकर बालक फिर से लौट आये और वर्धमान के साथ **कन्दुक (गेंद) का खेल** खेलने लगे। उसमे यह पण (शर्त) थी कि जो हारे, वह बैल-घोडा बनेगा और जीतने वाला ऊपर चढेगा। देव भी एक बालक का रूप बनाकर साथ ही खेलने लगा। कुछ क्षण मे ही वह जान-बूझ कर हार गया और बोला— 'वर्धमान ने मुझे जीत लिया है, इसलिए ये मेरे कन्धे पर चढे।' वर्धमान उसके कन्धे पर चढे। देव ने वर्धमान को भयभीत करने के लिए तत्काल सात-आठ ताड जितना ऊँचा शरीर बना लिया। तब भगवान् ने उसकी वास्तविकता जानकर उसकी पीठ पर वज्र के समान **मुट्ठी-प्रहार** किया। उससे वह पीड़ित

होकर शीघ्र ही छोटा बन गया। उसने शक्रेन्द्र के वचन को सत्य माना और भगवान् को अपने आने आदि का कारण बताकर तथा क्षमा मागकर स्वस्थान पर चला गया। ऐसी थी भगवान् की बाल-अवस्था की निर्भयता।

लेखशाला में

जब भगवान् कुछ अधिक आठ वर्ष के हो गये, तब महाराजा सिद्धार्थ इस बात का विचार किये बिना ही कि 'भगवान् जन्म से अवधि-ज्ञानी होते हैं', भगवान् को बडे समारोह के साथ लेखशाला मे पढने को ले गये। पण्डितजी भी उनको लेख आरम्भ कराने की सामग्री जुटाने लगे। जब शक्रेन्द्र को यह जानकारी हुई, तो वे वहाँ ब्राह्मण का रूप लेकर आये और भगवान् को पण्डित योग्य आसन पर बिठा कर उनसे ऐसे विकट प्रश्न पूछे, जिनके सम्बन्ध मे पण्डित को भी अब तक सशय था। पर भगवान् ने उस बाल-अवस्था मे भी उनका उत्तर बहुत सुन्दरता से तथा शीघ्रता से दिया। यह देखकर वहाँ के सभी उपस्थित लोग चकित रह गये। तब शक्रेन्द्र ने लोगो को ज्ञान कराया कि भगवान् जन्म से अवधि-ज्ञानी होते है। अन्त मे पण्डित ने बडे सम्मान से भगवान् को वहाँ मे विदाई दी और सिद्धार्थ उन्हे अपने घर लेकर आये। ऐसा था भगवान् का बाल-अवस्था का ज्ञान।

यशोदा का पाणिग्रहण

धीरे धीरे जब भगवान् युवावस्था मे आये, तब माता-पिता ने लग्न के लिए बहुत आग्रह किया। उस समय भोग-फल देने वाले कर्मों के उदय को जानकर भगवान ने यशोदा

नाम वाली राज-कन्या से पाणिग्रहण किया। कुछ काल के पश्चात् उनके एक पुत्री का जन्म हुआ। उसका नाम 'प्रियदर्शना' रक्खा गया। भविष्य मे उसका जमाली नामक क्षत्रिय पुत्र के साथ विवाह किया गया।

माता-पिता का स्वर्गवास

भगवान् महावीर स्वामी अट्ठावीस वर्ष के हुए, तब की बात है—उनके माता-पिता भगवान् पार्श्वनाथ के मानने वाले श्रावक-श्राविका थे। उस समय उन्होंने अन्तिम समय जानकर संथारा संलेखना करके अनशन किया। काल करके वे बारहवे देवलोक में उत्पन्न हुए। वहाँ से वे मनुष्य बनकर दीक्षा लेकर सिद्ध होगे।

भगवान् के सुपार्श्व नामक काका थे। नन्दिवर्धन नामक सगे बडे भाई थे और सुदर्शना नामक सगी बडी बहन थी। ये और अन्य सभी ज्ञाति, मित्र आदि सिद्धार्थ राजा और त्रिशला रानी के स्वर्गवासी हो जाने पर बहुत शोकाकुल हुए। तब भगवान् ने स्वयं शान्ति रक्खी और सभी को धैर्य दिलाया।

राजपद अस्वीकार

माता-पिता के स्वर्गवास के पश्चात् नन्दिवर्धन ने भगवान् से कहा—'पिता का राज-भार तुम स्वीकार करो। तुम बुद्धिमान, बलवान और सर्वगुण-सम्पन्न हो। अतः राज्य तुम्हें ही करना चाहिए।' तब राज्यादि के निस्पृही भगवान् ने उन्हें कहा—'राज नियम के अनुसार बड़ा भाई ही राज्य करता है, अतः तुम्हीं राज्य करो।' जब अन्त तक भगवान् राजा बनने के लिए तैयार नहीं हुए, तो नन्दिवर्धन को राजा बनना पडा।

दो वर्ष और गृहवास

माता-पिता के स्वर्गवास हो जाने पर भगवान् का गर्भावस्था मे कर्मो के उदय से ममतावश लिया हुआ अभिग्रह पूरा हो चुका था। तव विनयशील भगवान् ने वडे भाई से दीक्षा की अनुमति माँगी। दीक्षा की वात सुनकर नन्दिवर्धन को आँसू आ गये। उन्होने कहा—'भाई! अभी माता-पिता का स्वर्गवास हुआ ही है। हम अभी उनका वियोग भूल भी नही पाये कि 'तुम यह क्या कह रहे हो?' भगवान् ने कहा—'भाई सभी जीव सभी जीव के साथ सभी नाते अनन्त वार कर चुके है, अत इसको लेकर गृहवास में रहना उचित नहीं।' तव नन्दिवर्धन वोले—'भाई! यह सब मैं भी जानता हूँ, परन्तु मुझे तुम प्राणो से भी अधिक प्यारे हो, अतः तुम्हारा विरह का शब्द भी मुझे बहुत पीडित करता है। इसलिए अधिक नहीं, तो कम-से-कम मेरे कहने से दो वर्ष और गृहवास में ठहरो। तव भगवान् ने कहा—'तथास्तु, परन्तु मैं आज से भोजन-पान अचित ही करूँगा तथा लौकिक कार्यो मे भी मेरी कोई सम्मति आदि नहीं होगी।' नन्दिवर्धन ने इसको स्वीकार किया। भगवान् अपने कहे अनुसार उपर्युक्त अभिग्रह सहित तथा ब्रह्मचारी होकर रहे ऐसा करके भगवान ने—'वैरागी को ससार मे रहना पडे, तो कैसा रहे'—इसका आदर्श प्रकट किया।

वार्षिक दान

इस घटना को लगभग एक वर्ष हो जाने पर भगवान् ने एक वर्ष पश्चात् दीक्षा लेने का विचार कया। तव **लोकान्तिक देवो ने** उपस्थित होकर भगवान् से **धर्मतीर्थ प्रवर्तन** (चालू) करने की प्रार्थना की। भगवान् ने तभी से नित्य प्रातःकाल

एक प्रहर तक वार्षिक दान देना प्रारम्भ किया। इन्द्र की आज्ञा से जृम्भक जाति के देवों ने भगवान् के भण्डार भर दिये। नित्य एक करोड आठ लाख स्वर्णमुद्रा दान देने की गणना से भगवान् ने एक वर्ष मे तीन अरब ८८ करोड ८० लाख स्वर्णमुद्राएँ दान मे दी। इस प्रकार भगवान् दान धर्म प्रकट किया और जैनधर्म का गौरव बढ़ाया।

दीक्षा

वार्षिक दान की समाप्ति पर नन्दीवर्धन को दो वर्ष तक और गृहवास मे रहने का दिया हुआ वचन पूर्ण हो गया, तब विनयशील भगवान् ने पुनः नन्दीवर्धन से दीक्षा की अनुमति मागी। विवेकी नन्दीवर्धन ने बडे दुःख के साथ अनुमति दी। राजा नन्दिवर्धन और इन्द्रो ने मिल कर बडे समारोह के साथ भगवान् का निष्क्रमण (गृहवास से निकलने का) उत्सव मनाया। भगवान् सभी लौकिक वस्तुएँ परित्याग कर तथा सबधियो को धनादि बाँट कर ज्ञात-खण्ड उद्यान मे पधारे। वहाँ सब आभूषण त्याग कर छट्ठ (वेले) के तप मे पञ्च-मुष्ठि-लोच करके भगवान् ने **मृगशीर्ष कृष्णा १०** को पिछले प्रहर मे दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेते ही भगवान् को मन.पर्यव ज्ञान उत्पन्न हुआ। दीक्षा हो जाने पर नन्दिवर्धन व इन्द्रादि सब भगवान् को नमस्कार करके स्व-स्थान पर चले गये। इधर भगवान् वहाँ से **कूर्मग्राम** को विहार कर गये।

ग्वाले का उपसर्ग और इन्द्र सहायता अस्वीकार

वहाँ पहुँच कर गाँव के बाहर भगवान् कायोत्सर्ग करके खडे हो गये। वहाँ एक **ग्वाला** सारे दिन बैलो को हल मे चला

कर सध्या के समय आया और भगवान् के पास बैलो को छोड कर गाये दूहने चला गया। इधर बैल भी चरने के लिये दूसरी ओर चले गये। लौटने पर ग्वाले ने बैलो को नही देख कर भगवान् से पूछा - "आर्य ! बैल कहाँ है ?" भगवान् मौन रहे। तब वह—'यह (भगवान्) जानता नही होगा'—यह सोचकर वन मे बैलो को ढूँढने गया। इधर बैल चरते चरते और रात पूरी होते-होते पुन. भगवान् के पास आ गये। उधर बैलो को ढूँढते-ढूँढते जब ग्वाला भी पुन प्रात.काल भगवान् के निकट आया और बैलो को भगवान् के पास वहाँ पाया, तब उसे बहुत क्रोध आया। उसने सोचा—"इसने जानते हुए भी सारी रात मुझे व्यर्थ घुमाया।" वह रस्से का कोड़ा बना कर भगवान् को मारने दौडा। उसी समय शक्रेन्द्र अवधि-ज्ञान से यह जान कर वहाँ पहुँचे और ग्वाले को हटाया।

फिर भगवान् को निवेदन किया कि "भगवान् ! अभी आपको केवल-ज्ञान उत्पन्न होने मे १२॥ वर्ष (कुछ कम १३ वर्ष) समय लगेगा। जब-पहली ही रात्रि को आपको ऐसा उपसर्ग हुआ है, तो इतने समय मे आपको न जाने कितने उपसर्ग आयेंगे ? इसलिए मैं केवल-ज्ञान उत्पत्ति तक आपकी सेवा मे आपकी सहायता के लिये रहना चाहता हूँ। भगवान् ने कहा - "देवेन्द्र ! न कभी ऐसा हुआ, न कभी ऐसा होता है तथा न कभी ऐसा होगा कि—कोई तीर्थंकर देवेन्द्र, असुरेन्द्र या नरेन्द्र की सहायता से केवल-ज्ञान उत्पन्न करे। वे स्वय के पराक्रम से ही केवल-ज्ञान उत्पन्न करते हैं।" शक्रेन्द्र भगवान के इन वचनो को सुन कर निराश हो लौट गये। तीर्थंकर ऐसे **पराक्रमी** हुआ करते हैं।

अपने पर कोड़ा उठाने वाले पर भगवान् ने द्वेष नही किया तथा अपनी रक्षा के लिए आये हुए इन्द्र पर राग नही

किया। इस प्रकार भगवान् छद्मस्थ (केवल ज्ञान रहित) अवस्था मे भी वीतराग के समान रहे। धन्य है, ऐसे **वीतराग** प्रभु को!

प्रथम पारणा

दूसरे दिन प्रात काल **'कोल्लाक'** ग्राम मे **'बहुल'** नामक ब्राह्मण के यहाँ भगवान् का परमान्न (खीर) से पारणा हुआ। देवो ने तब पञ्च दिव्य प्रकट किये। पारणा करके भगवान् वहाँ से चले गये और ममता आदि जन्य रुकावट रहित अप्रतिबन्ध विहार करने लगे।

उपसर्ग आरंभ

दीक्षा के समय भगवान् के शरीर पर देवादिको ने चन्दनादि का लेप किया था। चार मास से अधिक समय तक उसकी गध से आकृष्ट भौंरे भगवान् के शरीर मे तेज दंश देते रहे, परन्तु भगवान् उन्हे समतापूर्वक सहन करते रहे। कुछ विलासी युवक भगवान् से गन्धपुटी मांगते और भगवान् के मौन रहने पर क्रोध मे आकर प्रतिकूल (इन्द्रिय मन शरीर को भले न लगने वाले) उपसर्ग (कष्ट) देते। कुछ स्त्रियाँ उनके दिव्य रूप को देखकर दुर्भावना प्रकट करती। कोई नग्न होकर आलिगनादि भी करती। परन्तु भगवान् उन प्रतिकूल-अनुकूल सभी उपसर्गो को सहते हुए अहिसा व ब्रह्मचर्य आदि का पालन करते रहे।

शूलपाणि का उपसर्ग तथा उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति

सबसे पहले चातुर्मास के लिए भगवान् **'अस्थिक'** ग्राम पधारे। वहाँ उन्होने स्थान के लिए **'शूलपाणि यक्ष'** के

मन्दिर की याचना की। गाँव के लोगो ने कहा—'इस मन्दिर का शूलपाणि यक्ष अपने मन्दिर मे रात्रि विश्राम करने वाले को मार डालता है, अत. आप यहाँ न ठहरे।' भगवान् जान रहे थे कि 'यह बोध पाने वाला है, अत. उन्होने कहा—अस्तु, आप इसका विचार न करे, मुझे आज्ञा दे दे।' एक पुरुष चातुर्मास-वास के लिए दूसरी वसति देने लगा, परन्तु भगवान् उसे स्वीकार न करके वही ठहरे। सध्या-पूजा के लिए आये हुए इन्द्रशर्मा पूजारी ने भी भगवान् को वहाँ न ठहरने की बहुत प्रार्थना की, परन्तु भगवान् ने उसकी प्रार्थना स्वीकार नही की।

शूलपाणि यक्ष को यह देख बहुत ही क्रोध आया—'गाँव के लोग और पूजारी के कहने पर और दूसरी वसति मिलते हुए भी यह यही ठहरा, अत इसको इसका अच्छा फल दिखाना चाहिए।' उसने सूर्यास्त होते ही भीम अट्टहास से भगवान् को भयभीत करने का प्रयत्न किया, पर वह सफल नही हुआ। तब उसने १. हाथी, २ पिशाच और ३. सर्प के रूप से उपसर्ग किये। (इन उपसर्गों के विस्तृत वर्णन के लिए कामदेव की कथा देखो।) इससे भी जब वह भगवान् को डिगा न सका, तब उसने क्रमश भगवान् के १. शिर, २. कान, ३. आँख, ४. नाक, ५ दाँत, ६ नख और ७ पोठ—इन सात अगोपांगो मे ऐसी भयकर वेदना उत्पन्न की, जिस एक-एक वेदना से सामान्य मनुष्य मर सकता था, परन्तु उन वेदनाओ मे भी भगवान् निर्भय, शान्त और दृढ रहे। तब वह यक्ष भगवान् की महत्ता जानकर उनके पैरो गिर पड़ा और उसने बार-बार क्षमा याचना की। अन्त मे वह बोध पाकर धर्मी बना और उसने सदा के लिए हिंसा छोड़ दी।

देवदूष्य का त्याग

चातुर्मास पूर्ण हो जाने पर भगवान् ग्रामानुग्राम (एक गाँव से दूसरे गाँव) विचरने लगे। जब भगवान् दीक्षित हुए, तब इन्द्र ने उनके कन्धे पर एक '**देवदूष्य**' नामक लाख स्वर्ण-मुद्रा मूल्य का वस्त्र रक्खा था। वह तीनो ऋतुओ के अनुकूल सुखदाई था। शीतकाल मे ऊष्ण, ऊष्णकाल मे शीत और वसत ऋतु मे शक्तिप्रद था, परन्तु भगवान् ने कभी उसका उपयोग नही किया। दीक्षा लिए जब एक वर्ष और एक महीना पूरा हुआ, तब वह भगवान् के कन्धे से अपने आप गिर कर काँटो मे जा पडा। भगवान् ने उसे जीवादि रहित स्थान मे गिरा देख कर वोसिरा दिया। भगवान् का वह देवदूष्य वस्त्र काँटो मे गिरा, यह इसका प्रदर्शक था कि भगवान् का भावी शासन बहुत काँटो वाला होगा। अर्थात् १. उसमे बखेडा करने वाले बहुत होगे, २. शासन विभिन्न सप्रदायो मे बँट कर चालनी-सा बन जायेगा और ३ अच्छे साधुओ को सम्मान, वस्त्र, पात्र आदि दुर्लभ होगे।

चण्डकौशिक का उपसर्ग व उसको बोध

एक समय भगवान् दक्षिणी 'वाचाल' से उत्तरी 'वाचाल' को सीधे मार्ग से जा रहे थे। मार्ग मे ग्वालो ने कहा—'आप इस सीधे मार्ग से न जाइये। इस मार्ग मे **दृष्टिविष** (जिसे भी क्रोध मे आकर देखे, उसी को विष चढ जाय—ऐसी विषभरी दृष्टिवाला) सर्प रहता है। आप उस दूसरे घुमाव वाले मार्ग से पधारें।' भगवान् जान रहे थे कि वह सर्प बोध पाने वाला है, अतः वे उसी मार्ग से गये और उसके बिल के निकट कायोत्सर्ग करके खडे हो गये।

वह सर्प पहले के भव मे एक तपस्वी मुनि था। वह क्रोधी था। एक बार वह पारणे मे वासी भोजन के लिए जा रहा था। मार्ग मे उसके पैर से एक मेढकी दब कर मर गयी। शिष्य के कहने पर उसने दूसरो के पैरो से मरी मेढकियाँ दिखाकर कहा—'क्या ये भी मैने मारी है?' अर्थात् जैसे ये दूसरों के पैरो से मर गई हैं, वैसे ही यह भी (जो स्वय के पैर मे दबकर मर गई थी) दूसरो के परो से मर गई है। शिष्य ने सोचा—अभी ये क्रोध मे आ गये हैं, इसलिए ऐसा कहते है, पर सध्या को प्रतिक्रमण मे प्रायश्चित कर लेगे। पर तपस्वी ने प्रतिक्रमण मे उसका प्रायश्चित नही किया। जब शिष्य ने उसे स्मरण कराया, तो वह पूरे क्रोध मे आ गया और मारने दौडा, परन्तु बीच मे खभा आ जाने से टकरा कर उसकी मृत्यु हो गई। वहाँ से वह ज्योतिषी जाति का देव बना। वहाँ से च्यवकर वह अस्थिक और श्वेताम्बिका के मार्ग मे रहे हुए एक आश्रम के कुलपति के घर जन्मा। उसका नाम 'कौशिक' रक्खा गया। वहाँ भी वह चड (क्रोध) स्वभाव का था। अतः उसे लोग चण्डकौशिक कहने लगे। पिता के मर जाने पर वह कुलपति बना। क्रोधी स्वभाव के कारण सभी तापस उसके आश्रम से चले गये। एक बार श्वेताम्बिका के राजपुत्र उस आश्रम की ओर आये थे। चण्डकौशिक उन्हे परशु लेकर मारने दौडा, परन्तु मार्ग मे खड्डा आया। उसमे वह परशु के अभिमुख गिर पडा। परशु से उसके सिर के दो भाग हो गये। उससे वह मरकर वही सर्प के रूप मे जन्मा था।

भगवान् को देखकर उस सर्प को बहुत क्रोध आया। उसने क्रोधयुक्त दृष्टि से भगवान् को तीन बार देखा, पर भगवान् जले नही। तब उसने भगवान् के अगूठे मे तीन बार दश

दिया, पर भगवान्-को विष चढा नही, परन्तु दूध-सा सफेद लोही निकला। यह देखकर वह आश्चर्य और ईर्ष्या के साथ भगवान् को देखने लगा। भगवान् की सौम्य देह-काति से उसकी आँखों का विष बुझ गया। भगवान् ने उसे उपदेश दिया— "चडकौशिक! क्रोध का उपशम कर।" यह सुन कर व विचार करते-करते उसे पूर्व भव का स्मरण हुआ और 'तीर्थंकरो का लोही सफेद होता है'—इस लक्षण को स्मरण कर वह भगवान् को पहचान गया। उसने भगवान् को भाव-वदना कर क्षमा मागी। उसे अपनी क्रोध-वृत्ति पर बहुत पश्चात्ताप हुआ। 'स्वय से हुई मेढकी की विराधना को स्वीकार न कर शिष्य पर क्रोध करने से मैं जैनमत से गिरकर अन्य मत मे पहुँचा और वहाँ भी क्रोध करने से मैं मनुष्य गति से गिरकर अब तियञ्चगति मे पहुँचा। धिक्कार है मुझे! धन्य है, तरण-तारण भगवान् को, जिन्होने मेरे उद्धार के लिए स्वय उपसर्ग सहा।'

उसने अपने पापो को नष्ट कर डालने के लिए सलेखना करके अनशन किया। 'मेरी दृष्टि मे पहले विष था, वह अब यद्यपि नष्ट हो गया है, पर लोगो को इसकी जानकारी न होने से वे अब भी मुझ से भयभीत होगे—यह सोचकर उसने अपना मुँह बाबी मे डाल दिया।' ऐसी दशा देख ग्वालो के बच्चे कुतूहलवश उसे दूर से कंकरादि फेक कर मारने लगे। फिर भी वह निश्चल तथा क्षमाशील रहा। यह बात उन बच्चों ने बडो को जाकर कही। तब बड़े लोगो ने उसकी ऐसी सुन्दर दशा देखकर घी, मिठाई, फल, फूल आदि से उसकी पूजा की। उन वस्तुओं की गध से उसके शरीर पर चढकर कई कीडियाँ उसे काटने लगी। तब भी वह निश्चल तथा क्षमाशील रहा। अन्त मे पन्द्रह दिनो मे काल करके वह ८ वें देवलोक में देवरूप से उत्पन्न हुआ।

भगवान् की वाणी से उसका उद्धार हो गया। क्रोध छोडकर क्षमा अपनाने से वह पशुगति से देवगति मे पहुँच गया। इस प्रकार भगवान् पशुओ के भी उद्धारक थे।

सामुद्रिक पुष्य की आशापूर्ति

एक बार बालू में चलते हुए भगवान 'स्थूरणा' सन्निवेश (उपनगर) के बाहर पधारे और उन्होने वहाँ कायोत्सर्ग किया। उनके बालू मे बने हुए अत्यन्त सुलक्षरणयुक्त पैर के चिह्नों को देख कर 'पुष्य' नामक सामुद्रिक (अग-रेखा का जानकार) उन पर-चिह्नो के सहारे-सहारे भगवान् के पास पहुँचा। उसे विश्वास था कि 'ऐसे पैर वाला चक्रवर्ती होता है।' वह अकेला कुमार-अवस्था में इधर से गया है। उसकी सेवा मे पहुँचने से मुझे धन-राज्यादि की प्राप्ति होगी। परन्तु उसे भगवान् को पूर्ण नग्न देखकर पूरी निराशा हुई और उसका सामुद्रिक विद्या पर विश्वास उठ गया। तब शक्रेन्द्र ने आकर उसे मनोवांछित धन दिया, सामुद्रिक विद्या पर विश्वास जमाया और 'भगवान् चक्रवर्ती से भी बढकर त्रिलोकीनाथ हैं'—इसका परिचय दिया।

गोशालक की प्रार्थना अस्वीकार

वहाँ से विहार करके भगवान् दूसरे चातुर्मास के लिए राजगृह पधारे और वहाँ 'नालन्दा' नामक सन्निवेश की तन्तुवाय (बुनकर) की शाला मे आज्ञा लेकर ठहरे। वहाँ पर मंखली पिता और भद्रा माता का पुत्र 'गोशालक' भी मख (चित्रपट) से आजीविका करता हुआ चातुर्मास के लिए आया और ठहरा।

उस चातुर्मास मे भगवान् ने मास मास क्षमरण (तप) किया। प्रथम मासक्षमरण के पारणे के लिए भगवान् विजय

गाथापति (गृहस्थ) के घर पधारे। विजय ने भगवान् को विधि आदि सहित दान दिया। (दान विधि आदि के विस्तृत वर्णन के लिए सुबाहुकुमार की कथा देखो।) दान से पाँच दिव्य प्रकट हुए। गोशालक ने इस समाचार को सुनकर तथा रत्न-वृष्टि आदि देखकर भगवान् को पहचाना और भगवान् से शिष्य बनाने की प्रार्थना की। पर भगवान् उसकी प्रार्थना को स्वीकार न करते हुए मौन रहे।

गोशालक की प्रार्थना स्वीकृत

चातुर्मास समाप्त होने पर कार्तिकी पूर्णिमा के पश्चात् की प्रतिपदा (एकम) को भगवान् वहाँ से विहार कर 'कोल्लाक' सन्निवेश मे पहुँचे और उन्होने बहुल ब्राह्मण के यहाँ पारणा किया। भगवान् को पुनः तन्तुवायशाला मे न लौटे देखकर गोशालक ने अपने चित्र और वेषादि उपकरण किसी अन्य ब्राह्मण को दे दिये और मुण्डित होकर भगवान् को ढूँढता हुआ वह कोल्लाक सन्निवेश मे पहुँचा। वहाँ पच दिव्य आदि देख उसने निश्चय किया—'ये दिव्य आदि मेरे धर्माचार्य भगवान् महावीर को ही प्राप्त हैं, अन्य किसी को भी नहीं। अतः भगवान् यही है।' इसके पश्चात् उसने भगवान् को कोल्लाक सन्निवेश के बाहर ही पा लिया। वहाँ भी उसने भगवान् से प्रार्थना की कि 'भगवन्! आप मेरे धर्माचार्य है और मैं आपका अंतेवासी (शिष्य) हूँ।' भगवान् ने उसे जब अन्य मत के वेषादि से रहित देखा, तब उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। उसके पश्चात् वह गोशालक भगवान् के साथ छह वर्ष तक रहा।

गोशालक का स्वभाव व गमनागमन

वह गोशालक बहुत उच्छृङ्खल (मर्यादा तोड़ने वाला) और उद्दण्ड (मर्यादाहीनता को सिद्ध करने वाला) था। कभी वह

बच्चो को भयभीत करता, कभी किसी की हँसी उडाता, कभी किसी की निन्दा करता, कभी किसी से 'अरे-तुरे' करता और कभी स्त्रियो से छेड़छाड भी करता था। अत. कई स्थानो पर वह राजकुमारो, कोटवालो तथा गाँव वालो के द्वारा पीटा जाता था। परन्तु अन्त मे भगवान् का सेवक आदि समझकर लोग उसे छोड देते थे।

एक वार उसने भगवान् से कहा : 'मैं तो पीटा जाता हूँ और आप कायोत्सर्ग मे ही खडे रहते हैं, अतः मैं आपके साथ नहीं रहूँगा।' यह कह कर वह चला गया। छह महीने तक वह स्वच्छन्द घूमता रहा। पर उसकी उच्छृङ्खल और उद्दण्ड वृत्ति से वह सर्वत्र पीटा जाता था। वहाँ उसे भगवान् के नाम पर भी कोई छुडाने वाला नही मिलता था। इससे वह हताश होकर पुन. भगवान् की सेवा मे आ गया।

तिल-पौधे संबंधी भविष्यवाणी सफल

एक वार की वात है। शरद् ऋतु मे भगवान् गोशालक के साथ सिद्धार्थ- गाँव से कूर्म गाँव जा रहे थे। मार्ग मे एक पत्र-फूल आदि सहित हरा-भरा सुन्दर **तिल का पौधा** देखकर गोशालक ने वन्दन-नमस्कार कर भगवान् से पूछा : '१. इस पौधे मे तिल लगेंगे या नही तथा २. इस पौधे के सात फूल के जीव मरकर कहाँ जाकर उत्पन्न होगे ?' भगवान् ने उत्तर दिया : '१ इस पौधे मे तिल होगे और २ ये सात फूल के जीव मरकर इस पौधे की एक फली मे सात तिल के रूप में उत्पन्न होगे।'

तव वह कुशिष्य भगवान् के इन वचनों पर श्रद्धा न करते हुए भगवान् को मिच्छावादी (झूठा) ठहराने के लिए वहाँ

से खिसका, तिल-पौधे के पास पहुँचा और उसने उसे मिट्टी के ढेले सहित समूल उखाड कर एकान्त मे फेक दिया। फिर वह भगवान् से जा मिला।

तत्क्षरण ही आकाश मे बादल घुमड़ आये। बिजली व कडाके के साथ वर्षा हुई। पानी और कीचड को पाकर वह पौधा पुन. प्रतिष्ठित हो गया (जम गया)। कालान्तर से उस पौधे के सात तिल-फूल के जीव मर कर उसी की एक फली मे सात तिल के रूप मे उत्पन्न हो गये।

गोशालक की रक्षा

इधर भगवान् गोशालक के साथ **'कूर्म गाँव'** के बाहर पहुँचे। वहाँ निरन्तर बेले-बेले (दो-दो उपवास) करने वाला **'वैश्यायन'** नामक बाल-तपस्वी सूर्य के सामने खडे होकर, आँखे खोलकर तथा भुजाओ को ऊँची उठाकर आतापना ले रहा था। गर्मी से घबराकर उसके मस्तक की जटा से बहुत-सी जूँएँ नीचे गिर जाती थी। वह उनकी रक्षा के लिए उन्हे उठाकर फिर से अपने मस्तक मे रख देता था।

चचल गोशालक उसे इस प्रकार देखकर भगवान् के पास से खिसका और उससे जाकर बोला 'अरे, तू मुनि है या राक्षस है या जूँओ का शय्यातर (घर) है ?' गोशालक के द्वारा एक, दो और तीसरी बार भी ऐसा कहे जाने पर वैश्यायन क्रुद्ध हो गया। उसने गोशालक पर उष्ण तेजोलेश्या फेकी। (भस्म कर देने वाले तैजस शरीर से निकलने वाले जड-पुद्गल फेके।) तब अनुकम्पाशील भगवान् ने गोशालक को बचा लेने के लिए अनुकम्पा करके शीतल तेजोलेश्या द्वारा उस उष्ण तेजोलेश्या को नष्ट कर दी।

वैश्यायन ने अपनी लेश्या को नष्ट और गोशालक को सुरक्षित देख कर भगवान् से कहा . 'भगवन् ! मैंने जाना, जाना, जाना ।' उसके इस कथन का भाव यह था कि 'आप मुझसे महान् है तथा आपके प्रभाव से यह गोशालक नही जला है —यह मैंने जाना ।'

गोशालक ने यह सुनकर भगवान् से पूछा · 'यह—जाना, जाना, जाना - क्या कहता है ?' तब भगवान् ने गोशालक को उसके द्वारा वैश्यायन को देखना, खिसकना, हँसी उडाना और वैश्यायन द्वारा उस पर लेश्या फेंकना, उसकी स्वय रक्षा करना आदि सब बाते बताते हुए 'जाना, जाना, जाना' का अर्थ बताया । तब गोशालक ने भगवान् से तेजोलेश्या-प्राप्ति की विधि पूछो । भगवान् ने भावीवश उसे विधि बताई ।

गोशालक का पृथक् होना

उसके पश्चात् की बात है । पुन भगवान् कूर्म गाँव से सिद्धार्थ गाँव पधार रहे थे । गोशालक साथ मे था । उसने भगवान् की हँसी उडाने के लिए कहा 'भगवन् ! आप जो पौधा फलने आदि की बाते कर रहे थे, वे अब प्रत्यक्ष झूठी दिखाई दे रही हैं ।' तब भगवान् ने उसे 'उसकी झूठा ठहराने की भावना और अपने वचन कैसे सत्य हुए' आदि सारी बाते कह सुनाईं । फिर भी उसे विश्वास नही हुआ । तब उस धृष्ट ने भगवान् के ही सामने जाकर उस तिल के पौधे को देखा और उसकी फली तोड़ कर तिल गिने । भगवान् की बात सच्ची निकलने पर भी, भगवान् पर श्रद्धा करना दूर रहा, वह भगवान् से भिन्न हो गया ।

गोशालक के वाद और पन्थ

उसने इस घटना से १. **नियतिवाद** (जो होना है, वह होता ही है और अपने आप ही होता है। वह न तो पुरुषार्थ से होता है, न वह पुरुषार्थ से रुकता है।) तथा २. **परिवर्त-परिहारवाद** (बिना मरे जीव का अन्य शरीर मे परिवर्तित होना और पूर्व शरीर का परित्याग करना)—ये दो सिद्धान्त बनाये।

इसके पश्चात् उसने भगवान् से जानी विधि करके छह महीने मे तेजोलेश्या प्राप्त की तथा उसे एक दासी पर प्रयोग करके उसके मर जाने पर उसकी प्राप्ति पर विश्वास किया। उसके पश्चात् उसे **भगवान् पार्श्वनाथ के छह पार्श्वस्थ** (ज्ञान-क्रिया को एक ओर रख कर चलने वाले) मिले। उनसे उसने भूत मे हुए व भविष्य मे होने वाले १. लाभ, २ अलाभ, ३ सुख, ४ दुःख, ५ जीवन और ६. मरण इन छह बातो को जान लेने की विद्या सीख ली।

इस प्रकार वह तेजोलेश्या और निमित्त-विद्या को जान कर अपने आपको झूठ-मूठ सर्वज्ञ व तीर्थंकर कह कर विचरने लगा।

अनार्य देश के उपसर्ग

छद्मस्थकाल के पाँचवे वर्ष मे और नववे वर्ष मे इस प्रकार दो बार भगवान् **अनार्य देश में** अपने कठिन एवं बहुत कर्मों की निर्जरा के लिए पधारे थे। वहाँ के लोग स्वभाव से क्रूर थे। वे भगवान् को गाँव मे घुसने नही देते थे, रोटी-पानी नही देते थे, उन्हे मुण्डा मुण्डा आदि अपशब्द कहते थे, उनके पीछे कुत्ते भी छोड देते थे। कही ध्यान लगाये देखते, तो ठोकर

मार कर लुढका देते थे। कोई रात्रि मे उन्हे कायोत्सर्ग मे खडे देखकर पूछते कि 'तू कौन है ?' जब इस प्रश्न का भगवान् से उत्तर नही मिलता, तो वे उन्हे कोडे आदि से मारते और बाँध भी देते थे। कोई उन्हे गुप्तचर समझ कर कष्ट देते। परन्तु भगवान् वहाँ शीत, ताप, भूख, प्यास, अपशब्द, वध आदि सभी प्रकार के उपसर्ग समतापूर्वक सहते रहे।

संगम द्वारा इन्द्र-प्रशंसा का विरोध

छद्मस्थकाल के ग्यारहवे वर्ष की बात है। भगवान् **'पेढाला'** नगरी के **'पोलास चैत्य'** मे तेले की रात्रि को एक ही अचित्त पुद्गल पर दृष्टि जमा कर खडे हुए थे। उस समय शक्रेन्द्र ने देवसभा मे भगवान् की उपसर्ग-दृढता की प्रशसा करते हुए कहा कि 'भगवान् को देव-दानव कोई भी नही डिगा सकता। तब शक्रेन्द्र का सामानिक (समान ऋद्धि वाला) **'संगम'** नामक अभव्य (कभी भी मोक्ष मे न जाने वाला) देव बोला 'भगवान् के प्रति राग (ममता) के कारण ही देवेन्द्र इस प्रकार वर्धमान की मिथ्या प्रशसा कर रहे है, अन्यथा कौन ऐसा मनुष्य है, जो देव से विचलित न हो ? मैं अभी वर्धमान को विचलित करके बताता हूँ।'

'मैं यदि इसे रोकूँगा तो, 'भगवान् के रागी भगवान् की मिथ्या प्रशसा करते हैं'—यह भाव अधिक दृढ हो जायगा'—यह सोचकर हृदय को बहुत दुःख पहुँचने पर भी, भगवान् को उपसर्ग देने के लिए जाते हुए सगम को इन्द्र रोक न सके।

संगम द्वारा एक रात्रि में बीस उपसर्ग

भगवान् के पास पहुँच कर सगम ने पहला १ धूलि-वर्षा का उपसर्ग दिया, जिससे भगवान् का शरीर, कान, आँख, नाक

आदि भर गये, परन्तु भगवान् विचलित नही हुए। तब उसने भगवान् को विचलित करने के लिए दूसरा, दूसरे से भी विचलित न होने पर तीसरा, तीसरे से भी विचलित न होने पर चौथा— यो क्रमशः एक ही रात्रि में आगे लिखे जाने वाले २० उपसर्ग दिये। १. धूल-वर्षा की। २ कीडिये बन कर भगवान् के शरीर को चालनी-सा छिदवाया। ३ डाँस और ४ कीडे बनकर काटा। ५ विच्छू और ६ सर्प बन कर दश दिये। ७. नौले और ८ चूहे बनकर काटा। ९ हाथी और १० हथिनी बनकर उछाला, रोदा। ११ पिशाच होकर खड्ग से खण्ड-खण्ड किये। १२ व्याघ्र बनकर फाडा। १३ सिद्धार्थ और १४ त्रिशला बनकर करुण क्रन्दन किया। १५. पैरों पर खीर पकाई। १६ पक्षी बनकर माँस नोचा। १७ खरवात से भगवान् को उठा-उठाकर पटका। १८. कलकलीवात से चक्रवत् घुमाया। १९. कालचक्र बनाकर आकाश में ले जाकर पटका। २० 'तुम मेरे उपसर्गों से नही डिगे, इसलिए वर माँगो। मैं तुम्हे स्वर्ग या मोक्ष भी दे सकता हूँ।' बीसवे उपसर्ग मे इस प्रकार कहा। परन्तु भगवान् इन बीस उपसर्गो में से एक उपसर्ग से भी विचलित नही हुए।

जब ये बीस उपसर्ग करके भी सगम भगवान् को डिगा नहीं सका तो उसे बहुत क्रोध आया।

सगम के छह मासिक उपसर्ग

रात्रि पूर्ण होने पर भगवान् वहाँ से विहार कर गये। परन्तु वह पीछे ही पडा रहा। कही चोर बनकर उन्हे उपसर्ग देता। कभी गोचरी गये हुए भगवान् के शरीर को ढक कर स्त्रियो के सामने अपने ऐसे रूप बनाता, जिससे स्त्रियो को ऐसा

लगता 'कि यह नगा हमसे कानी आँख करता है (आँखें लडाता है), यह हाथ आदि जोड कर हमसे काम-भोग की प्रार्थना करता है, यह पिशाच की भाँति उन्मत्त है। यह हमें कष्ट देता है, यह हमारे समक्ष विकृत रूप मे खडा है।' इस प्रकार दिखाई देने पर कुछ तरुण स्त्रियाँ स्वय भगवान् को पीटती, कुछ स्त्रियाँ अपने पति आदि को कह कर पिटवाती। सगम के ऐसे दुष्कृत्य देखकर भगवान् उपसर्ग से तो विचलित नही हुए पर 'इससे जैन धर्म का महान् अपमान होता है, उसके प्रति लोग अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते हैं'—यह सोच कर उन्होने गाँव आदि मे भिक्षार्थ जाना ही वन्द कर दिया।

फिर भी उस दुरात्मा ने भगवान् को उपसर्ग देना नहीं छोडा। भगवान् गाँव के बाहर कायोत्सर्ग करके खडे रहते। पर वह उनका बालक शिष्य वन कर गाँव मे जाता। वहाँ कही सेंध लगाता। कभी सेंध लगाने आदि का स्थल ढूँढता। तब लोग उसे पकड कर मार-पीट करते। वह कहता: 'मैं स्वय कुछ नही करता, मुझे तो गाँव के बाहर खडे मेरे गुरु जो कहते हैं, वही करता हूँ।' तब लोग गाँव के बाहर आकर भगवान् को मार-पीट करते। परन्तु भगवान् तब भी उसे सहते रहे।

भगवान् की सहिष्णुता व अनुकम्पा

अपराधी न होते हुए भी दूसरों के समक्ष अपराधी बताना, वह भी असदाचारी के रूप मे—उसे सहन करना कितना कठिन होता है? पर भगवान् ने उसे भी सहा। अपराध मे प्रेरक न होते हुए भी भगवान् को प्रेरक बनाया, तब भी भगवान् शात रहे। धन्य है, ऐसे परीषह सहिष्णु प्रभु को! सगम ने भगवान् को इस प्रकार छह मास तक कष्ट दिये। छह मास

समाप्त होने पर भगवान् छह-मासी तप के पारणे मे गोकुल मे गये। पर वहाँ भी उस महा पापी ने घर अशुद्ध (असूझता) कर दिया। पर भगवान् तब भी अविचल रहे। अन्त में वह हारा। प्रभु का धैर्य जीता। पैरो मे पड कर उसने भगवान् ने बार-बार क्षमा-याचना की। उसने कहा: 'भगवन्! शक्र ने जो आपकी प्रशसा की, वह मिथ्या प्रशसा नही थी, पर यथार्थ प्रशसा थी। मेरी प्रतिज्ञा विफल गई और आपका धैर्य विजयी रहा। मैं हारा और आप जीते। अब आप पारणे के लिए पधारिये।' भगवान् ने उत्तर दिया 'सगम! मै पारणे के लिए जाऊँ, चाहे न भी जाऊँ, परन्तु तुमने जो मुझे उपसर्ग दिये, उस सम्बन्ध मे किसी से कुछ न कहना, अन्यथा मेरे रागी तुम्हें बहुत दु ख देगे।' अहा! धन्य है, भगवान् की भगवत्ता। कष्ट देने वाले के प्रति भी कितनी अनुकम्पा!

परन्तु कष्ट देने वाले का मुँह छुपा नही रहता। जब सगम भगवान् को कष्ट देकर देवलोक मे पहुँचा, तो शक्रेन्द्र ने मुँह फेर लिया और उसे देवलोक-निकाला दे दिया। उसके साथ केवल उसकी देवियाँ ही जाने दी। शेष सारा परिवार वह अपने साथ नही ले जा सका।

जीर्ण सेठ की आदर्श दान-भावना

भगवान् ग्यारहवे चातुर्मास के लिए चौमासी तपपूर्वक **'विशाला'** नगरी के **'बलदेव'** के मन्दिर मे बिराजे। वहाँ श्रावक **'जिनदास सेठ'** रहते थे। कुछ वैभव कम हो जाने से लोग उन्हे **'जीर्ण सेठ'** कहते थे। वे भगवान् की सेवा करते हुए नित्य भिक्षा के समय अपने घर पर भगवान् की प्रतीक्षा करते कि 'भगवान् पारणे के लिए मेरे घर पधारे, तो

मैं कृतार्थ हो जाऊँ।' परन्तु चार मास हुए, उनकी आशा नही फली। चातुर्मास समाप्ति के दिन जीर्ण सेठ ने स्वय भी इस आशा मे पारणा नही किया कि 'भगवान् आज तो पारणा करेंगे ही। क्या ही अच्छा हो, यदि भगवान् मेरे हाथ से कुछ ग्रहण करे और फिर मैं खाऊँ।' वे इस मनोरथ मे अपने द्वार पर ही खडे रहे, परन्तु भिक्षा के समय भगवान् ने वहाँ के एक दूसरे पूर्ण नामक सेठ के यहाँ पधार कर पारणा कर लिया। उस समय वजी हुई देव-दुन्दुभि सुन कर जीर्ण सेठ अपने आपको मन्द-भाग्य समझ कर वहुत पश्चात्ताप करने लगे। भगवान् को दान देने के लिए जीर्ण सेठ के परिणाम इतने उत्कृष्ट (बढकर) थे कि 'यदि जीर्ण सेठ को दुन्दुभिनाद एक घडी भर और न सुनाई देता और उनके उत्कृष्ट परिणामो का वह प्रवाह वर्धमान (वढता) रहता, तो उन्हे उस समय केवल-ज्ञान प्राप्त हो जाता।'

कठिन अभिग्रह का चन्दनबाला द्वारा पारणा

पूरण सेठ के यहाँ पारणा करके भगवान् वैशाली से विचरते हुए **'कौशाम्बी'** पधारे। वहाँ भगवान् ने कठिन अभिग्रह किया। वह **'चन्दनबाला'** के हाथो से फला। (इसके विस्तृत वर्णन के लिए ३. चन्दनवाला की कथा देखो।)

ग्वाले का उपसर्ग

कौशाम्वी से विचरते हुए भगवान् **'षण्मानि'** नामक गाँव के वाहर पधार कर कायोत्सर्गपूर्वक खडे रहे। वहाँ एक **ग्वाला** भगवान् के पास बैलो को छोड कर गाये दुहने के लिए गया। इधर बैल भी चरने के लिए वहाँ से चले गये। ग्वाले ने लौटने पर बैलो को न देख कर भगवान् से उनके विपय मे

पूछा। भगवान् के मौन रहने से क्रुद्ध होकर उसने भगवान् के दोनो कानो मे **दो कट-शलाकाएँ** (चटाई की शलियाँ) डाल दी और किसी को वे न दिखे—इस प्रकार उन्हे बाहरी भाग से काट कर सम कर दी। परन्तु भगवान् ने उस समय नि श्वास तक न छोडा। पूर्व भव मे इस ग्वाला के जीव के कान मे भगवान् ने उकलता शीशा डलवाया था, जिसके कारण भगवान् को यह उपसर्ग मिला।

सिद्धार्थ व खरक द्वारा वैय्यावृत्य

वहाँ से विहार कर भगवान् '**अपापापुरी**' मे '**सिद्धार्थ**' वणिक् के यहाँ भिक्षार्थ पधारे। वहाँ पर बैठे **खरक** नामक वैद्य ने भगवान् के कानो मे रही हुई कट-शलाकाओ को देखकर सिद्धार्थ को बतलाई। सिद्धार्थ ने खरक को उन्हे निकाल देने के लिये कहा। फिर सिद्धार्थ और खरक वैद्य ने भगवान् को कट-शलाकाएँ निकालवाने की प्रार्थना की, परन्तु भगवान् ने स्वीकार नही की। भगवान् पारणा करके गाँव के बाहर जाकर कायोत्सर्ग करके खडे हो गये। तब सिद्धार्थ और खरक ने वहाँ जाकर ध्यानस्थ खडे भगवान् को सुलाकर उनके कानो से उन्हे निकाल दी और सरोहणी औषध लगाकर भगवान् के कानो के घाव पूर दिये।

वह ग्वाला मर कर सातवी नरक गया और सिद्धार्थ और वैद्य देवलोक गये।

महावीर नाम का हेतु

जो भी तीर्थंकर होते हैं, प्राय वे तप द्वारा ही चार घाति कर्म क्षय करते हैं। उन्हे छद्मस्थ अवस्था मे प्राय. उपसर्ग नही

आते। पर भगवान् को छद्मस्थ अवस्था मे कई उपसर्ग आये, जिनमे संगम जैसे महा कठिनतम उपसर्ग भी थे। पर भगवान् ने उन आये हुए सभी उपसर्गो को निर्भय होकर शान्ति के साथ धैर्यतापूर्वक सहे। (मेरु पर्वत का कम्पन किया, बाल-अवस्था मे भी देव द्वारा की गई परीक्षा मे भयभीत नही हुए।) इस कारण से भगवान् का नाम देवताओ ने **'महावीर'** रखा। भगवान् का यही नाम आगे चलकर अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ।

केवलज्ञान की प्राप्ति

वहाँ से विचरते हुए भगवान् **'जृम्भक'** गॉव के बाहर **'ऋजुबालिका'** तट के ऊपर रहे श्यामाक गाथापति के खेत मे पधारे और वहाँ साल-वृक्ष के नीचे गोदोह जैसे कठिन आसन को लगाकर बेले के तप मे आतापना ले रहे थे। उस समय, जब कि भगवान् को सर्वथा प्रमादरहित तप करते और उपसर्ग सहते १२ वर्ष, छ महीने और एक पक्ष (१५ दिन) हो गए, तब **वैशाख शुक्ला दशमी** के दिन पिछले प्रहर को भगवान् को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। उस समय कुछ समय तक के लिए सर्वत्र प्रकाश हुआ और सभी नारकीय आदि दु खी जीवो को शान्ति मिली।

प्रथम देशना विफल

केवल ज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् सभी इन्द्र अपने परिवार और देवों सहित भगवान् को वन्दन करने और वाणी सुनने के लिए आये। समवसरण के कुतूहल से आकृष्ट कई मनुष्य और विशिष्ट तिर्यंच भी वहाँ एकत्रित हुए। भगवान् ने अतिशयपूर्ण उपदेश सुनाया, परन्तु किसी ने श्रावक या साधु-धर्म स्वीकार नही किया।

तीर्थंकरो की पहली वाणी मे कोई न कोई व्रत-धर्म अवश्य स्वीकारते है, परन्तु भगवान् की वह पहली वाणी सफल न हुई। यह इसकी प्रदर्शक हुई कि 'भगवान् के शासन मे उपदेशको का उपदेश सफल कम होगा।' ऐसी घटना कभी अनन्त काल से घटती है।

श्री इन्द्रभूति व चन्दनबालाजी की दीक्षा

जृम्भक गाँव से विहार करके भगवान् **'आपापानगरी'** पधारे। वहाँ **'श्री इन्द्रभूति'** आदि ग्यारह गणधर दीक्षित हुए। (विस्तृत वर्णन के लिए २ श्री इन्द्रभूति की कथा देखो।) महासती **'श्री चन्दनबालाजी'** भी वही दीक्षित हुई और अनेको श्रावक-श्राविकाएँ भी वहाँ बनी। उसके बाद भगवान् वहाँ के जनपद (देश) मे विहार करने लगे।

श्री ऋषभदत्त व देवानन्दा को दीक्षादि

भगवान् विचरते हुए एक बार 'ब्राह्मणकुण्ड' ग्राम मे पधारे। वहाँ ऋषभदत्त ब्राह्मण और देवानन्दा ब्राह्मणी भी भगवान् के दर्शनार्थ आई।

'मेरे स्वप्न त्रिशला के यहाँ गये'—इससे देवानन्दा को यह अनुमान था कि 'भगवान् पहले मेरी कुक्षि मे ८२॥ रात्रि बिराजे थे।' अत उसे भगवान् के दर्शन पाकर रोमाच हो आया। स्नेह (तेल) से तलने पर जैसे पदार्थ तत्काल फूल जाते हैं, वैसे ही पुत्र स्नेह से देवानन्दा का शरीर फूल गया। स्नेह (पानी) के बढने पर जैसे कमल तत्काल ऊपर उठ जाता है, वैसे ही पुत्र-स्नेह मे देवानन्दा के स्तन ऊपर उठ गये, उनमे दूध भर आया।

यह देखकर गौतम स्वामी ने इसका कारण पूछा। तब भगवान् ने देवानन्दा को अपनी माता बतलाते हुए पिछला सारा इतिहास प्रकट किया।

भगवान् का उपदेश सुन कर ऋषभदत्त और देवानन्दा दोनो दीक्षित हुए और सयम पालन कर कर्म-क्षय करके सिद्ध हुए।

जमाई जमाली की दीक्षा व फिर अश्रद्धा

जव देवानदा व ऋषभदत्त दीक्षित हुए, उसी समय की वात है। 'क्षत्रियकुण्ड' ग्राम मे रहने वाले भगवान् की सासारिक पुत्री प्रियदर्शना के पति, सासारिक जमाई जमाली ने भी भगवान् महावीर स्वामी के उपदेश को सुनकर अत्यन्त वैराग्य के साथ प्रव्रज्या (दीक्षा) ली थी। उनके साथ ५०० अन्य कुमार भी दीक्षित हुए थे।

पढ-लिख कर विद्वान हो जाने के पश्चात् भगवान् की आज्ञा न होते हुए भी वे अपने साथ दीक्षित हुए सन्तो को साथ मे लेकर स्वतन्त्र विचरण करने लगे। एक वार उन्हे वीमारी हुई। उस समय उनकी **श्रद्धा पलट गई**। वे भगवान् के प्रतिकूल रहने और कहने लगे।

जमाली ने जीवन मे दृढतापूर्वक श्रेष्ठ क्रिया की, परन्तु विपरीत श्रद्धा और भगवान के प्रतिकूल रहने-कहने से वे **किल्विषी** (पापी) देव बने। जव तक उन्होने भगवान् की वाणी पर श्रद्धा रखते हुए भगवान् के अनुकूल रह कर धर्म-क्रिया की, तव तक उन्हे अच्छा फल प्राप्त हुआ। यदि वे जीवन भर वैसे ही रहते, तो उसी भव मे मोक्ष प्राप्त कर लेते। पर वैसे न रहने के कारण अव वे चार गति के चार-पॉच भव करके मोक्ष प्राप्त करेगे।

गोशालक को क्रोध

वहाँ से विचरते हुए भगवान् श्रावस्ती नगरी पधारे। छद्मस्थ अवस्था मे भगवान् के पास से निकला हुआ गोशालक भी तेजोलेश्या और अष्टाग महानिमित्त (भूत-भविष्य को प्रकट करने वाली विद्या) के बल पर अपने आपको सर्वज्ञ व तीर्थंकर बताता हुआ 'श्रावस्ती' नगरी मे आया।

गोचरी के लिए श्रावस्ती मे पधारे हुए गोतम स्वामी ने जब गोशालक का सर्वज्ञवाद तथा तीर्थंकरवाद सुना, तो उन्होने गोचरी से लौटने पर भगवान् से गोशालक का पिछला **सम्पूर्ण वृत्तान्त** पूछा। भगवान् के द्वारा बताये जाने पर वह वृत्तान्त एक कान से दूसरे कान होता हुआ सारे नगर में पहुँच गया। इस समाचार को पाकर क्रुद्ध हुए गोशालक ने गोचरी के लिए गाँव मे आये हुए 'आनन्द' नामक भगवान् के शिष्य से कहा "तेरे धर्माचार्य से जाकर कह दे कि यदि वह मेरी निन्दा करेगा, तो मैं उसे जलाकर भस्म कर दूँगा।"

आनन्दमुनि ने लौटकर भगवान् को गोशालक की कही बात सुनाई और पूछा—"क्या भगवन्! वह ऐसा कर सकता है?" भगवान् ने कहा—'नही, वह तीर्थंकरो को जला नहीं सकता, कष्ट अवश्य दे सकता है।' उसके पश्चात् भगवान् ने सभी साधुओं को आज्ञा दी कि 'अभी गोशालक साधुओ के प्रति शत्रु-भाव अपनाए हुए है, अत उसके विषय मे कोई कुछ कहा-सुनी या चर्चा नही करे।

गोशालक द्वारा मिथ्यावाद व मुनि-हत्या

इतने में गोशालक अपने सघ के साथ भगवान् के पास आया और अपने को छुपाते हुए कहने लगा—"काश्यप!

(काश्यप गोत्र वाले ! भगवान् काश्यप गोत्र वाले थे।) तेरा शिष्य गोशालक तो मर चुका है और मैं दूसरा जीव हूँ, परन्तु गोशालक के शरीर को दृढ समझकर, मैं उसमे प्रवेश करके रह रहा हूँ।'

भगवान् ने कहा—'गोशालक ! तू इन झूठी बातों से अपने आपको जीते जी दूसरा बताना चाहता है, परन्तु तू छुप नही सकता।' यह सुन वह अत्यन्त क्रोध में आकर असभ्य वचन कहने लगा। तब 'सर्वानुभूति' नामक मुनि ने उससे कहा : 'गोशालक ! गुरु से एक भी आर्य-वचन (शिक्षा) पानेवाला गुरु को वन्दना-नमस्कार करता है, पर्युपासना करता है। जब कि तुझ पर भगवान् का अपार उपकार है, तू भगवान् के विपरीत शत्रु बन गया है ?' इन वचनो से गोशालक ने शिक्षा न लेते हुए तेजोलेश्या का प्रयोग करके उन मुनि को ही जला डाला। और फिर से भगवान् के प्रति असभ्य वचन बोलने लगा। तब दूसरे 'सुनक्षत्र' नामक मुनि ने उसे समझाया, परन्तु उन्हें भी उसने जला डाला और भगवान् के प्रति फिर से असभ्य वचन बोलने लगा।

भगवान् पर तेजोलेश्या का प्रयोग

तब भगवान् ने पुनः उसे शिक्षा के रूप मे कुछ कहा। तब उसने इस बार पूरी शक्ति के साथ भगवान् पर ही तेजोलेश्या डाली। भगवान् तो जले नहीं, पर वह लेश्या भगवान् की प्रदक्षिणा करके लौटकर गोशालक के ही शरीर मे प्रवेश कर गोशालक को जलाने लगी।

ऐसा होने पर भी गोशालक ने न सुधरते हुए भगवान् से कहा—'तू मेरे तप, तेज द्वारा छह महीने के भीतर ही छद्मस्थ (केवलज्ञान रहित) अवस्था मे मर जायगा।' भगवान् ने कहा—

'मैं अभी सोलह वर्ष और सुखपूर्वक जीऊँगा, परन्तु तू स्वय सात दिन मे दाह-ज्वर द्वारा मर जायगा।'

यह देखकर कुछ बुद्धिहीन कहने लगे कि 'श्रावस्ती नगरी मे दो तीर्थङ्कर आपस मे कहते है—'तूँ पहले मरेगा, दूसरा कहता है—नही; तूँ पहले मरेगा।' कौन जाने, उनमे कौन सच है और कौन झूठ है?' परन्तु बुद्धिमान जानकार जानते थे कि 'भगवान् महावीर सच्चे हैं और गोशालक झूठा है।'

गोशालक की हार

भगवान् पर पूरी शक्ति से तेजोलेश्या का प्रयोग करने के कारण जब गोशालक शक्तिहीन हो गया, तब भगवान् ने अपने सन्तो को आज्ञा दी कि 'अब गोशालक से चर्चा करो।' तब सन्तो ने उससे चर्चा आरम्भ की। अपने आपको सर्वज्ञ व तीर्थङ्कर बताने वाला गोशालक उनका कोई उत्तर नही दे सका तथा तेजोलेश्या की शक्ति पूर्ण नष्ट हो जाने के कारण वह उन चर्चा करने वाले सन्तो को जला भी न सका। इससे गोशालक अत्यन्त क्रुद्ध होकर आँखे लाल करके दाँत किटकिटाने लगा और हाथ-पैर पटकने लगा। यह देख गोशालक के कई प्रमुख साधु और श्रावक गोशालक को झूठा और भगवान् को सच्चा समझ गोशालक को छोड भगवान् के सघ मे आ मिले।

अन्तिम घड़ियाँ सुधरी

तब गोशालक वहाँ से चल दिया। सातवें दिन तक दाह-ज्वरयुक्त वह झूठी-सच्ची बाते करके अपने को सही बताता रहा, परन्तु अन्त मे मृत्यु के समय उसकी बुद्धि सुधरी। उसे सम्यक्त्व प्राप्त हुई। उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ। "अरे रे, मैंने मेरे महोपकारी भगवान् की आशातना की। मैं साधुओ

का हत्यारा बना! मैने झूठी-सच्ची बाते घडी!! बार-बार धिक्कार है मुझे।" उस पश्चात्ताप और सम्यक्त्व दशा मे उसका आयुबंध हुआ। उसकी मोक्ष की नीव लगी और वह मरकर १२ वे देवलोक मे पहुँचा।

भगवान् की कृपा से इस प्रकार गोशालक कष्टो से बचा। उसके जीवन की रक्षा हुई और एक दिन—'वह मोक्ष मे पहुँचे'—ऐसी नीव भी लग गई।

इधर भगवान् को गोशालक की तेजोलेश्या जला तो नही सकी, पर उसकी हवा से भगवान् को रक्तस्राव (मल के साथ लोही का बहाव) की पीडा हो गई। वीतराग भगवान् उसे शान्त भाव से सहते रहे।

रेवती को सम्यक्त्व-प्राप्ति

वहाँ से विचरते हुए भगवान् छह मास मे 'मेंढ़िक' गाँव मे पधारे। वहाँ 'सिंह' नामक एक मुनि को भगवान् की इस पीडा से बहुत ही रोना आ गया। तब भगवान् ने उसे बुलाकर सान्त्वना दी और कहा—'मैं अभी १५॥ वर्ष और सुखपूर्वक जीऊँगा, अत: चिन्ता न करो। तुम यहाँ की 'रेवती' गाथापत्नी के यहाँ जाओ। उसने मेरे लिए जो **'कोलापाक'** बनाया है, वह न लाते हुए, जो घोडे की वायुनाश के लिए **'बिजौरापाक'** बनाया है, वह लाओ।'

सिंह मुनि उसके यहाँ पधारे। रेवती ने कोलापाक देना आरम्भ किया, तो मुनिराज ने उसे दोषी बताकर उसका निषेध करके बिजौरापाक माँगा। रेवती को बडा ही आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—'आपको यह कैसे जानकारी हुई कि यह दोषी है?' मुनि ने उत्तर दिया—'भगवान् से।' रेवती को यह जानकर

भगवान् पर और जैनधर्म पर बडी ही श्रद्धा हुई। 'धन्य है ऐसे भगवान्, जो घट-घट के अन्तर्यामी है! धन्य है ऐसा धर्म, जिसके देवाधिदेव भी निर्दोष आहार लेते है!' उसने बड़ी ही श्रद्धापूर्वक उत्कृष्ट भाव से दान दिया। उससे उसे सम्यक्त्व प्राप्त हुई और तीर्थकर नामकर्म जैसी पुण्य प्रकृति का बध भी हुआ।

मुनिराज ने वह बिजौरापाक लाकर भगवान् के हाथो मे दिया। उसका उपभोग कर भगवान् नोरोग बने। तब चतुर्विध सघ मे छाई उदासी दूर होकर हर्प छा गया। उसके पश्चात् १५॥ वर्ष और गधहस्ती के समान विचर कर भगवान् ने बहुत जीवो का उद्धार किया। अरिहत उपसर्ग की घटना भी अनन्त काल से होती है।

निर्वाण

लगभग तीस वर्ष तक केवली अवस्था भोग कर ७२ वर्ष की आयु मे **'पावापुरी मे'** **'हस्तिपाल'** राजा की लेखशाला मे सोलह प्रहर तक चतुर्विध सघ को अन्तिम देशना (वाणी) सुनाकर भगवान् **कार्तिकी कृष्णा अमावस्या** की रात्रि जब दो घडी शेष थी, तब बेले के तप सहित काल करके मोक्ष पधार गये। उस समय सम्पूर्ण लोक मे कुछ समय के लिए अन्धकार हो गया और देवता भी दु खमग्न बन गये। अन्त मे देवताओ ने भगवान् के शरीर की बहुत श्रेष्ठ द्रव्यो से दाह-क्रिया की।

भगवान् का परिवार और परम्परा

भगवान् के सन्तो की ऊँची सख्या १४,००० चौदह सहस्र पर पहुँची। सतियो की ऊँची सख्या ३६,००० छत्तीस सहस्र तक पहुँची। भगवान् के शख, कामदेव आदि श्रावको की

ऊँची सख्या एक लाख, उनसाठ सहस्र तक पहुँची और सुलसा, रेवती आदि श्राविकाओ की ऊँची सख्या तीन लाख, उन्नीस सहस्र तक पहुँची। (६ कामदेव और ७ सुलसा की कथा आगे देखो। रेवती की कथा इसी कथा मे पहले आ चुकी है।) भगवान् के ७०० शिष्य और १४०० शिष्याएँ मोक्ष पहुँची। भगवान् के पश्चात् उनके पाट पर **श्री सुधर्मा** नामक पाँचवें गणधर विराजे और उनके पाट पर **श्री जम्बू स्वामी** विराजे। जम्बू स्वामी तक जीव धर्म-क्रिया करके मोक्ष जाते रहे। अब धर्म-क्रिया करके जीव एक भव अवतारी तक बन सकते हैं।

॥ इति भगवान् महावीर की कथा समाप्त ॥

—श्री आचाराग स्थानाग, भगवती, जम्बूद्वीप, कल्प, आवश्यक आदि सूत्रो से, उनकी वृत्तियो से तथा अन्य ग्रन्थो से।

भगवान् के छद्मस्थकाल के तप

तप	तप सख्या	दिन सख्या	पारणा सख्या
१. पूरे छह महीने का तप	१	१८०	१
२ पाँच दिन कम छह मासिक तप	१	१७५	१
३. चौमासिक तप	६	१०८०	६
४ तीन मासिक तप	२	१८०	२
५ ढाई मासिक तप	२	१५०	२
६ दो मासिक तप	६	३६०	६
७ डेढ मासिक तप	२	६०	२
८. मासिक तप	१२	३६०	१२
६. अर्द्ध मासिक तप	७२	१०८०	७२
१०. अष्टम (तेला) तप	१२	३६	१२

११. षष्ठ (बेला) तप	२२९	.... ४५८	..	२२९
१२ भद्र प्रतिमा तप	१	... २	.	०
१३ महाभद्र प्रतिमा तप	१	.... ४	...	०
१४ सर्वतोभद्र प्रतिमा तप	१	... १०	..	१
कुल योग	३५१	... ४१६५	...	३४९

तप दिन ४१६५, + पारणक दिन ३४९, + दीक्षा दिन १ = कुल दिन ४५१५ हुए, जिसके बारह वर्ष छह मास और पन्द्रह दिन होते हैं।

शिक्षाएँ

१ कर्म किसी को भी नही छोडते—यह देख कर्म करने मे भयभीत रहा।

२ तीर्थंकर भी गृह त्याग कर साधु-धर्म स्वीकारते है, तो विना धर्म हमारा कल्याण कैसे होगा ?

३. भगवान् ने जब इतना दीर्घ और उग्र तप किया, तो हमे भी शक्ति अनुसार तप करना चाहिए।

४. जब भगवान् ने उपसर्गों के सामने जाकर उपसर्ग सहे, तो कम-से-कम हमे आये हुए उपसर्ग तो सहने ही चाहिएँ।

५ जो भगवान् के पैरो के पीछे चलता है, वह कभी निराश नही होता।

प्रश्न

१ भगवान् की गृह-अवस्था की विशिष्ट घटनाओं का वर्णन कीजिए।

२ भगवान् की छद्मस्थ-पर्याय की विशिष्ट घटनाओं का वर्णन कीजिए।

३. भगवान् की केवलि पर्याय की विशिष्ट घटनाओं का वर्णन कीजिए।

४. भगवान् के चरित्र की विषय-तालिका लिखिये।

५. भगवान् के जीवन से आपको क्या शिक्षाएँ मिलती हैं ?

२. गणधर श्री इन्द्रभूतिजी
(श्री गौतमस्वामीजी)

देशादि

मगध देश में 'गोबर' नामक एक गाँव था। वहाँ १. 'श्री इन्द्रभूति' नामक ब्राह्मण रहते थे। उनके पिता का नाम 'वसुभूति' तथा माता का नाम 'पृथ्वी' था। वे 'गौतम' गौत्रीय थे। उनके दो छोटे भाइयो का नाम क्रमश' २. 'श्री अग्निभूति' तथा ३. 'श्री वायुभूति' था।

तीनो भरे-पूरे शरीर वाले थे। शरीर का रूप-रंग देवताओ को भी लज्जित करने वाला था। शरीर शक्ति-सम्पन्न था, मानो वज्र का ही बना हो। पद्म-गर्भ के समान उनके शरीर का गौर वर्ण देखते ही बनता था। उनके मुख पर बडी दिव्य प्रतिभा थी।

तीनो वैदिक धर्म के उपाध्याय थे। वेद-वेदाग के रहस्य को जानने वाले थे। तीनो के ५००-५०० छात्र थे। श्री इन्द्रभूति उन सब मे तेज थे। उस युग मे उनके समान कोई विद्वान् न था। वे अपने युग के सभी विषयो के उच्चस्तरीय

जानकार थे। चर्चा मे भी सदा ही उन्ही की विजय हुआ करती थी।

यज्ञ-प्रसंग

एक वार 'मध्य अपापा' नामक नगरी में **'सोमिल'** ब्राह्मण ने **यज्ञ** करवाया। उसमे उसने श्री इन्द्रभूति आदि तीनो भाइयों को निमन्त्रित किया। तीनों अपने-अपने छात्रो के साथ यज्ञ में सम्मिलित हुए। श्री व्यक्तभूति आदि आठ विद्वान् उपाध्यायो को वहाँ भी बुलाया गया था। ४. श्री **व्यक्तभूति** और ५ श्री **सुधर्मा** ५०० ५०० छात्रो के साथ आये। ६ श्री **मण्डितपुत्र** व ७ श्री **मौर्यपुत्र** ३५०-३५० छात्रो के साथ आये। ८. श्री **अकम्पित**, ९. श्री **अचलभ्राता**, १०. **श्रीमेतार्य** व ११. श्री **प्रभासजी** ३००-३०० छात्रो के साथ आये।

यज्ञ बहुत ठाट-बाट के साथ आरंभ हुआ। उसमें सहस्रो लोग आये। मंत्र पढ़े जाने लगे। आहुतियाँ दी जाने लगी। यज्ञ के धुएँ ने आकाश को घेरना आरम्भ किया।

देव-दर्शन

इधर केवलज्ञान उत्पन्न होने पर श्री **भगवान् महावीर** स्वामी उसी नगरी के बाहर के **महासेन** नामक वन मे पधारे। वहाँ उनका बडा भारी समवसरण लगा। (सहस्रो-लाखों लोग उनके उपदेश के सुनने के लिए इकट्ठे हुए।) अगणित देव और इन्द्र भी उनकी वाणी सुनने के लिए सोमिल के यज्ञ-मण्डप की ओर से होते हुए भगवान् के समवसरण में आने लगे।

उन देवो और इन्द्रो को अपने यज्ञ-मण्डप की ओर आते देख कर श्री इन्द्रभूति आदि ११ ही उपाध्याय ब्राह्मण बडे

प्रसन्न हुए। वे कहने लगे—'देखो! हमारे यज्ञ का कितना प्रभाव है! हमारा यज्ञ कितनी उत्तम विधि से किया जा रहा है कि, आज उसे देखने के लिए और हवन लेने के लिये देव ही नही, साथ मे इन्द्र भी आ रहे है।'

पर कुछ ही समय मे जब देवो और इन्द्रो को यज्ञ-मण्डप से आगे जाते देखा, तो वे सभी विचार मे पड गये—'अरे, यह क्या हो रहा है? ये देव और इन्द्र कहाँ जा रहे है? यज्ञ तो यहाँ हो रहा है? कही ये यज्ञ के इस स्थान को भूल तो नही गये अथवा विमानो को अन्य स्थान पर छोड़कर यहाँ आने के लिए तो कहीं नही जा रहे है?'

श्री गौतम को अहकार को उत्पत्ति

लोगो से जब जानकारी हुई कि 'यहाँ भगवान् महावीर स्वामी पधारे हुए हैं। उनका उपदेश अनूठा है। उनकी वाणी बहुत मनोहर है। वे अद्वितीय अतिशय वाले है। उन्हें केवलज्ञान प्राप्त है। वे सर्वज्ञ है। ये देव और इन्द्र तुम्हारे लिए नहीं, किन्तु भगवान् महावीरस्वामी के दर्शन करने व वाणी सुनने के लिए आये हैं।' तो श्री इन्द्रभूति को इन शब्दो को सुनकर तत्काल तीव्र ईर्ष्या उत्पन्न हुई। उनसे 'सर्वज्ञ' शब्द तो मानो सुना ही नही गया। उन्हे अहकार था कि 'इस विश्व मे मैं अद्वितीय हूँ। मेरी कोई समता नहीं कर सकता है। फिर कोई मुझ से बढकर कैसे हो सकता है? इसलिए देव और इन्द्र मुझे छोड़कर किसी दूसरे के पास जायँ—यह नही हो सकता। लगता है, यह कोई महान् इन्द्रजालिक है। इसने सब को भ्रम मे डाल दिया है। देवता और इन्द्र भी इसकी महामाया मे आ गये हैं। पर इससे क्या हुआ? मैं अभी

जाता हूँ। जब तक सूर्य का उदय नही होता, तब तक ही अन्धकार रह सकता है, सूर्योदय के बाद नही। चर्चा करके उसे हराते ही उसकी यह सारी माया सिमट जायगी और उसकी सर्वज्ञता का ढोंग उड जायगा।'

प्रभु के चरणों में

श्री इन्द्रभूति अहकार और ईर्ष्या के साथ भगवान् के समवसरण की ओर चले। पर दूर से समवसरण की शोभा देखते ही वे चकित हो गये।—'ऐसी शोभा तो मैंने कही नही देखी!' समवसरण के निकट पहुँच कर भगवान् की मुख-मुद्रा देखते ही तो उनका अहकार भी गल गया, ईर्ष्या की भावना भी मिट गई। 'अहा! यह कसा दिव्य रूप! इस सूर्य के सामने तो मैं जुगनू-सा भी नही हूँ। और इनकी वाणी मे कितना ओज! कितना प्रभाव!! कौन ऐसा है, जो इनकी ऐसी मधुर वाणी सुनकर हरिण-सा बन कर इनके पास खिंचा चला न आवे?'

भगवान् के पास पहुँचने पर भगवान् ने उन्हे "हे! इन्द्रभूति गौतम!' कहकर बुलाया। गौतम ने यह सबोधन सुनकर सोचा—'लोग इन्हे सर्वज्ञ कहते थे—वह बात सच दिखती है। मेरा कभी इनसे परिचय नही, कभी इन्हे देखा भी नही, तो इन्हे मेरा नाम और गौत्र कसे ज्ञात हुआ? अथवा मैं तो जगत्प्रसिद्ध हूँ। इस विश्व मे मुझे कौन नही जानता? इसलिए मात्र मेरा नाम और गोत्र बता देने से ही इन्हे सर्वज्ञ मान लेना भूल है। यदि ये मेरे मन मे रहा संशय बता दे और दूर कर दें, तो, मैं इन्हे सर्वज्ञ समझूं।'

श्री इन्द्रभूति आस्तिक थे। उन्हे जीव आदि का ज्ञान था। पर वे वेद पर विश्वास करते थे। और वेद मे आये हुए एक वाक्य का अर्थ उन्हे ऐसा समझ मे आ गया था कि 'जीव नही है,' इसलिए उन्हे संशय था कि 'जीव है या नही ?'

श्री इन्द्रभूति मन में ऐसा विचार कर ही रहे थे कि, भगवान् ने इन्द्रभूति के विचार को जानकर कहा—'गौतम ! तुम्हे जीव के विषय मे सशय है, पर उसे निकाल डालो। जीव के अस्तित्व मे सन्देह न करो।'

भगवान् के इन वचनो को सुनते ही गौतम को विश्वास हो गया कि 'सचमुच ये सर्वज्ञ हैं।' नहीं, तो मेरे मन मे छुपा सशय ये कैसे जान पाते ? मेरा नाम-गोत्र तो प्रसिद्ध है, पर मेरे मन का सशय कोई नही जानता। क्योकि मैंने उसे दूसरों को तो क्या ? अपने भाइयो को भी नही बताया। इसलिए उसे सर्वज्ञ से अन्य कोई नही जान सकता। वे प्रभु के चरणो मे नत मस्तक हो गये। फिर जब भगवान् महावीर स्वामी ने वेद के उस वाक्य का वास्तविक अर्थ बताया और जीव के अस्तित्व की सिद्धि करके बताई, तब उन्होने अपने मन मे भगवान् का शिष्य बनने का निर्णय करके अपने साथ आए हुए ५०० छात्रो से कहा—मैं तो भगवान का शिष्य बनता हूँ, बोलो, तुम्हारी क्या भावना है ?' उन्होने कहा—'हम तो आपके शिष्य हैं, जिनको आप गुरु मानेंगे, उनको हम भी गुरु मानेंगे।'

प्रथम गणधर : प्रथम शिष्य

श्री इन्द्रभूतिजी ने भगवान् से प्रार्थना की कि 'आप मुझे और इनको दीक्षा दे।' भगवान् ने उन्हे दीक्षा दी। उसके पश्चात् गौतम को '१. उत्पन्न, २. विगम और ३. ध्रुव'—ये तीन

शब्द सुनाये, जिससे उन्हे सम्पूर्ण शास्त्र-ज्ञान (चौदह पूर्व का ज्ञान) हो गया। तीन शब्दो से सम्पूर्ण शास्त्र-ज्ञान हो जाने पर भगवान् ने उन्हे गणधर पद दिया और वे ५०० छात्र, उनके शिष्य बना दिये।

इधर जब अग्निभूति आदि १० उपाध्यायो ने देखा कि 'बहुत समय हो गया है, पर अब तक इन्द्रभूति लौटकर नही आये', तो सोचा कि 'क्या बात है? वे अब तक इस इन्द्रजालिक महावीर को हरा कर क्यो नही आये?' अग्निभूति ने कहा 'अस्तु, मैं जाता हूँ, देखता हूँ और अभी हराकर आता हूँ।' इस प्रकार विचार करके वे सभी क्रमश भगवान् के चरणो मे पहुँचते रहे और सभी की शकाए मिटती गई। २ श्री अग्निभूतिजी को कर्म के अस्तित्व मे, ३ श्री वायुभूतिजी को जीव-शरीर की भिन्नता मे, ४ श्री व्यक्तभूतिजी को अजीव-जड के अस्तित्व मे, ५ श्री सुधर्मा स्वामी को योनि-परिवर्तन में, ६. श्री मण्डितपुत्रजी को कर्मों के बध-मोक्ष मे, ७ श्री मौर्यपुत्रजी को देवो के अस्तित्व मे, ८. श्री अकम्पितजी को नारकी-जीवो के अस्तित्व मे, ९. श्री अचलभ्राताजी को कर्मों के दो रूप १ पुण्य, २ पाप के अस्तित्व मे, १०. श्री मैतार्यजी को परलोक के अस्तित्व मे तथा ११. श्री प्रभासजी को मोक्ष-प्राप्ति मे सन्देह था।

सभी अपनी-अपनी शकाएँ मिटने पर अपने-अपने शिष्यो के साथ भगवान के शिष्य बनते रहे। इस प्रकार भगवान् महावीरस्वामी के पास एक ही दिन मे ४४०० (५००+५००+५००+५००+५००+३५०+३५०+३००+३००+३००+३००=४४००) शिष्यो की दीक्षा हुई और ग्यारह गणधर हुए। सबसे बडे शिष्य और प्रथम गणधर श्री इन्द्रभूतिजी हुए।

आये थे सभी भगवान् को हराने, पर सभी भगवान् से हारे। ऐसी हार सदा ही सब की हो। जिस हार से सत्य की प्राप्ति हो, वह हार 'हार' नही, सत्य की 'विजय' है।

पुराना सम्बन्ध

भगवान् के चरणो मे पहुँचने से पहले श्री गौतमस्वामी को भगवान् के लिए 'सर्वज्ञ' शब्द भी सहन नही हुआ था। पर अब उन्हे भगवान् के प्रति परम अनुराग उत्पन्न हो गया। वे सदा भगवान् की प्रशसा करते। सदा उनके ही निकट परिचय से रहते, सेवा करते। प्राय साथ-साथ विहार करते और भगवान् की आज्ञा का पूर्ण पालन करते। श्री इन्द्रभूति गौतम को भगवान् के साथ ऐसा परम अनुराग जुडने का कारण यह था कि, वे कई भवो से भगवान् के साथ सारथि आदि नाना प्रकार के सम्बन्ध करते चले आ रहे थे।

राजगृही की बात है। परिषदा व्याख्यान सुनकर चली गई थी। तब भगवान् महावीरस्वामी ने स्वय गौतमादि को बुलाकर यह रहस्य प्रकट किया था। उन्होने कहा .

'गौतम! तुम बहुत पुराने समय से मुझ पर स्नेह रखते चले आ रहे हो। मेरी प्रशसा, मेरा परिचय, मेरी सेवा, मेरा अनुगमन और मेरी आज्ञानुसार बर्ताव करते चले आ रहे हो। कई मनुष्य-भव और कई देव-भव तुमने मेरे साथ किये हैं। पिछले देव-भव मे भी तुम मेरे साथ थे। अब यहाँ इस भव तक ही नही, भविष्य मे भी सदा के लिए साथ रहोगे और काल करके हम दोनो ही मोक्ष मे एक समान भी बन जायेंगे।' (भगवती शतक १४, उद्देशक ७)।

ज्ञान-रुचि

श्री गौतम स्वामीजी तीन शब्द सुनकर सम्पूर्ण शास्त्र-ज्ञान पा गये थे। उन्हे दीक्षा लेते ही चौथा 'मन पर्याय' ज्ञान भी उत्पन्न हो चुका था। फिर भी वे सदा भगवान् की वाणी सुनते और प्रश्न पूछते रहते। भव्य (मोक्ष पाने योग्य) जीवो के हित के लिए उन्होने भगवान् से सहस्रो-लाखो प्रश्न पूछे। उनके वे प्रश्न उस समय विश्व के लिए बहुत उपकारी सिद्ध हुए। आज भी उनके वे प्रश्नोत्तर हम पर बहुत ही उपकार कर रहे है। क्योकि आज जो शास्त्र है, उन मे से कई और कई के बहुत से भाग श्री इन्द्रभूतिजी के प्रश्न और श्री महावीरस्वामीजी के उत्तरो के सग्रह से ही बने है। इन प्रश्नोत्तरो का सग्रह पाँचवे गणधर श्री सुधर्मास्वामीजी ने किया था।

तपस्वी और निष्पृह

श्री गौतमस्वामीजी ने जिस दिन दीक्षा ली, उस दिन से ही उन्होने यावज्जीवन वेले-वेले पारणे (दो-दो उपवास के अन्तर से भोजन) करने का अभिग्रह (निश्चय) किया और जीवन भर बेले-बेले करके निभाया। इस प्रकार श्री गौतम स्वामी मात्र बहुत ज्ञानी ही नही, घोर तपस्वी भी थे। ज्ञान का सार यही है कि—कषायो को जीते, इन्द्रियो का दमन करे और शक्ति अनुसार तप भी करे। तप के कारण उन्हे कई लब्धियाँ (शक्तियाँ) प्राप्त हो चुकी थी। जैसे 'कटोरी भर बहराई हुई खीर मे यदि उनका अगूठा लग जाता, तो उस खीर से सैकडो सन्तो का पारणा हो जाता, फिर भी वह खीर अक्षय

रहती थी। उनके अँगूठे मे ऐसा अमृत प्रकट हो गया था।' फिर भी वे कभी अपनी ऐसी किसी लब्धि का प्रयोग नही करते थे। इस प्रकार गौतमस्वामी निष्पृह (इच्छारहित) भी थे।

निरभिमानी

ऐसे ज्ञानी, तपस्वी, भगवान् के सबसे बडे शिष्य और प्रथम गणधर होते हुए भी गौतमस्वामी को अभिमान का लवलेश भी छू नही गया था। वे अपना काम स्वय करते थे। जैसे बेले-बेले के पारणे मे भी वे स्वय गोचरी लाते थे। श्री गौतमस्वामीजी से कभी भूल हो जाती, तो भी वे उसे तत्काल स्वीकार कर लेते थे। **वाणिज्यग्राम** नगर की बात है. एक बार बेले के पारणे मे श्री गौतमस्वामी **आनन्द श्रावक** के घर पधारे थे। आनन्द श्रावक ने कहा: 'भन्ते! मुझे बडा अवधिज्ञान हुआ है।' तब गौतमस्वामी ने कहा 'श्रावक को अवधिज्ञान हो सकता है, पर इतना बडा नही।'

जब भगवान् के पास लौटने पर भगवान् से जाना कि 'आनद श्रावक का कहना ठीक था, पर उपयोग न पहुँचने के कारण मुझ से ही भूल हुई,' तो वे बिना पारणा किये ही तत्काल आनन्द श्रावक को खमाने (क्षमा-याचना करने) गये। अहा! कितने निरहकारी और सरल बन गये थे, गौतमस्वामी।

सबसे मधुर

श्री गौतमस्वामी छोटो से भी बहुत मधुर वर्ताव करते थे। **पोलासपुर** की बात है। एक बार वे गोचरी गये। वहाँ छः वर्ष के बच्चे **अतिमुक्त** (एवता) कुमार ने जब उन्हे देखा और पूछा— 'आप घर-घर क्यो घूमते है?' तो स्वय इतने बडे होते हुए भी

उस बालक तक को उत्तर दिया। उसका भी समाधान किया। उसने गौतमस्वामी से कहा—'आओ! मैं तुम्हें भिक्षा दिलाऊँ'। इस प्रकार कह कर वह गौतमस्वामी की अँगुली पकड कर उन्हें अपने घर ले जाने लगा, तो वे उसका विरोध न करते हुए उसके पीछे-पीछे चले गये। गोचरी लेकर भगवान् के पास लौटते समय उसने पूछा—'आप कहाँ रहते हो?' तो कहा—'मेरे गुरु भगवान् महावीर बाहर बगीचे में पधारे हैं, मैं उनके चरणों में रहता हूँ।' वह चलने को तैयार हुआ, तो श्री गौतमस्वामी उसकी चाल चलते हुए लौटे। अतिमुक्त को ऐसे गौतम कितने मीठे लगे होंगे? (ये अतिमुक्त दीक्षित होकर मोक्ष गये।)

स्वधर्मी-वत्सल

श्री गौतमस्वामी को धर्म-प्रेम बहुत था। वे स्वधर्मी बनने वाले का बहुत आदर करते थे। कृतंगला नगरी की बात है। एक बार भगवान् महावीरस्वामी ने गौतमस्वामी से कहा: 'गौतम! आज तुम अपने मित्र को देखोगे।'

गौतम—'कौन है वह?'

महावीर—'**स्कन्दक सन्यासी।**'

गौतम—'उसे कब, कहाँ, कितने समय से देखूँगा?'

महावीर—'बस, वह अभी आ ही रहा है।'

गौतम—'क्या वह दीक्षित बनेगा?'

महावीर—'हाँ।'

यह सुनकर श्री गौतमस्वामीजी को 'मित्रता के नाते नहीं, पर मेरा मित्र दीक्षित बनेगा'—इस नाते बहुत प्रसन्नता हुई। वे स्वयं स्कन्दक के सामने गये और उनका स्वागत किया तथा उन्हें

अपने साथ मे भगवान् के चरणो में लाये। स्वधर्मी वनने वाले के प्रति वे ऐसा आदर करते थे !

मर्यादा-पालक

श्री गौतमस्वामी मर्यादापालक भी थे। एक वार वे स्वय जिस श्रावस्ती नगरी मे पधारे, उसी नगरी के दूसरे वगीचे मे भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के आचार्य श्री **केशीकुमार श्रमण** भी पधारे हुए थे। उनसे श्री गौतमस्वामी कई अपेक्षाओं से बडे थे, परन्तु उन्होने सोचा कि 'मैं २४ वे तीर्थंकर का शिष्य हूँ और वे २३ वें तीर्थंकर की परम्परा के है, इसलिए वे वडे कुल के है और मैं छोटे कुल का हूँ। इसलिए मुझे उनकी सेवा मे जाना चाहिए।' इस प्रकार विचार कर वे स्वय अपने शिष्यो सहित उनकी सेवा में गये। ऐसे थे गौतमस्वामी मर्यादा के पालक !

आयु आदि

श्री इन्द्रभूतिजी के कितने गुण वर्णाये जायें ? वे गुणों के भंडार थे। जैन साहित्य मे उनके इतिहास के विषय में वहुत-कुछ लिखा गया है।

श्री इन्द्रभूतिजी ५० वर्ष की आयु मे दीक्षित हुए। ३० वर्ष तक छद्मस्थ (ज्ञानावरणीयादि चार कर्म सहित) रहे। भगवान् महावीरस्वामी का दीपावली की जिस रात्रि को निर्वाण हुआ, उसी रात्रि को गौतमस्वामीजी को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। वे वारह वर्ष तक केवलज्ञानी रहे। कुल ९२ (५०+३०+१२=९२) वर्ष की आयु भोगकर श्री गौतमस्वामी मोक्ष पधारे और मुक्ति मे पहुँच कर श्री भगवान् महावीरस्वामी के समान वन गये।

श्री इन्द्रभूतिजी को भगवान् महावीरस्वामीजी 'गौतम !' कहकर बुलाते थे, इसलिए ये गौतमस्वामीजी के रूप मे प्रसिद्ध हुए। बोलो, श्री गौतमस्वामी की जय !

॥ इति २. गणधर श्री इन्द्रभूतिजी की कथा समाप्त ॥

शिक्षाएँ

१ तीर्थंकर के चरणों मे सभी झुक जाते हैं।

२. जीवादि सभी तत्त्व वास्तविक है।

३ सदा ही ज्ञान-पिपासा बनाये रक्खो।

४. ज्ञान के साथ तप भी करो।

५. नम्र, मधुर, स्वधर्मी-वत्सल, मर्यादापालक आदि गुणयुक्त बनो।

प्रश्न

१. श्री इन्द्रभूति के देशादि का परिचय दो।

२ श्री इन्द्रभूतिजी भगवान् के शिष्य कब व कैसे बने ?

३. श्री गौतमस्वामीजी से मिलने वाली शिक्षाएँ सप्रसग लिखिये।

४ श्री गौतमस्वामीजी और भगवान् महावीरस्वामीजी का परस्पर सबध बताओ।

५. श्री गौतमस्वामीजी के आयु-विभाग का वर्णन करो।

◆

३. महासती श्री चन्दनबालाजी

देशादि

'चम्पानगरी' मे महाराजा **'दधिवाहन'** राज्य करते थे। उनकी महारानी का नाम **'धारिणी'** था। धारिणी की कूँख से एक पुत्री का जन्म हुआ। उसका नाम रखा गया **'वसुमति'**।

वसुमति वडी हुई। वह वहुत सुलक्षणा थी। रूप भी उसका बहुत सुन्दर था। साथ ही वह शीलवती भी थी। गुणवती होने से वह सवको प्यारी लगती थी। राजा-रानी उसे अपना जीवन-धन समझते थे। 'वसुमति' का अर्थ ही होता है **'धनवाली'**। प्रेम के कारण राजा-रानी वसुमति को वहुत सुख मे रखते थे। उसे उष्ण वायु भी नही लगने देते थे।

पिता का विरह

'कौशाम्बी' नगर मे **'शतानीक'** राजा राज्य करता था। उसकी महारानी का नाम था **'मृगावती'**। दधिवाहन, शतानीक राजा का सगा साढू था। दोनो की रानियाँ आपस मे वहिनें थी। फिर भी शतानीक ने एक समय छुपी तैयारी करके रात को (नौ सेना से) चम्पानगरी पर आक्रमण कर दिया। दधिवाहन को इस आक्रमण का पहले कुछ ज्ञान न हुआ। अचानक हुए आक्रमण का वे पूरा सामना नही कर सके। अन्त मे युद्ध में उनकी हार हुई। इसलिए दधिवाहन को वन में भाग जाना पड़ा। राजा शतानीक अपनी इस दुर्विजय से वहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपने सैनिको और सुभटो को इस विजय के उपलक्ष्य मे

घोषणा की कि—'तुम इस चम्पानगरी मे जहाँ, जो पाओ, वह ले सकते हो। वह ली गई वस्तु तुम्हारी समझी जायगी।' सैनिको और सुभटो ने यह घोषणा सुनकर चम्पानगरी को तेजी से लूटना आरभ कर दिया।

माता की मृत्यु

महारानी धारिणी और वसुमति ने देखा कि 'महाराजा वन मे भाग गये हैं और नगरी तेजी से लूटी जा रही है, तो हमे भी अपनी रक्षा के लिए यहाँ से भागकर चला जाना चाहिए। अब यहाँ ठहरना शील के लिए ठीक नही होगा।' यह विचार कर वे राजप्रासाद को छोडकर भाग ही रही थी कि, एक **नाविक (अथवा सारथी या ऊँटवाले)** ने उन दोनो को पकड लिया और वह अपने साथ ले जाने लगा। मार्ग मे उसने अपने साथ चलने वाले लोगो से कहा कि 'इन दोनो मिली हुई स्त्रियो मे से इस बडी सुन्दरी को तो मैं अपनी पत्नी बनाऊँगा तथा इसकी इस कन्या को कही बाजार मे बेच कर पैसा कमाऊँगा।'

धारिणी को यह सुनकर हृदय मे बडा आघात लगा—'जिस पुत्री को जीवन-धन की भाँति पाली, वह राजप्रासाद मे रहने वाली पुत्री मार्ग मे खडी करके बेची जायगी'—यह उसे सहन न हुआ। फिर शील-नाश की शका ने तो उसका हृदय पूरा कपा दिया। पुत्री के भावी दु ख की चिन्ता और अपने शील-नाश की आशका से उसे हृदयाघात हो गया और उसके प्राण छूट गये।

बाजार में बिक्री

वसुमति अब अपने-आपको अनाथ अनुभव करने लगी। १ पिताजी छोड़कर चले गये। २. राजप्रासाद छूट गया।

३. माता सिधा गई। अब उसके लिए कौन रहा? उसका मुँह कुम्हला गया। 'हा! अब मेरी कैसी दशा होगी? यह दुष्ट मेरी माँ को तो मार चुका, अब मुझे न-जाने किस हाथ बेचेगा? मेरे कुल-शील की रक्षा कैसे होगी?' वह इन सङ्कट की घडियो मे धर्य के साथ नमस्कार-मन्त्र का स्मरण करने लगी।

नाविक वसुमति को लेकर कौशाम्बी नगरी मे पहुँचा। वहाँ उसने वसुमति को चार मार्ग मे (चौराहे पर) खडी की। उसके मस्तक पर घास रखा और २० लाख सोने की मोहरो मे दासी के रूप मे बेचने लगा। उधर से 'धनावह' नामक सेठ निकले। उन्होने वसुमति को विकते देखा। वसुमति के १ रूप-रङ्ग को, २. वेश को, ३ लक्षण को और ४. मुखाकृति को देखकर धनावह सेठ ने अनुमान लगा लिया कि 'यह कोई राजपुत्री अथवा सेठ की लडकी दिखती है। कही कोई हीन कुल वाला इसे खरीद न ले और इसके कुल-शील पर आपदा न आवे, इसलिए मै ही इसे खरीद लूँ। हो सकता है कि कुछ दिनो तक यह मेरे घर रहे और उसके पश्चात् इसके माता-पिता भी इसे आ मिले।'

धनावह सेठ के घर में

धनावह सेठ ने इन विचारो से उस नाविक को मुँहमाँगा धन देकर वसुमति को ले ली। धनावह सेठ उसे लेकर अपने घर पहुँचे। उनकी पत्नी का नाम 'मूला' था। मूला से कहा—'लो प्रिये! यह गुणवती कन्या। हमारी कोई सन्तान नही है, इससे अब हम अपनी सन्तान की भावना पूरी करे।' मूला ने भी वसुमति को पुत्री के रूप मे स्वीकार कर लिया।

वसुमति को यह देखकर बहुत प्रसन्नता हुई। वह १. पिता का विरह, २. घर का छूटना, ३ माता की मृत्यु और ४. अपना बिकना, सब-कुछ भूल-सी गई। उसे सन्तोष हुआ कि 'अब मैं कुलीन घराने में हूँ। यहाँ मेरे धर्म की समुचित रक्षा होगी तथा मैं धर्म-ध्यान कर सकूँगी।'

नया नाम—चन्दनबाला

धनावह सेठ ने वसुमति को पूछा—'बेटी! तुम्हारा नाम क्या है?' पर उसने कोई उत्तर नही दिया। उसकी मधुर और ऊँची बोली, सबसे विनय-व्यवहार तथा सुशीलता ने सब लोगो को वश कर लिया था। इसलिए लोग उसे चन्दन के समान अनेक गुणवाली देखकर '**चन्दना**' (**चन्दनबाला**) कहने लगे। उसका यही दूसरा नाम आगे चलकर अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ।

सेवा और कृतज्ञता

उन्हाले के दिन थे। धनावह सेठ बाहर से चलकर थके हुए घर पर आये थे। उस समय उनके हाथ-पैर धुलाने के लिए वहाँ कोई सेवक उपस्थित न था। इसलिए चन्दनबाला ही पात्र मे पानी लेकर सेठ के पास पहुँच गई। सेठ ने उसे बहुत निषेध किया कि 'बेटी! तुम रहने दो। मुझे कोई शीघ्रता नही है। अभी कुछ समय मे कोई सेवक आ जायगा। 'तुम मेरे पैर धोओ'—यह ठीक नही है।'

चन्दना ने कहा—'पिताजी! यदि पुत्री पिता की सेवा करे, तो उचित कैसे नही? आपने तो मुझे मानो दूसरा जीवन ही दिया है। आपदा की घडियो मे आपने अपार धन देकर मुझे खरीदा और मेरे कुल-शील की रक्षा की। ऐसे महारक्षक

पिताजी की तो मुझे सेवा अवश्य ही करनी चाहिए।' इस प्रकार कहते हुए चन्दना ने धनावह सेठ के निषेध करते हुए भी उनके पैर धोना आरम्भ कर दिया।

पैर धोते-धोते उसके केश खुल गये। चन्दना ने उन्हें सम्भालने का विचार किया, तब तक सेठ ने उन केशो को गीली मिट्टी वाली भूमि पर पडते हुए बचा लिए और अपने ही हाथो से उन्हे पकड कर बाँध दिये।

मूला का दुष्ट विचार

गवाक्ष (झरोखे) मे बैठी मूला ने सेठ और चन्दना का परस्पर वार्तालाप तो सुना नही, केवल यह केश-बन्धन का दृश्य देखा। उसके हृदय मे कुछ दिनो पहले से ही यह सन्देह हो चला था कि 'सेठ इस लडकी पर बहुत स्नेह रखते है और यह लडकी रूपवती भी है तथा नवयुवती भी है। इसके सामने मेरा रूप और अवस्था, दोनो ही कुछ नही है। इसके काले-काले मनोहर लम्बे केश प्रत्येक पुरुष को मोहित कर सकते है। इसलिए कही सेठ इसके साथ लग्न न कर ले ! यदि ऐसा हो गया, तो मेरी दासी से भी अधिक दुर्दशा हो जायगी।'

आज जब उसने केवल यह दृश्य देखा, तो उसकी यह असत्य शङ्का पक्की हो गई। उसने सोचा—'अवश्य ही इस लडकी पर सेठ की भावना बिगडी हुई है। मुँह से तो 'बेटी-बेटी' कहते है, पर मन से भावना कुछ दूसरी ही है। नही, तो 'ये युवावस्था वाली इस लडकी के केशो को क्यो हाथ लगाते और क्यो उन्हे बाँधते ?' ऐसा कार्य करना इनके लिए सर्वथा अनुचित था। और इस लडकी की भावना भी बिगडी हुई ही दिखती है, नही, 'तो 'यह सेठ के द्वारा केशो पर हाथ लगाना और चोटी बाँधना कैसे सहन करती ?' अस्तु, अब तक तो यह रोग छोटा ही है।

जब तक यह रोग अधिक न बढे, उसके पहले ही इसकी औषधि कर लेना बुद्धिमानी होगी।'

कष्ट के साथ तीन दिन तलघर में

एक समय सेठ बाहर गये हुए थे। मूला ने वह उचित अवसर समझा। उसने १ नाई को बुलवाया और चन्दना के केश कटवा डाले। २. आभूषण उतार कर हाथो मे हथकडी तथा ३. पैरो मे बेडी डाल दी और ४. कपडे उतार कर उसे काछ पहना दी। इस प्रकार दुर्दशा करके तथा ५ उसे मार-पीट कर उसने चन्दनबाला को ६ भोयरे मे डाल दी और ऊपर ताला लगा दिया। घर के सब दास-दासियो से कह दिया कि 'कोई भी सेठ को यह बात न बतावे। यदि कोई बतावेगा, तो मैं उसके प्राण ले लूंगी।' इतना सब करके वह अपने मायके (पीहर) चल दी।

उड़द के बाकुले

सेठजी दुपहर को भोजन के लिए घर लौटे। दास-दासियो से पूछा 'सेठानी कहाँ हैं? और चन्दना कहाँ है?' उन्होंने 'सेठानी मायके गई हैं'—यह तो बता दिया, परन्तु मृत्यु के भय से किसी ने भी चन्दना की स्थिति नहीं बताई। सेठजी ने सोचा 'ऊपर होगी या कही खेलती होगी।' वे भोजन करके चले गये। सन्ध्या को फिर पूछा—'चन्दना कहाँ है?' पर किसी ने उत्तर नही दिया। सेठ ने सोचा—'आज शीघ्र सो गई होगी।' इस प्रकार सेठ को प्रश्न करते और सोचते तीन दिन बीत गये। चौथे दिन सेठजी से रहा न गया। उन्होंने दास-दासियो से कहा—'यदि कोई जानता हुआ भी

चन्दना की स्थिति नही बतावेगा, तो याद रखो, उसके प्राण नही रहेगे।'

यह सुनकर एक बुड्ढी दासी ने सोचा 'दोनो ओर प्राणो का सङ्कट है। बताऊँ, तो सेठानी की ओर से तथा न बताऊँ, तो सेठ की ओर से। अस्तु, मै बुड्ढी हो ही गई हूँ, यदि मेरी मृत्यु से भी चन्दना बच जाय, तो उस सुशील कन्या को बचा लेना चाहिए।' यह विचार कर उसने सेठ को सारी बात बता दी। वह स्थिति सुन कर सेठजी को बहुत ही दु ख हुआ। उन्होने पत्थर से ताला तोडा और चन्दना को भोयरे से बाहर निकाली, तथा उससे दु ख को बाते पूछने लगे। चन्दना ने कहा—'पिताजी! मुझे कडी भूख लगी है। मैं तीन दिन से भूखी हूँ, पहले मुझे कुछ भोजन ला दो।' उस समय केवल उडद के बाकुले ही तयार थे। सेठजी ने वे सूपडे मे रखकर भोजन के लिए उसे दे दिये और उसकी हथकडी-बेडी तुडवाने के लिए लुहार को बुलाने स्वय ही लुहार के यहाँ चल दिये।

आँखो में आँसू

चन्दना सूप मे रहे हुए उन उडद के बाकुलो को लेकर देहली मे पहुँची। एक पैर देहली के भीतर तथा एक पैर देहली के बाहर रख कर बारसाख (द्वारशाखा) का सहारा लेकर खडी हो गई। उस दशा मे उसे अपनी सारी पिछली बात स्मरण मे आने लगी। 'कहाँ तो मेरी माता धारिणी और कहाँ यह मूला? कहाँ मेरा वह राजघराना? और कहाँ यहाँ भोयरे मे तीन दिन तक कारागृह (जेल) जेसी मेरी यह दुर्दशा? अरे, रे! मैंने पूर्व भव मे न जाने कैसे कर्म कमाये? जिनका मुझे ऐसा फल भुगतना पड़ रहा है। मैं सोचती थी

कि—'अब यहाँ धनावह सेठ के घर पर पहुँच कर मेरे दु ख का अन्त आ गया है, परन्तु कर्म न जाने कितने कठोर है कि, वे अधिक-से-अधिक दु ख दिखा रहे है।' यह सोचते-सोचते उसकी आँखो से आँसू बह चले।

भगवान् का पारणा

इधर भगवान् महावीरस्वामी को दीक्षा लेकर ग्यारह वर्ष हो चुके थे। अब उन्हे केवलज्ञान उत्पन्न होने मे एक वर्ष से कुछ अधिक समय शेष था। भगवान् अपने पूर्व भवो के कठोर कर्मो को क्षय करने के लिए कठोर तपश्चर्याएँ कर रहे थे। इस बार उन्होने १३ बोल का घोर अभिग्रह ग्रहण किया। द्रव्य से—१ सूप के कोने मे, २. उडद के बाकुले हो, क्षेत्र से, ३ बहराने वाली (दान देने वालो) देहली से एक पैर बाहर तथा दूसरा पेर भीतर करके बारसाख (द्वारशाखा) के सहारे खडी हो। काल से ४ तीसरे प्रहर मे जब सभी भिखारी भिक्षा लेकर लौट गये हो। भाव से—बाकुले देने वाली, ५ अविवाहिता, ६ राजकन्या हो, परन्तु फिर भी ७ बाजार मे बिकी हुई हो (दासी-अवस्था को प्राप्त हो), सदाचारिणी और निरपराध होते हुए भी उसके ८ हाथो मे हथकडी और ९ पेरो मे बेडी हो, १०. मूंडे हुए शिर हो और ११. शरीर पर काछ पहने हुए हो, १२. तीन दिन की भूखी १३. रो रही हो, तो उसके हाथ से मैं भिक्षा लूंगा। अन्यथा छह महिने तक निराहार रहूँगा।'

इस अभिग्रह को लिए भगवान् को ५ पॉच मास और २५ पच्चीस दिन हो चुके थे। भगवान् प्रतिदिन घर-घर घूमते और अभिग्रह पूर्ण न होने से पुन लौट जाते थे। कौशाम्बी की महारानी मृगावती और महामन्त्री की स्त्री ने बहुत उपाय किया। उनके कहने से महाराजा और महामन्त्री ने भी

नैमित्तिको से पूछ कर अभिग्रह जानने का पूरा प्रयत्न किया, पर कार्य सफल नही हो सका।

भगवान् अभिग्रह के लिए घूमते हुए २६वे दिन चन्दना के यहाँ पधारे। चन्दना को यह जानकारी थी कि 'भगवान् को अभिग्रह चल रहा है और अभिग्रह बहुत ही कठोर दिखता है,' क्योकि कई प्रयत्न होने पर भी वह फल नही पा रहा है। अब लगभग छह मास पूरे होने जा रहे है।' अत वह सोचती थी कि ऐसा कठोर अभिग्रह मेरे हाथ से क्या फलेगा? परन्तु फिर भी जब भगवान् द्वार पर पधारे, तो उसने सूप मे रहे उडद के बाकुलो को दिखाते हुए कहा—भगवन्! यद्यपि ये आपको दान मे देने योग्य नही हैं, फिर भी यदि ये आपको कल्पते हो, तो इन्हे ग्रहण करे।' भगवान ने अवधि-ज्ञान से देख लिया कि 'मेरे अभिग्रह के सभी बोल इसमे मिल रहे है, तो उन्होने अपने हाथो को खोभा बनाकर (नाव की आकृति के बना कर) चन्दना के सामने किये। चन्दना ने अत्यन्त हर्ष के साथ भगवान् को उन सभी उडद के बाकुलो को वहरा दिये। अन्य मान्यतानुसार चन्दनबाला की आँखो मे भगवान् पधारे तब तक आँसू नही थे। इसलिए अभिग्रह मे एक बोल कम देख कर एक बार भगवान् लौट गये थे। जब भगवान् को फिरते देखकर चन्दनबाला की आँखो मे आँसू आ गये, तब दुबारा भगवान् चन्दना के घर लौटे और अभिग्रह पूर्ण होने से आहार ग्रहण किया।

दुःख का अन्त

भगवान् का अभिग्रह चन्दनबाला के हाथो पूरा हुआ देखकर देवता चन्दनबाला पर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने देव-दुन्दुभि के साथ चन्दना के घर १२॥ करोड़ सौनेयो की वृष्टि

बरसाई और चन्दना के शिर पर बाल बनाये। उसका कांछ हटाकर उसे सुन्दर वस्त्र पहनाए तथा उसकी हाथ-पैरो की हथकडी-बेडी तोडकर उसे मूल्यवान आभूषण पहनाये। देव-दुन्दुभि बजी हुई सुनकर और चन्दना के हाथो अभिग्रह फला जानकर महाराजा महारानी सहित सहस्रो पुरजन भी वहाँ आ पहुँचे। सभी ने चन्दना की बहुत प्रशसा की।

जब महारानी को जानकारी हुई कि 'यह मेरी बहन की सौत की लडकी वसुमति है, तथा राजा ने जाना कि 'मेरी साली की लडकी है, तो उन्हे बहुत दु ख हुआ कि 'इसकी ऐसी दशा हुई।' उन्होने इसके लिए उससे बार-बार क्षमा याचना की और बहुत आग्रह करके उसे राज ।सादं मे ले गये। फिर शतानीक ने दधिवाहन की खोज कराई और उनका राज्य उन्हे पुनः लौटा दिया।

चन्दनवाला अब शतानीक राजा के यहाँ कन्याओ के अन्त पुर मे रहने लगी। उसे अब वैराग्य हो चुका था। वह इसी प्रतीक्षा मे ससार मे रह रही थी कि 'जब भगवान् को केवल-ज्ञान उत्पन्न होगा, तब मैं दीक्षा ले लूँगी।'

दीक्षा

उस समय के एक वर्ष बाद जब भगवान् को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, तब उसने राज्य-सुख को छोडकर कई स्त्रियो के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। वे भगवान् की सबसे बडी शिष्या हुईं और उनकी शिष्याओ की ऊँची सख्या ३६,००० छत्तीस सहस्र तक पहुँची।

अनुशासन

महासती श्री चन्दनबालाजी का अनुशासन बहुत अच्छा था। **कौशाम्बी** की ही बात है। उनके पास उनकी मौसी

मृगावतीजी भी दीक्षित हो गई थी। एक दिन वे कुछ महासतियो के साथ भगवान् महावीरस्वामीजी के दर्शन के लिए 'चन्द्रावतरण' नामक उद्यान मे गई हुई थी। वहाँ पर सूर्यास्त तक चन्द्र और सूर्य देवता उपस्थित थे। उनके प्रकाश से मृगावतीजी को समय की जानकारी न रह सकी। जब वे देवता सूर्यास्त होने पर वहाँ से चले गये, तो मृगावतीजी अन्य साध्वियो के साथ उपाश्रय (सन्त/सतियाँ जहाँ ठहरी हुई हो) पहुँची। वहाँ पहुँचते-पहुँचते अँधेरा हो चला था।

चन्दनबालाजी ने प्रतिक्रमण के पश्चात् मृगावतीजी को मौसी होते हुए भी विलम्ब से आने के लिए योग्यतापूर्वक उपालम्भ देते हुए कहा—'आप जैसी उत्तम कुल-शीलवाली महासती को उपाश्रय के बाहर इतने समय तक ठहरना शोभा नही देता।'

विनय

मृगावतीजी ने अपने इस अपराध के लिए पैरो मे पडकर क्षमा-याचना की। उसके बाद महासतीजी श्री चन्दनबालाजी को तो शय्या पर सोते हुए नीद आ गई, पर मृगावतीजी उनके पैरो मे ही पडी अपने अपराध पर बहुत पश्चात्ताप करती रही। अन्त मे इससे उन्हे केवलज्ञान उत्पन्न हो गया।

इधर सोती हुई चन्दनबालाजी का हाथ सथारे से (बिछाये हुए बिस्तर से) बाहर हो गया था। उधर एक सर्प आ निकला। मृगावतीजी ने केवलज्ञान से वह देख लिया। सर्प हाथ को काट न खावे, इसलिए उन्होने हाथ को सथारे मे कर दिया। इससे चन्दनबालाजी की नीद खुल गई। उन्होने पूछा—'मृगावतीजी आप अब तक सोई नही? आपने मेरा हाथ हटाया क्यो?' मृगावतीजी ने कहा—'हाथ को सर्प से बचाने के लिए।

चन्दनबालाजी—'क्या आपको कोई ज्ञान पैदा हुआ है ?'

मृगावतीजी—'हाँ।'

चन्दनबालाजी –'प्रतिपाति (नाश होने वाला) या अप्रतिपाति (अमर) ?'

मृगावतीजी—'अप्रतिपाति।'

चन्दनबालाजी यह सुनते ही मृगावतीजी के चरणो मे गिर पड़ी। 'एक केवलज्ञान ही अमर ज्ञान है। वह जिन्हे उत्पन्न हुआ, उन केवलज्ञानी की मुझसे आशातना हुई। मैंने उन्हे उपालभ दिया। अहो! कैसी भूल हुई।' चन्दनबालाजी ने मृगावतीजी से बार-बार क्षमा-याचना की। इस प्रकार चन्दनबालाजी मे दूसरो पर अनुशासन के साथ स्वय के जीवन मे महान् विनय भी था।

मोक्ष

चन्दनबालाजी अन्त समय मे सभी कर्मों का क्षय करके मोक्ष पधारी।

॥ इति महासती श्री चन्दनबालाजी की कथा समाप्त ॥

शिक्षाएँ

१ पुण्य सदा का साथी नही।
२. कर्त्तव्य से सच्चा नाम प्राप्त करो।
३ सेवा और कृतज्ञता सीखो।
४ भगवान् को भी कठिन तपश्चर्याएँ करनी पडी।
५. जीवन मे अनुशासन और विनय, दोनो सीखो।

प्रश्न

१ वसुमति का नाम चन्दनवाला क्यों पडा ?
२ चन्दनवालाजी को क्या-क्या कष्ट आये ?
३. भगवान् महावीरस्वामी को क्या अभिग्रह था ?
४ चन्दनवालाजी के दु:ख का अन्त कैसे हुआ ?
५ श्री चन्दनवालाजी से क्या शिक्षाएँ मिलती हैं ?

४. श्री मेघ-कुमार (मुनि)

माता-पिता आदि

मगधदेश और 'राजगृह' के महाराजा 'श्रेणिक' के 'धारिणी' नामक एक रानी थी। शरीर, इन्द्रिय और मन के अनुकूल शय्या पर आधी नीद लेती हुई उस महारानी को किसी रात्रि की पिछली घडियो मे एक ऐसा स्वप्न आया कि—'एक सुन्दर सुडौल 'हाथी' आकाश से उतर कर लीला के साथ मेरे मुख मे प्रवेश कर गया।' पश्चात् वह जाग गई।

उसने यह स्वप्न अपने पति को जाकर सुनाया। राजा ने कहा—'तुम्हे एक कुलीन और भविष्य मे राजा बनने वाला पुत्र प्राप्त होगा।' यह सुनकर रानी को हर्ष हुआ। उसने स्वप्न-जागरण किया।

प्रातःकाल स्वप्न-पाठको (स्वप्न के फल बतलाने वालो) को पूछने पर उन्होने कहा—'रानी को एक कुलीन और भविष्य

में राजा या श्रेष्ठ मुनि बनने वाला पुत्र उत्पन्न होगा।' राजा-रानी को यह सुनकर बडी प्रसन्नता हुई। रानी यत्नपूर्वक अपने गर्भ का पालन करने लगी।

'मेघ' नाम का हेतु

गर्भ के तीसरे महीने मे, जब कि मेघ-वर्षा का काल नहीं था, तब रानी को ऐसा दोहला उत्पन्न हुआ कि **'वर्षाकाल का दृश्य उपस्थित हो** और मैं महाराज श्रेणिक के साथ हाथी पर चढकर राजगृह के पर्वतो के पास वर्षाकाल का दृश्य देखूं।' यह दोहला पूर्ण होना असभव समझ कर रानी दिनो-दिन सूखने लगी।

महाराजा श्रेणिक को दासियो के द्वारा जब यह जानकारी हुई, तो वे बहुत चिन्तित हुए। अन्त मे श्रेणिक के ही पुत्र **'अभयकुमार'** जो बडे बुद्धिशाली और राजा के प्रधानमन्त्री भी थे, उन्होने देव की सहायता से अपनी छोटी माता का यह असभव दोहला पूरा कराया।

गर्भकाल पूर्ण होने पर महारानी ने एक सर्वांग सुन्दर बालक को जन्म दिया। महाराजा श्रेणिक ने उसका जन्म बहुत उत्सव से मनाया और बारहवे दिन 'माता को अकाल मे मेघ आदि का दोहला आया था,' इसलिए उसका नाम **'मेघकुमार'** रक्खा।

लग्न

आठ वर्ष के हो जाने पर, महाराजा ने मेघकुमार को कलाचार्य के पास भेज कर, उन्हे ७२ कलाएँ सिखाईं। पश्चात्

योग्य वय वाले हो जाने पर महाराजा ने आठ सुन्दरी कन्याओं के साथ उनका पाणिग्रहण कराया। युवक मेघकुमार अब अपनी अनुरागिनी रानियो के साथ अपने लिए स्वतन्त्र बनाये हुए राजभवन मे अत्यन्त सुख के साथ रहने लगे।

वैराग्य

कुछ समय के वाद भगवान् महावीर वहाँ राजगृही में पधारे। मेघकुमार भी वन्दन-श्रवरण के लिए समवसरण में गये। भगवान् का उपदेश सुनकर उन्हे वैराग्य हो गया। उन्होने भगवान् से कहा 'भगवन्! मैं माता-पिता को पूछ कर आपके पास दीक्षा लूँगा।' भगवान् ने कहा—'तुम्हे जैसे सुख हो, वैसा करो (अर्थात् जिस प्रकार के धर्म को निभाने मे तुम आत्मग्लानि का अनुभव न करो, उसे स्वीकार करो), पर इस धार्मिक कार्य मे प्रतिबन्ध (किसी प्रकार की रुकावट या विलम्ब) मत करो।

आज्ञा के लिए माता-पुत्र की चर्चा

मेघकुमार ने वहाँ से राजभवन मे पहुँच कर माता-पिता से दीक्षा की आज्ञा मागी। महारानी धारिणी अपने पुत्र के मुख से दीक्षा की आज्ञा के अप्रिय वचन सुन कर मूर्छित हो गई। दासियो के द्वारा चेतना लाने पर उसने कहा—'१. पुत्र! जब हम काल कर जाये, तब तुम दीक्षा ले लेना। हम तुम्हारा वियोग क्षण भर भी सहन नही कर सकते।' मेघकुमार ने कहा—'माता-पिता! यह आयुष्य बिजली आदि के समान चचल है। इसका कोई विश्वास नहीं कि 'यह कब तक रहेगा?' कौन जानता है, माता-पिता! कि कौन पहले जायगा और कौन पीछे?'

माता-पिता ने कहा—'२. बेटा ! ये आठ तेरी नव-विवाहिता सुन्दरी स्त्रियाँ है, उन्हे पहले भोग ले, पीछे दीक्षा लेना।' मेघकुमार ने कहा—'माता-पिता! मनुष्य के काम-भोग अत्यन्त अशुचिमय है और कौन जानता है कि कुछ वर्षों तक इन स्त्रियो के काम-भोगो को भोग कर मैं इन्हे छोड़ सकूँगा या ये पहले ही मुझे छोड़कर चली जायेगी ?'

माता-पिता ने कहा '३ बेटा! हमारे पास सात पीढियो तक चले - इससे भी अधिक धन है और जनता मे हमारा आदर-सत्कार भी बहुत है। पहले तू इस धन-सत्कार को भोग ले, फिर दीक्षा ले लेना।' मेघकुमार ने कहा—'माता-पिता! यह धन, अग्नि, बाढ, चोर आदि किसी से भी कभी भी नष्ट हो सकता है और राजा सदा राजा ही बने नही रहते। कौन जानता है कि, कुछ ही वर्षो तक धन-सत्कार भोगकर मैं इन्हे छोड सकूँगा या ये पहले हो मुझे छोड़ कर चले जायेगे ?'

जब माता-पिता सासारिक सुखो से मेघकुमार को लुभा नही सके, तो उन्होने उसे दीक्षा के कष्टो को बताया। उन्होने कहा—'मेघ! दोक्षा पालना कोई खेल नही है। वह १ लोहे के चने चबाने के समान कठिन है। २. बालू फाँकने के-समान नीरस (स्वादरहित) है। ३. महासमुद्र को भुजाओ से तैरने के समान अशक्य है। ४. खड्ग की धार पर चलने के समान दु खद है। उसमें पाँच महाव्रत पालने होते है। रात्रि-भोजन त्यागना होता है। बावीस परीषह सहने होते हैं। उपसर्ग आने पर समता रखनी होती है। केश-लोच करना पड़ता है। नगे पैर चलना होता है। अपने लिए बना भोजन काम मे नही आता। रोग उत्पन्न होने पर सदोष औषधि नही ली

जा सकती। तुम सुकुमार हो, सुख मे पले हो, अत: तुमसे ऐसी दीक्षा नही पल सकेगी। इसलिए बेटा! तुम दीक्षा न लो।' मेघकुमार ने कहा—'माता-पिता! ये सब बाते कायरो की हैं। जो वीर पुरुष मन मे धार लेते है, उनके लिए कुछ भी कठिन नही होता।'

दीक्षा

जब माता-पिता अनुकूल या प्रतिकूल किसी भी प्रकार की बातो से पुत्र को रोकने मे सफल नही हुए, तो उन्होने मेघकुमार को अनिच्छापूर्वक आज्ञा दी और निष्क्रमण (दीक्षा) महोत्सव मनाया। एक लाख रुपये देकर नाई से मेघकुमार के दीक्षा के योग्य शिखा के बाल रख कर शेष बाल कटवाये। उन बालो को महारानी ने मेघकुमार की अन्तिम स्मृति के रूप मे अपने पास सुरक्षित रक्खे। फिर दो लाख रुपये देकर मेघकुमार के लिए रजोहरण और पात्र मोल लिये। फिर सहस्र पुरुष मिलकर उठावे—ऐसी शिविका (पालकी) मे बिठाकर मेघकुमार की भव्य दीक्षा-यात्रा निकाली।

भगवान् के पास पहुँचकर बहुत रोते हुए माता-पिता ने मेघकुमार को भगवान् को शिष्य-रूप मे सौंप दिया। तब मेघकुमार ने अत्यन्त वैराग्य के साथ स्वय सभी बहुमूल्य सासारिक अलकार उतार दिये और साधु-वेष धारण किया। उस समय माता-पिता ने मेघकुमार को दीक्षा को भली-भाँति दृढतापूर्वक पालने का उपदेश दिया और 'हम भी कभी दीक्षित बनें'—ऐसा शुभ मनोरथ (मन की अभिलाषा) प्रकट किया।

उसके पश्चात् मेघकुमार ने भगवान् से कहा—'भगवन्! यह सारा ही ससार दु:ख-अग्नि से अत्यन्त जल रहा है। जिस प्रकार गृहस्थ अपने घर मे आग लगने पर उसमे से

बहुमूल्य सार-वस्तुएँ निकाल लेता है, उसी प्रकार मैं इस जलते हुए ससार मे से अपनी आत्मा को बचा लेना चाहता हूँ। अत. आप कृपा करके स्वय अपने हाथो से मुझे दीक्षा दे और स्वय अपने श्री मुख से सयम योग्य शिक्षा दे। भगवान् ने मेघकुमार की प्रार्थना स्वीकार कर के उसे स्वय दीक्षा-शिक्षा दी।

रात्रि का दुःखद् प्रसंग

रात्रि का समय हुआ। भगवान् के सभी साधुओ ने छोटे-बडे के क्रम से सथारे (बिछौने) लगाये। मेघमुनि का सबसे अन्तिम सथारा (बिछौना) द्वार पर आया। रात्रि को समय होने पर मेघमुनि सोये, परन्तु उन्हे नीद नही आया। क्योकि सन्तो का द्वार पर से आना-जाना होता रहता था। कभी कोई सन्त दूसरे स्थान पर रहे हुए किसी अन्य सन्त से कुछ सीखने के लिए बाहर निकलते, तो कोई सुनाने को निकलते, तो कोई पूछने को निकलते, तो कोई सन्त शरीर के कारण से भी बाहर निकलते। सन्त ध्यान रख कर आते-जाते थे, फिर भी अन्धकार और द्वार मे ही सथारा होने के कारण कुछ सन्तो के द्वारा मेघकुमार मुनि को ठोकर लग ही जाती थी। किन्ही सन्त के द्वारा सथारे को, तो किन्ही के द्वारा पैर को, तो किन्ही के द्वारा हाथ को, तो किन्ही सन्त के द्वारा मेघकुमार के मस्तक तक को ठोकर लग जाती थी। साथ ही सन्तो के गमनागमन से मेघकुमार के सथारे मे और शरीर पर धूल भी भरती रही। इसलिए मेघमुनि की आँखो की पलके क्षण भर भी सुखपूर्वक आपस मे मिल न सकी।

'तब और अब'

मेघकुमार ससार मे राजप्रासाद मे सोते थे। वहाँ उनके लिए १. राजशय्या मक्खन-सी चिकनी और फूलो-सी कोमल हुआ

आई ? क्या उस कष्ट से तुम्हारे विचार गृहस्थ बनने के हुए ? क्या मुझसे यही कहने के लिए तुम मेरे पास आये हो ?' मेघ मुनि ने कहा—'हाँ।'

मेघकुमार के पहले के दो भव

भगवान् ने तब उनका पूर्व भव सुनाना आरम्भ किया—'मेघ! तुम्हारे इस भव से **तीसरे भव** की बात है। तुम श्वेत रङ्ग के, छह दाँत वाले, सहस्र हथिनियो के स्वामी, **सुमेरुप्रभ** नामक हस्तिराज थे। एक बार उष्ण ऋतु मे वृक्षो के आपस मे टकराने से वन मे आग लगी। तब तुम उससे बचने के लिए भागते हुए थोडे पानी और अधिक कीचड वाले एक सरोवर मे पहुँचे। बचने और पानी पीने की इच्छा से तुम उसमे घुसने लगे। पर कीचड मे ही फँस गये। न पानी के पास पहुँच सके, न पुन तीर पर पहुँच सके। बहुत ही सङ्कट की स्थिति उत्पन्न हो गई।

उस प्रसङ्ग से पहले तुमने अपने यूथ के एक छोटे बालक हाथी को निरपराध मार कर अपने हाथी-समूह मे निकाल दिया था। वह उस समय बालक था और तुम युवा थे। इस समय वह युवा था और तुम वृद्ध थे। तुम्हारे प्रति उसके हृदय मे रहा हुआ पुराना वैर तुम्हे देखकर जग गया। क्रुद्ध होकर उसने पुराना वैर निकालने के लिए तुम्हे तीखे दाँतो से बार-बार प्रहार करके घायल कर दिया। उससे तुम्हारे शरीर मे अत्यन्त वेदना हुई और पित्तज्वर उत्पन्न हो गया। उससे सात रात्रि मे मृत्यु प्राप्त कर तुम **दूसरे भव मे** पुन विंध्याचल मे एक हथिनी के पेट से लाल रग के चार दाँतवाले **'मेघप्रभ'** नामक हाथी के रूप मे

उत्पन्न हुए और युवक होने पर स्वय ७०० हथिनियो के स्वामी बन गये ।

एक बार वहाँ भी उष्ण ऋतु मे वन मे आग लगी। उसे देखकर विचार करते-करते तुम्हे जाति-स्मरण(पूर्व भव का स्मरण) हो आया। तब भविष्य मे आग से बचने के लिए, तुमने एक क्षेत्र चुना और हथिनियो की सहायता से वहाँ के सभी वृक्ष और घास का तिनका-तिनका उखाड डाला। वर्षा से जब-जब वहाँ पुन वनस्पति उगती, तो पुन तुम हथिनियो से मिलकर उन्हे उखाड़कर एक ओर डाल देते।

उसके बाद पुन एक बार वन मे आग लगी। तब तुम और तुम्हारी हथिनियाँ आदि उस आग से बचने के लिए पहले बनाए हुए तृण-काष्ठरहित सुरक्षित स्थान पर पहुँचे। वन के दूसरे—सिह से शृगाल तक—अनेक पशुओ ने भी वह स्थान पहले देख रक्खा था। वे तुम सभी से पहले आग से बचने के लिए वहाँ पहुँच गये थे। उन सबसे वह क्षेत्र बहुत भर चुका था। सभी छोटे-से बिल मे ठूँस-ठूँसकर भरे हुए चूहो की भाँति वहाँ सिकुड़ कर बैठे हुए थे। तुम भी किसी भाँति हथिनियो के साथ वहाँ एक ओर स्थल बनाकर आग से सुरक्षित खडे हो रहे।

शश (खरगोश) की रक्षा

वहाँ खडे रहते-रहते तुम्हारे शरीर मे खुजाल चली। तब तुम अपना एक पैर उठाकर शरीर खुजालने लगे। इसी बीच एक शश (खरगोश) दूसरे-दूसरे बलवान पशुओ से धक्के खाता हुआ, तुम्हारे पैर के उठाने से खाली हुए स्थान पर आकर बैठ गया। शरीर खजलाकर तुम जब पैर रखने लगे, तो वहाँ नीचे तुमने वह शश (खरगोश) बैठा पाया। उस समय तुम्हे **जीव-**

करती थी। शय्या-भवन मे २ अगर-तगर की सुगन्ध चारो ओर मँडराती रहती। दासियो के द्वारा ३ पङ्खो से मन्द-मन्द वायु भी प्राप्त होती रहती। किसी भी आवश्यकता के होने पर उसे पूरी करने के लिए ४ दास भी पैरो पर जगे खडे रहते थे।

किन्तु आज सब मे परिवर्तन था। भगवान् जहाँ विराजे थे, वही १ बगीचे के स्थान मे सोना पडा, वह भी धरती पर। आज २ सुगन्ध के स्थान पर धूल थी और ३ वायु के झोको के स्थान पर थी ठोकरे। सयोग की वात है, ४ किसी साधु ने उनसे इस सम्वन्ध मे सुख-दु ख भी न पूछा। उन्हे वह दीक्षा की पहली रात वहुत ही वडी लगी। वे अपने-आपको मानो 'मैं नरक मे हूँ'—ऐसा अनुभव करने लगे।

गृहस्थ बनने का निर्णय

उन्होने विचार किया कि—'जव मैं गृहस्थवास मे था, तव सभी साधु मेरा आदर करते थे। मधुरता से प्रश्नोत्तर करते थे। शिष्ट व्यवहार करते थे। पर आज मैं ठुकराया जा रहा हूँ। मेरी कूडे-कर्कट के ढेर-सी अवस्था वनाई जा रही है। जव प्रथम ही दिन की यह अवस्था है, तो आगे और न-जाने क्या होगा? यह जीवन भर का प्रश्न है और मुझसे सदा ऐसा सहन न होगा। अच्छा है, प्रातःकाल होते ही मैं भगवान् से पूछ कर पुनः गृहस्थ वन जाऊँ।' इस प्रकार विचार करके वडे कष्ट के साथ उन्होने उस वैरिणी रात्रि को पूरी की।

प्रात काल होने पर 'मेघमुनि' भगवान् महावीरस्वामी के चरणो मे पहुँचे। उन्होने भगवान् को वन्दन-नमस्कार किया। अव भी उनके हृदय मे रात्रि मे किया हुआ निर्णय दृढ था।

जव उन्होने माता-पिता से आज्ञा माँगी थी, तव उनके हृदय

में ज्ञान-वैराग्य की ज्योति तेजी से चमक रही थी। माता-पिता ने सासारिक १. शरीर, २ स्त्री, ३ धन-सत्कार आदि का प्रलोभन बताया, तो ज्ञान-वैराग्य के कारण निस्पृह (इच्छा-रहित) होकर उन्हे ठुकरा दिया। इसी प्रकार जब माता-पिता ने दीक्षा के दुख बताये, तो ज्ञान-वैराग्य के कारण धैर्य धारण कर उन्हे सह लेने का साहस प्रकट किया। परन्तु इस रात्रि मे ज्ञान-वैराग्य की ज्योति मन्द हो जाने से उन्हे राजप्रासाद के सुख स्मरण आ गये तथा रात्रि का नगण्य कष्ट भी नरक-सा लगा।

जघन्य पुरुष और उत्तम पुरुष

ज्ञान-वैराग्य की ज्योति जब मन्द हो जाती है, तब ऐसा ही होता है। जघन्य पुरुष (हीन कक्षा के प्राणी) ऐसी अवस्था मे दूसरो को देखकर उसके ज्ञान-वैराग्य का उपहास करते हैं। उसकी की हुई प्रतिज्ञा पर हँसी करते है। ऐसा करने से ज्ञान-वैराग्य की मन्द हुई ज्योति चमकती नही है, पर और अधिक मन्द पड जाता है। कुछ जघन्य पुरुष ऐसे भी होते है, जो ऐसे उदाहरणो को लेकर व्रतादि को लेने वाले का उत्साह मन्द कर देते है। 'चले हो दीक्षा लेने! ज्ञान-वैराग्य की बाते छाँटना सरल है, परन्तु उसे निभाना हँसी-खेल नही है।' उनकी ऐसी बाते भी दीक्षार्थी को हानि पहुँचाती है।

भगवान् तो उत्तम पुरुष ही नही, सबसे अधिक उत्तम पुरुष थे। उन्होंने मेघकुमार को उपालम्भ भी दिया, पर मधुर उपालम्भ दिया, जिससे मेघमुनि की मन्द हुई ज्ञान-वैराग्य की ज्योति फिर से तेज हुई और जीवन भर के लिए तेज हो गई।

उन्होने मेघमुनि को मधुर स्वर मे कहा—'मेघ! क्या साधुओ के आवागमन आदि के कारण तुम्हे आज नीद नही

आई ? क्या उस कष्ट से तुम्हारे विचार गृहस्थ बनने के हुए ? क्या मुझसे यही कहने के लिए तुम मेरे पास आये हो ?' मेघ मुनि ने कहा—'हाँ।'

मेघकुमार के पहले के दो भव

भगवान् ने तब उनका पूर्व भव सुनाना आरम्भ किया—'मेघ! तुम्हारे इस भव से **तीसरे भव** की बात है। तुम श्वेत रङ्ग के, छह दाँत वाले, सहस्र हथिनियो के स्वामी, **सुमेरुप्रभ** नामक हस्तिराज थे। एक बार उष्ण ऋतु मे वृक्षो के आपस मे टकराने से वन मे आग लगी। तब तुम उससे बचने के लिए भागते हुए थोडे पानी और अधिक कीचड वाले एक सरोवर मे पहुँचे। बचने और पानी पीने की इच्छा से तुम उसमे घुसने लगे। पर कीचड मे ही फँस गये। न पानी के पास पहुँच सके, न पुन तीर पर पहुँच सके। बहुत ही सङ्कट की स्थिति उत्पन्न हो गई।

उस प्रसङ्ग से पहले तुमने अपने यूथ के एक छोटे बालक हाथी को निरपराध मार कर अपने हाथी-समूह से निकाल दिया था। वह उस समय बालक था और तुम युवा थे। इस समय वह युवा था और तुम वृद्ध थे। तुम्हारे प्रति उसके हृदय मे रहा हुआ पुराना वैर तुम्हे देखकर जग गया। क्रुद्ध होकर उसने पुराना वैर निकालने के लिए तुम्हे तीखे दाँतो से बार-बार प्रहार करके घायल कर दिया। उससे तुम्हारे शरीर मे अत्यन्त वेदना हुई और पित्तज्वर उत्पन्न हो गया। उससे सात रात्रि मे मृत्यु प्राप्त कर तुम **दूसरे भव मे** पुन विन्ध्याचल मे एक हथिनी के पेट से लाल रग के चार दाँतवाले '**मेघप्रभ**' नामक हाथी के रूप मे

उत्पन्न हुए और युवक होने पर स्वय ७०० हथिनियो के स्वामी बन गये।

एक बार वहाँ भी उष्ण ऋतु मे वन मे आग लगी। उसे देखकर विचार करते-करते तुम्हे जाति-स्मरण(पूर्व भव का स्मरण) हो आया। तब भविष्य मे आग से बचने के लिए, तुमने एक क्षेत्र चुना और हथिनियो की सहायता से वहाँ के सभी वृक्ष और घास का तिनका-तिनका उखाड डाला। वर्षा से जव-जब वहाँ पुन वनस्पति उगती, तो पुन तुम हथिनियो से मिलकर उन्हे उखाड़कर एक ओर डाल देते।

उसके बाद पुन एक बार वन मे आग लगी। तब तुम और तुम्हारी हथिनियाँ आदि उस आग से बचने के लिए पहले बनाए हुए तृण-काष्ठरहित सुरक्षित स्थान पर पहुँचे। वन के दूसरे—सिंह से शृगाल तक—अनेक पशुओ ने भी वह स्थान पहले देख रक्खा था। वे तुम सभी से पहले आग से बचने के लिए वहाँ पहुँच गये थ। उन सवसे वह क्षेत्र बहुत भर चुका था। सभी छोटे-से बिल मे ठूँस-ठूँसकर भरे हुए चूहो की भाँति वहाँ सिकुड कर बैठे हुए थे। तुम भी किसी भाँति हथिनियो के साथ वहाँ एक ओर स्थल वनाकर आग से सुरक्षित खडे हो रहे।

शश (खरगोश) को रक्षा

वहाँ खडे रहते-रहते तुम्हारे शरीर मे खुजाल चली। तब तुम अपना एक पैर उठाकर शरीर खुजालने लगे। इसी बीच एक शश (खरगोश) दूसरे-दूसरे वलवान पशुओ से धक्के खाता हुआ, तुम्हारे पैर के उठाने से खाली हुए स्थान पर आकर बैठ गया। शरीर खुजलाकर तुम जब पैर रखने लगे, तो वहाँ नीचे तुमने वह शश (खरगोश) बैठा पाया। उस समय तुम्हे **जीव-**

अनुकम्पा (प्राणी-दया) की भावना उत्पन्न हुई और उस से तुमने उसकी रक्षा के लिए पैर को बीच मे रोक लिया। हे मेघ ! उस समय उस जीव-अनुकम्पा की भावना और क्रिया से तुम्हारा ससार परित्त (कम) हुआ।

(जिससे ससार घटे, ऐसी उत्कृष्ट अनुकम्पा आदि की भावनाएँ बहुत श्रेष्ठ और विशुद्ध होती हैं। यदि उनमे से किसी उत्कृष्ट, श्रेष्ठ, विशुद्ध भावना मे आयु का बध हो, तो वह जीव वैमानिक बनता है (विमान से देवता बनता है)। परन्तु हाथी को उस समय आयु का बन्ध नही हुआ। पीछे जब कुछ समय के लिए उसमे मिथ्यात्व उदय मे आ गया, तब) हे मेघ ! तुम्हे मनुष्य-आयु का बध हुआ।

अढाई रात-दिन के पश्चात् जब उस दावानल के बुझ जाने पर, सभी पशु आग के भय मे मुक्त हो गये, तब वे भूख-प्यास के मारे चारे-पानी आदि के लिए सभी दिशाओ मे इधर-उधर बिखर गये। शश भी वहाँ से चला गया। तब तुमने भी वहाँ से चले जाने के लिए वह उठाया हुआ पैर नीचे रखना आरम्भ किया। पर अढाई दिन-रात तक एक सरीखा ऊँचा रहने से वह अकड गया था। अत वह पर तो टिका नही, पर तुम पर्वत की भाँति 'धडाम' शब्द करते हुए सारे अगो से नीचे गिर पडे। वहाँ तुम्हे तीव्र वेदना हुई और पित्तज्वर हो गया। उससे तुम्हारी तीन दिन-रात मे मृत्यु हो गई।

वहाँ से मर कर तुम महाराजा श्रेणिक की धारिणी रानी के यहाँ हाथी-स्वप्न के साथ जन्मे और क्रमश बडे होने के बाद वैराग्य आने पर मेरे पास दीक्षित हुए।'

भगवान् की मेघकुमार को शिक्षा

इस प्रकार मेघकुमार के दोनो पूर्व जन्मो की घटनाओ सुना कर भगवान् उन्हे शिक्षा देने लगे—'मेघ ! पूर्व जन्म मे तुम पशु थे। उस समय तुम्हे सम्यक्त्व (धर्म-श्रद्धा) नई-नई ही आयी थी। उस पशु और नई श्रद्धा की अवस्था मे भी तुमने उस शश की रक्षा के लिए अढाई रात-दिन तक अपने एक पैर को उठाये का उठाये रक्खा और महान् कष्ट सहा।

पर १ आज तुम पशु नही, ऊँचे राजघराने मे जन्मे हुए मनुष्य हो। २ तुम्हारे मे नई धर्म-श्रद्धा नही है, परन्तु पुरानी श्रद्धा के साथ ज्ञान-वैराग्ययुक्त दीक्षा-अवस्था भी है। फिर भी तुम साधुओ के द्वारा सावधानी रखते हुए भी पहुँचे हुए कष्ट को सहन न कर सके ? ३. कहाँ तो उस दशा मे तुमने अपनी ओर से पशु के लिए महान् कष्ट सहा, कहाँ आज साधुओ की ओर से आये सामान्य कष्ट न सह सके ? फिर ४. पूर्व जन्म मे तुमने कहाँ तो अढाई रात दित तक कष्ट सहा और कहाँ इस समय तुम एक रात्रि मे ही अन्य विचार कर बैठे ? सोचो, मेघ ! आज तुम्हारे मे कितने उच्च विचार होने चाहिएँ ? कितनी अधिक कष्ट-सहिष्णुता होनी चाहिए ?'

मेघकुमार मुनि को अपना पूर्व भव सुनकर जाति-स्मरण-ज्ञान द्वारा अपना पूर्व भव स्मरण मे आ गया। भगवान् की अत्यन्त मधुर और कुशलतापूर्वक ज्ञान-वैराग्य की ज्योति को, पुन दुगुनी चमकाने वाली शिक्षा को सोचते-सोचते मेघकुमार मुनि की आँखो मे भगवान् के प्रति प्रेम के आँसुओ की धारा बह चली। उन्हे अपने रात्रि को किये गये अयोग्य निर्णय पर बहुत पश्चात्ताप हुआ। उन्होने भगवान् से कहा—'भन्ते !

अब मैं अपनी दो आँखे छोडकर शेप सारा शरीर सन्तो की सेवा मे समर्पित करता हूँ।'

पुनः स्थिरता

इस निर्णय को मेघकुमार ने जीवन भर निभाया। बीच मे थोडे समय के लिए हुई चचलता उनके जीवन मे एक कहानी मात्र वन गई। वे फिर कभी विचलित नही हुए। वरन् उन्होने सन्तो की सेवा के साथ ही साथ वडी-वडी उग्र (कठोर) तपश्चर्याएँ भी की। अन्तिम समय मे उन्होने भगवान् की आज्ञा लेकर सथारा सलेखना भी किया और समाधिपूर्वक काल किया। वे काल करके अनुत्तर (सवसे वढकर) देवलोक मे उत्पन्न हुए। आगे वे मनुष्य वनकर, दीक्षा लेकर और कर्म क्षय करके सिद्ध वनेगे।

धन्य है, भगवान् महावीर जैसे कुशल धर्माचार्य ! और धन्य हैं, मेघकुमार जैसे विनीत अन्तेवासी !!

॥ इति ४. श्री मेघ-कुमार (मुनि) की कथा समाप्त ॥

—श्री ज्ञातासूत्र, प्रथम अध्ययन के आधार पर।

शिक्षाएँ

१ स्वय कष्ट सहकर भी अनुकम्पा-भाव से दूसरो की रक्षा करो।

२. अनुकपा (दया) धर्म का मूल है।

३ उत्कृष्ट वैरागी के भाव भी गिर जाते है।

४. गिरे हुए को और मत गिराओ, न उसका दृष्टात दो।

५. उसे मधुरता और कुशलतापूर्वक शिक्षा देकर पुन. ऊपर उठाओ।

प्रश्न

१. मेघकुमार का परिचय दो।

२. मेघकुमार की दीक्षा से एक दिन पहले और एक दिन पीछे की स्थिति बताओ।

३. मेघमुनि के पूर्व जन्म बतलाओ।

४ भगवान् ने उन्हे कैसी शिक्षा देकर स्थिर किया ?

५ मेघमुनि के जीवन से तुम्हे क्या शिक्षाएँ मिलती हैं ?

५. श्री अर्जुन-माली (अनगार)

परिचय

'**राजगृह**' नामक नगर मे '**अर्जुन**' नामक एक माली रहता था। माली जाति मे वह धनवान, दैदीप्यमान और बहुत प्रतिष्ठित था। उसकी '**बन्धुमती**' नामक स्त्री थी। वह बहुत ही सुरूपवती और सुन्दरी थी।

यक्ष-पूजक

राजगृह के बाहर अर्जुनमाली का फूलो का एक बडा **बगीचा** था। उस बगीचे से कुछ दूरी पर '**मुद्गरपाणि**' नामक यक्ष का मन्दिर था। उस यक्ष के पाणि (हाथ) मे हजारपल (३$\frac{1}{3}$ मन) का एक भारी लौह मुद्गर था। इसलिए उसे लोग 'मुद्गरपाणि' कहते थे।

अर्जुनमाली की सातो पीढियाँ और दूसरे भी सहस्रो लोग उसे वर्षों से पूजते चले आ रहे थे। अर्जुनमाली भी बचपन से ही उसे पूजता चला आ रहा था। उसकी मुद्गरपाणि यक्ष पर बहुत श्रद्धा-भक्ति थी। वह उसे भगवान् मानता था। नित्य प्रातःकाल वह सुन्दर-सुन्दर बडे-बडे बहुत सुगन्धित फूलो के ढेर से पहले उसकी पूजा करता और फिर बाजार मे फूलो को बेचने जाता था।

उत्सव का दिन

एक बार जब अगले दिन राजगृह मे उत्सव होनेवाला था, तब अर्जुनमाली को लगा कि 'कल फूलो की बहुत बिक्री होगी।' इसलिए वह दूसरे दिन सूर्य उदय से पहले अँधेरा रहते-रहते बगीचे मे पहुँचा। फूल अधिक-से-अधिक चूँटे जा सके—इसलिए वह अपनी स्त्री बन्धुमती को भी साथ ले गया। पहले वह यक्ष-पूजा के योग्य फूल चूँटकर यक्ष की पूजा करने चला। बन्धुमती भी उसके साथ हो गई।

ललितागोष्ठी का दुर्व्यवहार

उस राजगृह नगरी मे ललिता नामक एक मित्रमण्डली रहती थी। उस मण्डली के सदस्य नाग जैसे दुष्ट स्वभाववाले बहुत ही क्रोधी, भयावने और विषैले थे। उनके माता-पिता और राजगृही की जनता भी उनसे बहुत भय खाती थी। कोई उन्हे कुछ कह-सुन भी नही पाता था। वे जो कुछ करते, सब उसे सुकृत (अच्छा किया, यो ही) मानते थे। कुछ लोग कहते है कि, उन्हे बचपन मे राजा से वरदान मिला था कि 'तुम जो कुछ करोगे, वह अच्छा माना जायगा।' इस वरदान के बाद वे बिगड गए थे।

उस मण्डली के छ पुरुष उस दिन मुद्गरपाणि यक्ष के मन्दिर के पास हास्य-विनोद आदि कर रहे थे। उन्होंने अर्जुन के साथ वन्धुमती को आते देखा। उसके सौंदर्य और रूप के लोभी बनकर उन्होंने परस्पर यह निर्णय किया कि 'हम अर्जुनमाली को बाँधकर इस सुन्दरी को अवश्य भोगेंगे।' पापी लोग सदा ही जहाँ-कही कुछ ऐसा देखते हैं, पाप का निश्चय कर लेते है। वे छहो अपने निर्णय की पूर्ति के लिए मन्दिर के कपाटो के पीछे लुक-छिपकर चुपचाप खडे हो गए।

अर्जुनमाली को इसकी कुछ भी जानकारी नही हुई। उसके हृदय मे एकमात्र मुद्गरपाणि यक्ष की पूजा का ही विचार चल रहा था। जव वह मन्दिर मे प्रवेश करने लगा, तब वे छहो एक साथ वडी शीघ्रता से कपाटो मे बाहर निकल आए और सबने मिलकर अर्जुनमाली को पूरा पकड लिया। फिर उन्होने अर्जुनमाली के हाथ-पैर तथा सिर को उलटा घुमाकर बाँधा और उसे एक ओर डाल दिया। पीछे वे छहो बन्धुमती को भोगने लगे। अपने पति को कष्ट मे और अपने शील को भग होता देखकर बन्धुमती चिल्लाई नही, जिससे कि दूसरे लोग सहायता के लिए आकर अर्जुनमाली को और उसे छुडा सके। वह स्वय अपनी शील-रक्षा के लिए भागी भी नही, परन्तु वह व्यभिचारिणी उन व्यभिचारियो के साथ व्यभिचार मे लग गई।

अर्जुनमाली को क्रोध

अर्जुनमाली को यह देखकर बहुत क्रोध आया। 'अरे! ये दुष्ट कितने पापी है कि, छहो ने मिलकर मुझे पकडकर, बाँधकर एक ओर डाल दिया और मेरी ही आँखो के सामने इस

प्रकार सब मिलकर नग्न व्यभिचार कर रहे है ।' उसे अपनी स्त्री पर भी वहुत क्रोध आया। 'अरी ! यह कैसी कुलटा है, मैं जो इसका पति हूँ, मेरे कष्ट का इसे कुछ भी दु ख नही ? इसे अपने शील का भी विचार नही ? कितनी निर्लज्ज है कि 'मेरी ही आँखो के सामने व्यभिचार-सेवन करते हुए इसकी आँखो मे भी कुछ लज्जा नही ?'

उसे सबसे अधिक क्रोध उस मुद्गरपाणि यक्ष पर आया। "अरे ! जिस मूर्ति की मेरी सात पीढियाँ श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा करती चली आई है, मैं भी बचपन से जिसकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा करता चला आया हूँ, वह मुद्गरपाणि अपने ही मन्दिर मे अपनी ही मूर्ति के सामने मेरी यह दुरवस्था देख रहा है ? और वह मेरी सहायता, मेरी रक्षा नही करता ? लगता है, सचमुच यह केवल लकड़ा है ! (मूर्ति लकडे की बनी हुई थी।) परन्तु इसमे मुद्गरपाणि भगवान् निवास नही करते।"

छह पुरुष और पत्नी की हत्या

मुद्गरपाणि यक्ष ने अर्जुन के ये विचार जाने। वह अर्जुनमाली के शरीर मे घुसा और उसके सारे बन्धन तडातड करके उसी समय तोड डाले। अर्जुन बन्धनमुक्त हुआ, उसकी आपत्ति-अवस्था दूर हुई। अब जिन पर अर्जुनमाली को क्रोध था, उन्हे नाश करना था। इसलिए मुद्गरपाणि यक्ष ने मूर्ति के हाथ मे रहा ३$\frac{1}{3}$ मन का लौह मुद्गर उठाया और उन छहो मित्रो और बन्धुमति पर चलाकर उन्हे मार डाला।

शक्ति या वरदान का दुरुपयोग करने के कारण उन छहो पुरुषो की मृत्यु हुई तथा शील भङ्ग करने के कारण बन्धुमति की हत्या हुई। इसलिए कभी भी अधर्म का सेवन नही करना

चाहिए तथा धर्म को नही छोडना चाहिए। जो अधर्म-सेवन करते हैं और धर्म को छोड देते हैं, उन्हे परभव मे तो कष्ट मिलता ही है, कभी-कभी इस भव मे भी मृत्यु तक का कष्ट उठाना पडता है।

नित्य का हत्यारा

अर्जुनमाली ने जिस काम के लिए यक्ष को बुलाया था, वह काम समाप्त हो चुका था, परन्तु फिर भी यक्ष अर्जुनमाली के शरीर मे पैठा हुआ राजगृह नगरी के चारों ओर घूमने लगा और नित्य छह पुरुषो और एक स्त्री की हत्या करने लगा।

श्रेणिक को इस बात की सूचना मिली। उन्होने सारे नगर मे घोषणा करवाई कि 'कोई भी बिना सावधानी रक्खे बार-बार नगर के बाहर जाना-आना नही करें।' तथा नगर के बडे-बड़े द्वार भी बन्द करवा दिए। नगर में अर्जुनमाली की इस नित्य हत्या-क्रिया का बहुत भय छा गया। कोई भी नगरी के बाहर जाता नही था। यदि कोई बिना इच्छा भी किसी काम आदि के लिए बाहर चला जाता और अर्जुनमाली की आँखो मे आ जाता, तो वह मारा जाता था।

इस प्रकार दिन बीतते-बीतते पाँच महीने और तेरह दिन हो गये। इतने दिनों मे ९७८ पुरुषो (१६३ × ६ = ९७८) और १६३ स्त्रियो (१६३ × १ = १६३) की हत्याएँ हुई। सब हत्याएँ ११४१ (९७८ + १६३ = ११४१) हुई।

कुदेव और सुदेव की श्रद्धा का अन्तर

इनमे पहले की सात हत्याएँ मुख्य रूप से अर्जुनमाली के कारण हुई तथा पिछली ११३४ हत्याएँ मुख्य रूप से मुद्गरपाणि

यक्ष के कारण हुई। मुद्गरपाणि यक्ष लौकिक देव था। वह अज्ञानी, अव्रती, मिथ्यात्वी, रागी और द्वेषी था। निर्दोष अरिहंतदेव को छोडकर ऐसे सदोष अन्य देव-देवियो की श्रद्धा करने का, भक्ति करने का व पूजा करने का कई बार ऐसा दुष्फल होता है। ये देव वस्तुत. हमारी कोई सहायता नहीं करते। यदि पूर्व मे हमारे ही कुछ शुभ पुण्य कर्म कमाये हुए हो, तो ये कुछ सहायता करते है। परन्तु दु ख देने वाले मूल कारण जो कर्म है, उन्हे ये नष्ट नही कर सकते तथा नये आनेवाले कर्मो को ये रोक भी नही सकते। वरन् कई बार ये नये पापों मे डालकर अधिक पापी बना देते हैं, जैसा कि अर्जुनमाली के लिए हुआ। यदि अर्जुनमाली मुद्गरपाणि यक्ष की पूजा न करता, तो उसे हत्यारा वनना नही पडता।

एक अरिहत ही ऐसे देव है—'जिनकी श्रद्धा, भक्ति व पूजा हमारे पुराने कर्मों का क्षय करती है और नये आते हुए पाप-कर्मों को रोकती है।' जब पुराने कर्मो का धीरे-धीरे क्षय हो जाता है और नये पाप-कर्मो का वध नही होता, तो आत्मा निर्मल वन जाती है, और उस पर कभी कष्ट नही आता। सामान्य मनुष्य तो क्या देव-शक्ति भी उस पर वार नही कर पाती। यही आगे इस दृष्टान्त मे बतलाया जायेगा।

अर्जुनमाली के द्वारा हत्या चलते-चलते जब १६३ दिन हो गये, तब राजगृही मे अरिहंतदेव श्री **भगवान् महावीर स्वामी** का पधारना हुआ। वे **गुणशील** नामक चैत्य (व्यन्तरायतन) मे विराजे। राजगृह मे ये समाचार पहुँचे, पर कोई अरिहत दर्शन का साहस नही कर सका। सभी अर्जुनमाली के मुद्गर से डरते थे। सभी को धर्म से अपने प्राण अधिक प्यारे थे।

अरिहंत-भक्त 'सुदर्शन'

उसी राजगृह मे सेठ 'सुदर्शन' नामक एक अरिहत के श्रावक रहते थे। उन्हें प्राण से धर्म अधिक प्यारा था। वे जानते थे कि—'प्राण तो अनन्त वार लुट चुके हैं। प्राणो की रक्षा करते-करते कभी प्राणो की रक्षा नही हुई। अन्त मे मृत्यु आ ही जाती है। धर्म ही हमारी वस्तुत रक्षा कर सकता है और मोक्ष पहुँचाकर पूर्ण अमरता दे सकता है।' उन्होने माता-पिता से हाथ जोडकर कहा—"माता-पिता! भगवान् महावीरस्वामी अपने नगर के बाहर ही पधार गये है। मैं उनके दर्शन करने जाना चाहता हूँ।" माता-पिता बोले—"बेटा तुम्हारी भावना बहुत उत्तम है, हम भी भगवान् का दर्शन करना चाहते हैं, पर बाहर हत्यारा अर्जुनमाली घूमता है। तुम दर्शन के लिए बाहर जाते हुए कही उससे मारे न जाओ, अतः तुम यही से भगवान् को वदन-नमस्कार कर लो।"

सुदर्शन ने कहा—'माता-पिता! भगवान् तो अपनी नगरी मे पधारे और मैं घर ही बैठा रहूँ? यही से वन्दन करूँ? यह कैसे हो सकता है? आप मुझे आज्ञा दीजिए, जिससे मैं भगवान् की सेवा मे साक्षात् पहुँच कर दर्शनामृत को आँखो से पीऊँ और चरणो मे मस्तक झुका कर विधि सहित वन्दना करूँ।'

माता पिता ने उन्हे बहुतेरा समझाया, पर सुदर्शन दृढ रहे, कायर न बने। तब विवेकी माता-पिता ने उन्हे इच्छा न होते हुए भी जाने की आज्ञा दे दी।

सुदर्शन की श्रद्धा-दृढ़ता

माता-पिता की आज्ञा पाकर विनयी सुदर्शन भगवान् के सु-दर्शन करने चले। कुछ लोग उनकी प्रभु के प्रति श्रद्धा-भक्ति

और धर्म के प्रति दृढ-श्रद्धा की सराहना करने लगे—'धन्य है सुदर्शन ! कि, मृत्यु का भय छोड कर भगवान् के दर्शन के लिए जा रहा है। हम कायरो को धिक्कार है कि, हम घर मे ही स्त्री की भाँति छुपे बैठे हैं।' कुछ लोग सुदर्शन की हँसी करने लगे—"देखो ! इस धर्म के धोरी को ! दर्शन करने जा रहा है। पर बाहर निकलते ही ज्यो ही शिर पर अर्जुनमाली का मुद्गर पडेगा, सारा धर्म-कर्म विसर जायगा।' पर सुदर्शन ने किसी भी ओर ध्यान नही दिया। उनके हृदय मे एकमात्र अरिहत-दर्शन की भावना थी।

सुदर्शन नगरी के बाहर निकले। गुणशील बगीचे का मार्ग मुद्गरपाणि यक्ष के मन्दिर के पास से होकर जाता था। वे निर्भय होकर बढे जा रहे थे। दूर से अर्जुनमाली के शरीर मे रहे हुए यक्ष ने उन्हे आते हुए देखा। देखते ही वह क्रुद्ध हुआ और मुद्गर उछालता-घुमाता हुआ उनकी ओर बढा।

सुदर्शन ने भी अर्जुन को आते देख लिया, पर उनका हृदय दृढ था। वे न इधर-उधर भागे, न पीछे मुडे। जहाँ थे, वही खडे रह गये। नीचे की भूमि का प्रतिलेखन किया ('जीव आदि हैं या नही ?' यह देखा)। सिद्धो की और अरिहतदेव श्री भगवान् महावीरस्वामी की स्तुति की (दो नमोत्थुणं दिये)। फिर अट्ठारह पाप त्याग कर सागारी ('बच जाऊँ, तो खुला हूँ' यह आगार सहित) यावज्जीवन (जीवन भर के लिए) अनशन कर लिया।

कुदेव की हार

मुद्गरपाणि यक्ष ने सुदर्शन के पास पहुँच कर उन पर मुद्गर-प्रहार करना चाहा, पर उसे अरिहंत-भक्त सुदर्शन श्रावक

का तेज सहन नही हुआ। तब उसने उनके चारो ओर मुद्गर घुमाते हुए तीन चक्कर लगाये, फिर भी वह सुदर्शन पर आक्रमण करने का साहस नही कर सका। तब उसने सुदर्शन को टकटकी लगाकर बहुत देर तक देखा, पर सुदर्शन की आँखो मे कोई अन्तर न आया। तब अन्त मे वह मुद्गरपाणि यक्ष निराश होकर अर्जुनमाली के शरीर को छोड कर चला गया। साथ मे अपना मुद्गर भी लेता गया।

यह हुआ अरिहतदेव पर श्रद्धा का फल! जन्म-जन्म और भव-भव तक अरिहतदेव पर श्रद्धा रखने के फल मे आज सुदर्शन की शक्ति कितनी बढ गई? जिसे अर्जुनमाली भगवान् मानता था, आपत्ति से छुडाने वाला मानता था, जिसने सैकडो की हत्याएँ की, वह यक्ष भी अरिहत-भक्त सुदर्शन श्रावक के सामने हाथ चलाना तो दूर रहा, ठहर भी न सका। उसे अपना मुद्गर लेकर लौट जाना पडा।

सुदर्शन का सुयोग

अर्जुनमाली का शरीर अब तक यक्ष की शक्ति से चलता था। उसकी निजी शक्ति निष्क्रिय थी। अत यक्ष के चले जाते ही अर्जुनमाली धडाम करता हुआ सारे अगो से नीचे गिर पडा।

यह देखकर सुदर्शन ने सोचा कि अब 'उपसर्ग (सकट) दूर हो गया है।' इसलिए उन्होने अनशन पार लिया। कुछ समय मे अर्जुनमाली स्वस्थ हुआ। उसने खडे होकर सुदर्शन से पूछा—'तुम कौन हो? कहाँ जा रहे हो?' सुदर्शन बोले—'मैं अरिहतदेव भगवान् महावीर का श्रावक हूँ और उन्ही के दर्शन के लिए तथा वाणी सुनने के लिए जा रहा हूँ।' अर्जुन

ने कहा—'मैं भी तुम्हारे साथ भगवान् के दर्शन के लिए चलना चाहता हूँ।' सुदर्शन ने कहा—'बहुत सुन्दर विचार है तुम्हारा! चलो, साथ चलो, बहुत प्रसन्नता की बात है। भगवान् के चरणों मे पहुँच कर तुम्हारा उद्धार हो जायगा। भगवान् सभी को तारने वाले है। वे वीतराग है। उन्हे किसी के प्रति राग-द्वेष नही होता।'

सुदर्शन ने अर्जुनमाली के प्रति घृणा नही की। घृणा की भी क्यो जाय? कौन ऐसा है, जो किसी भी भव मे हत्यारा न रह चुका हो? फिर अर्जुनमाली तो स्वय इस भव का हत्यारा भी न था। जो ७ हत्याएँ अर्जुनमाली करना चाहता था, वे तो अर्जुनमाली के अपराधी ही थे। अपराधी की हत्या करने वाला हत्यारा नही माना जाता। शेष हत्याएँ तो मुख्य करके यक्ष के कारण ही हुई थीं। साथ ही अर्जुनमाली के सुधार की सम्भावना भी थी। जिसके सुधार की सम्भावना हो, उसके प्रति घृणा करने से वह सुधरता हुआ भी रुक जाता है। 'मैं पाप करता हूँ, इसलिए ये मुझ पर घृणा करते है'—इस प्रकार पापी के हृदय मे पाप के प्रति घृणा उत्पन्न करने के लिए कदाचित् पापी पर घृणा की जाय, तो वह कार्य किसी अपेक्षा उचित भी है, परन्तु जो सुधर ही रहा हो, उस पर घृणा करना तो व्यर्थ ही है। यह बात सुदर्शन भली भाँति जानते थे। इसलिए उन्होने अर्जुनमाली से घृणा नही की। वे प्रेम से अर्जुनमाली को साथ मे लिए भगवान् महावीरस्वामी के चरणो मे पहुँचे।

दीक्षा : जीवन-परिवर्तन

भगवान् महावीरस्वामी केवल-ज्ञानी थे, घट-घट के अन्तर्यामी थे। उन्हे अर्जुनमाली के उद्धार के योग्य ही हिंसा-

अहिंसा, बन्ध-निर्जरा आदि पर मार्मिक उपदेश सुनाया। सुनकर अर्जुनमाली को अपने पापो पर बहुत पश्चात्ताप हुआ। उसे वैराग्य आ गया। उसने भगवान् से प्रार्थना की कि 'भगवन्! आप मुझे दीक्षा दे। मुझे पापो से उबारे।' भगवान् ने उसे दीक्षा दे दी।

आदर्श क्षमा

अब अर्जुनमाली अर्जुन अनगार (मुनि) बन गये। उन्हे अपने बँधे हुए कर्मों को क्षय कर डालने की बहुत लगन लगी। उन्होने इसके लिए दीक्षा के ही दिन भगवान् से अभिग्रह लिया कि—'भगवन्! मै आजीवन बेले-बेले पारणा करूँगा।' भगवान् की आज्ञा पाकर वे अभिग्रह के अनुसार बेले-बेले पारणा करने भी लग गये।

अर्जुनमुनि गोचरी लेने स्वय नगर मे जाते। कुछ अनसमझ लोग मुनि बन जाने के बाद भी उनसे घृणा करते। कोई कहता 'अरे! इस हत्यारे ने मेरे बाप को मार डाला!' कोई चिल्लाती—'अरे! इस निदय ने मेरी माँ मार डाली!' इस प्रकार पृथक्-पृथक् लोग भाई, बहन, बेटी, बहू आदि के विषय मे कहते। कोई उन्हे अपशब्द कहता (गाली भी देता)। कोई उन पर थूक भी देता। कोई उन पर ककर-पत्थर आदि भी फेक देता। कोई मार्ग मे चलते उन्हे मार भी देता था। पर अर्जुनमुनि आँख उठाकर भी उन्हे नही देखते थे, मन मे भी उनके प्रति द्वेष नही लाते थे। जो-कुछ होता, सब सह लेते थे।

कही उन्हे कुछ रोटी का भाग मिल जाता, तो पानी नही मिलता। कही किसी घर कुछ पानी मिल जाता, तो आहार नही मिलता। पर वे उदास नही होते थे। वे सोचते—'मुझ

पर पहले यक्ष चढा था, इसलिए घोर हत्यारा बनकर मैंने बहुत पाप किये। इन पर अज्ञान का भूत चढा है, इसलिए ये ऐसा करते है। जब अपना आपा नही रहता, तब ऐसा ही हुआ करता है। इसलिये मुझे खेद नही होना चाहिए। मुझे तो मेरा अपना पाप देखना चाहिए। मैं १,४१ स्त्री-पुरुषो की हत्या का निमित्त बना। यदि मैं मिथ्यादेव की श्रद्धा-भक्ति-पूजा न करता, तो इतनी हत्याएँ क्यो होती ? इत्यादि विचारो के साथ मुझे समता रखनो चाहिये। इसमे मेरे कर्मों की निर्जरा होगी।'

मोक्ष

इस प्रकार निर्जरा की भावना करते हुए और उन उपसर्गों को सहन करते हुए अर्जुनमुनिजी को साढे पाँच महीने हो गये। उन्होने जितने दिनो मे पाप कमाये, प्राय उतने ही दिनो में उनकी निर्जरा भी कर डाली। जब उनका शरीर थक गया, तो उन्होने भगवान् की अनुमति लेकर सथारा कर लिया। सथारा १५ दिन चला। अन्तिम श्वासोच्छवासो मे उन्हे केवल-ज्ञान उत्पन्न हुआ, आठ कर्म क्षय हुए। अन्तिम समय मे काल करके अर्जुनमुनि मोक्ष पधार गये।

कहाँ सदोषी सरागी मुद्गरपाणि यक्ष ! जिसने स्वयं व्यर्थ ११३४ हत्याएँ की और निष्पाप अर्जुन को भी पापी बनाया और कहाँ निर्दोष वीतराग अरिहत देव ! जिनके उपदेश ने पापी अर्जुन को पाप से उबारा।

धन्य है, ऐसे अरिहतदेव भगवान् महावीर ! धन्य है, ऐसे अरिहत-उपदेशानुसार चलने वाले अर्जुनमुनि !! और धन्य है, ऐसे अरिहत पर श्रद्धा रखने वाले सुदर्शन श्रावक !!!

॥ इति ५. श्री अर्जुन-माली (अनगार) की कथा समाप्त ॥

—श्री अतकृत सूत्र, वर्ग ६, अध्ययन ३ के आधार से।

शिक्षाएँ

१. सच्चे भगवान् (देव) अरिहंत ही हैं।
२. अरिहंत के भक्त को किसी से भय नहीं।
३. घृणा मत करो, उद्धार में सहायक बनो।
४. पश्चात्ताप और तप से पापी भी मोक्ष पाते हैं।
५. अधर्मी और धर्म-त्यागी इस लोक में भी दुःख पाता है।

प्रश्न

१ कुदेव-श्रद्धा और सुदेव-श्रद्धा के फल में अन्तर बताओ।
२. कुदेव-श्रद्धा से अर्जुनमाली का पतन कैसे हुआ ?
३. सुदेव-श्रद्धा से सुदर्शन की रक्षा और अर्जुनमाली का उत्थान कैसे हुआ ?
४. सिद्ध करो कि 'अर्जुनमाली आदर्श क्षमावान् थे।'
५. पापी से घृणा करें या नहीं ?

◆

६. श्री कामदेव श्रावक

परिचय

चम्पानगरी मे 'कामदेव' नामक बहुत प्रतिष्ठित सर्वमान्य सेठ रहते थे। उनकी 'भद्रा' नामक सुरूपा भार्या (पत्नी) थी। उनके कई छोटे-बड़े सुयोग्य पुत्र भी थे। पत्नी और पुत्र सभी

कामदेव के अनुकूल थे। कामदेव के पास १८ करोड स्वर्ण-मुद्राओ का धन था। उनमे से छह करोड कोष मे, ६ करोड वृद्धि (ब्याज, व्यापार) मे तथा छह करोड स्वर्ण-मुद्राएँ घर-विस्तार मे लगी थी। कामदेव के छह गोकुल थे। प्रति गोकुल मे १०,००० दस सहस्र पशु थे।

इस प्रकार कामदेव गृहस्थ परिवार, सपत्ति, सुख, प्रतिष्ठा, मान्यता आदि सबसे सपन्न थे।

धर्म-ग्रहण

एक वार **भगवान् महावीरस्वामी** उस नगरी के बाहर **पूर्णभद्र** नामक चैत्य (व्यन्तरायतन) मे पधारे। ये समाचार पाकर कामदेव गृहस्थ भगवान् के दर्शन करने तथा वाणी सुनने गये। भगवान् की वाणी सुनकर उनकी जैन धर्म पर श्रद्धा हुई। उन्हे लगा कि 'परिवार, धन, प्रतिष्ठा आदि की यह मेरी सारी सम्पन्नता वास्तविक सुखदायी नही है, न यह परभव मे साथ ही चलेगी। विश्व मे प्राणी के लिए केवल एक धर्म ही सच्चा सुखदायी है और भव-भव का साथी है। इसलिए मुझे ससार त्याग करके दीक्षा ग्रहण करना उचित है। पर अभी मुझ मे वैसी तीव्र भावना नही है, अत. दीक्षा नही तो मुझे श्रावक-व्रत तो ग्रहण करना ही चाहिए।' यह सोच कर उन्होने भगवान् से सम्यक्त्व और श्रावक के १२ व्रत अगीकार किये। पीछे नवतत्व की जानकारी आदि करके वे २१ गुण-सम्पन्न श्रेष्ठ श्रावक बन गये। यहाँ तक कि 'भगवान् के श्रावको मे वे नामाकित मुख्य श्रावको मे गिने जाने लगे।'

चौदह वर्ष तक उन्होने गृहस्थ व्यवहार चलाते हुए श्रावकत्व का पालन किया। फिर उन्हे लगा कि 'गृहस्थी के

झंझटो से धर्म-चिन्तन और धर्म-करणी मे बहुत बाधा पडती है।' तब उन्होने गृहस्थी का सारा भार अपने बड़े पुत्र पर डाल कर निवृत्ति ले ली। वे अपनी पौषधशाला मे ही जाकर रहने लगे। वही वे पौषध आदि धर्म-ध्यान करते और जातीय कुलो से भिक्षा माग कर अपना काम चलाते थे।

पिशाच का पहला उपसर्ग

एक बार की बात है। उन्होने पौषध किया था। दिन तो बीत गया, पर जब आधो रात का समय हुआ, तब उनकी पौषधशाला के बाहर एक 'मिथ्यादृष्टि देव' आया। उसने भयकर **पिशाच** का रूप बनाया। टोपने-सा शिर, बाहर निकली हुई लाल-लाल आँखे, सूपडे-से कान, भेड का सा नाक, घोडे को पूंछ-सी मूंछे, ऊँट के जसे लम्बे-लम्बे ओठ, फावड़े से दाँत, लपलपाती जोभ—इस प्रकार पिशाच का रूप बहुत ही विकृत था। ताड़-सा लम्बा, कपाट-सा चौडा, काँख मे सर्प लपेटे, वह पिशाच हाथ मे चमचमाता नोला खड्ग (तलवार) लेकर भयावना शब्द करता हुआ पौषधशाला मे कामदेव के पास आया और बोला—'अरे! कामदेव! मृत्यु के चाहने वाले! कुलक्षरण! अशुभ दिन के जन्मे! लज्जादि रहित! धर्म-मोक्ष के चाहने वाले! धर्म-मोक्ष के प्यासे! तुझे पौषध आदि व्रत से डिगना उचित नही है। परन्तु आज यदि तू धर्म से नहीं डिगता है, उसे नही छोड़ता है, तो मैं आज इस खड्ग से तेरे खण्ड-खण्ड कर दूगा, जिससे तू अकाल मे ही बहुत दुःख पाता हुआ मर जायगा।'

पिशाच-रूपी देव के ऐसा कहने पर कामदेव भयभीत नही हुए, क्षुब्ध नही हुए, भागे भी नही, परन्तु उपसर्ग समझ कर

सागारी सथारा (अनशन) ग्रहण कर लिया और चुपचाप धर्म-ध्यान करते रहे। ऐसा देख कर उस देव ने कामदेव को अपनी उपर्युक्त बात दूसरी और तीसरी बार भी कही, परन्तु कामदेव के तन-मन मे कोई अन्तर नही आया। तब देव ने क्रुद्ध होकर, भौहे चढाकर सचमुच ही खड्ग से कामदेव के खण्ड-खण्ड कर दिये। उससे कामदेव को बहुत कष्ट पहुँचा। सुख का लेश भी नहीं रहा। ऐसी उस वेदना को सहन करना बहुत कठिन था, फिर भी कामदेव बहुत ही शान्ति से उस वेदना को सहन करते रहे।

हाथी का दूसरा उपसर्ग

यह देखकर उस देव को कुछ निराशा हुई। वह पौषधशाला से बाहर निकला। इस दूसरी बार मे उसने अपना पर्वत-सा लम्बा-चौडा, तीखे-तीखे दाँत वाला, लम्बी-सी सूँडवाला, मेघ-सा काला और मदमाते भयकर **हाथी** का रूप बनाया तथा पौषधशाला में आकर कहा—'अरे! कामदेव! मृत्यु के चाहने वाले!—इत्यादि। यदि तू धर्म से नहीं डिगता, व्रतों को नही छोडता, तो मैं अभी तुझे सूँड से पकडकर पौषधशाला से बाहर ले जाऊँगा। वहाँ तुझे आकाश मे उछाल कर फिर तीखे दाँतो पर झेलूँगा। फिर भूमि पर डालकर पैरो तले तीन बार रौदूँगा। जिससे तू अकाल मे ही बहुत दुख पाता हुआ मर जायगा।'

कामदेव, हाथी के इन वचनो को सुनकर भी न डरे, वरन् पहले के समान ही निर्भय निश्चल चुपचाप धर्म-ध्यान करते रहे। यह देखकर उस हाथीरूप-धारी देव ने कामदेव को अपनी उपर्युक्त बात दूसरी और तीसरी बार भी कही। परन्तु कामदेव के तन-मन मे कोई अन्तर नही आया। तब देव ने क्रुद्ध

होकर सचमुच ही कामदेव को सूंड से पकड कर पौषधशाला से बाहर निकाला, आकाश मे उछाला, तीखे-तीखे दाँतो पर झेला और भूमि पर डालकर तीन बार परो से बहुत रौदा। उससे भी कामदेव को बहुत कष्ट पहुँचा। फिर भी कामदेव उस कठिन वेदना को बहुत शाति से ही सहन करते रहे।

सर्प का तीसरा उपसर्ग

यह देख कर उस देव को बहुत निराशा हुई। उसका दूसरा उपसर्ग भी कामदेव को डिगा नही सका। तब वह पौषध-शाला से बाहर निकला। तीसरी बार उसने मसो (स्याही) सा काला, चोटी-सा लम्बा, लपलपाती दो जीभ वाला, लोही-सी आँखो वाला, बहुत बडी फण वाला, आँखो मे भी विषवाला, महा फूंकार करता, भयकर **सर्प** का रूप बनाया और पौषधशाला मे आकर कहा—'अरे ! कामदेव ! मृत्यु के चाहने वाले !—इत्यादि। यदि तू धम से नही डिगता, व्रतो को नही छोडता, तो मैं अभी सर-सर करता तेरी काया पर चढ जाऊँगा। पिछली ओर से फाँसी के समान तीन बार तेरी ग्रीवा (गले) को लपेटूँगा। फिर विष वाली तीखी दाढो से तेरे हृदय पर ही कई दश दूँगा। जिससे तूं अकाल मे ही बहुत दु ख पाता हुआ मर जायगा।

कामदेव सर्प के इन वचनो को सुनकर भी पहले के समान ही निर्भय और निश्चल हो चुपचाप धर्म-ध्यान करते रहे। यह देखकर उस सर्प-रूपधारी देव ने अपनी उपर्युक्त बात दूसरी और तीसरी बार भी कही, परन्तु कामदेव के तन-मन मे कोई अन्तर नही आया। तब देव क्रुद्ध होकर सचमुच ही सर-सर करता कामदेव की काया पर चढा। पिछली ओर से फाँसी के समान ग्रीवा को तीन बार लपेटा, फिर विष वाली तीखी दाढो से हृदय

पर कई दश दिये। उससे भी कामदेव को बहुत कष्ट पहुँचा, फिर भी कामदेव उस कठिन वेदना को बहुत शांति से ही सहन करते रहे।

यह देखकर देव पूरा निराश हो गया। वह पिशाच, हाथी और सर्प के तीन-तीन बडे-बडे उपसर्ग करके भी कामदेव को धर्म और व्रत से डिगा नही सका। तब वह पौषधशाला से बाहर निकला। इस बार उस देव ने अपना वास्तविक देव का ही रूप बनाया। चमकता सुनहरा शरीर, उज्ज्वल बहुमूल्य वस्त्र, भाँति-भाँति के उत्कृष्ट कोटि के हार आदि आभूषणयुक्त तथा दसो दिशाओ को प्रकाशित करनेवाला दिव्य वह देव-रूप था। फिर उसने पौषधशाला मे आकर कहा—

देव-प्रशंसा

'हे कामदेव ! श्रमणोपासक ! (साधु की उपासना करने वाले !) तुम धन्य हो। तुम बडे पुण्यवान हो, तुम कृतार्थ हो, तुम सुलक्षण हो, तुम्हारा जन्मना और जीना सफल है, क्योंकि तुम्हारी निर्ग्रन्थ प्रवचन (जैनधर्म) मे ऐसी दृढ श्रद्धा है कि, देवता भी तुम्हे डिगा नही सकते।

'हे देवानुप्रिय ! (यह आर्य सम्बोधन है) पहले देवलोक के इन्द्र ने अपनी लम्बी-चौडी सभा के बीच तुम्हारी प्रशंसा करते हुए कहा था कि, कामदेव श्रमणोपासक निर्ग्रन्थ प्रवचन मे इतने दृढ हैं कि, उन्हे देव-दानव कोई भी धर्म से डिगा नही सकता।' परन्तु मुझे उस बात पर विश्वास नही हुआ। इसलिए मै तुम्हारी धर्म-दृढता की परीक्षा लेने के लिये यहाँ आया था। तीन बडे-बडे उपसर्ग देकर अब मैंने आज प्रत्यक्ष ही देख लिया है कि, आपकी निर्ग्रन्थ प्रवचन (जैनधर्म) मे अचल श्रद्धा है। हे

देवानुप्रिय ! मैंने जो आपको उपसर्ग दिये, उसके लिये मैं आपसे बार-बार क्षमा चाहता हूँ। आप क्षमा करे। आप क्षमा करने योग्य है। अब मैं पुन इस प्रकार कभी आपको उपसर्ग नही दूँगा।'

इस प्रकार उस देव ने कामदेव की स्वय प्रशसा की और उन्हे इन्द्र द्वारा की गई प्रशसा सुनाई। (उनको अपने यहाँ आने का और उपसर्ग देने का कारण बताया) तथा उनको उपसर्गों में भी धर्म-दृढ रहनेवाला बताकर उनके पैरो मे पडकर उनसे वार-बार क्षमा-याचना की। फिर वह देवता जहाँ से आया था, उधर ही चला गया।

समवसरण में

कामदेव ने अपने को निरुपसर्ग (उपसर्ग रहित) जानकर अपना सागारी मथारा पार लिया। दिन उगने पर उन्होंने अपनी नगरी मे भगवान् को पधारे हुए जाना। इसलिए वे पौषध पालने के पहले ही भगवान् के दर्शन करने तथा वाणी सुनने के लिए गये।

भगवान् ने सबको पहले धर्म-कथा सुनाई। फिर धर्म-कथा समाप्त होने पर सबके सामने कामदेव से कहा—'क्यो कामदेव ! क्या इस पिछली रात को तुम्हे देवता के द्वारा पिशाच, हाथी और सर्प-रूप से तीन-तीन बार भयकर उपसर्ग हुए ?' इत्यादि देवता के आने से लेकर चले जाने तक का बीतक सुना कर भगवान् ने कहा—'कामदेव ! क्या यह सच है ?' कामदेव ने कहा—हाँ, सच है।'

साधु-साध्वियों को शिक्षा

कामदेव के द्वारा हाँ भरने पर भगवान् ने बहुत-से साधु-साध्वियो को सबोधन करके कहा—आर्यो ! गृहस्थ श्रमणोपासक, गृहस्थवास मे रहता हुआ भी जब देवादि के उपसर्गों को भली-भाँति सहन कर सकता है, तो जिन्होने घर-बार त्याग दिया, जो सदा अरिहतो की वाणी सुनते रहते है, उनके लिए देवादि उपसर्ग सहना शक्य है, अशक्य नही है। अत. आपको भी कामदेव का आदर्श दृष्टान्त ध्यान मे रखते हुए सभी उपसर्गों को दृढतापूर्वक सहना चाहिए।

सभी साधु-साध्वियो ने अपने से छोटे गृहस्थ के दृष्टान्त से दी गई, भगवान् की उस शिक्षा को बहुत ही विनय के साथ स्वीकार की।

देवलोकगमन तथा मोक्ष

उसके पश्चात् कामदेव श्रावक ने भगवान् से कुछ प्रश्न किये और उत्तर प्राप्तकर अपनी शकाएँ दूर की तथा जिज्ञासाएँ पूर्ण की। पश्चात् वे वन्दन-नमस्कार करके अपने घर को लौट गये।

कामदेव श्रावक ने उसके पश्चात् और भी अधिक धर्म-ध्यान किया। (श्रावक की ११ प्रतिज्ञाएँ पाली।)

उन्होने सब २० वर्ष तक श्रावकत्व का पालन किया। अन्त मे उन्होने अपने जीवन में जो कोई दोष लगा, उसका आलोचन प्रतिक्रमण करके सथारा ग्रहण किया। एक मास का अनशन होने पर वे मृत्यु के अवसर पर काल करके पहले

देवलोक मे देव-रूप से उत्पन्न हुए। वहाँ से वे मनुष्य बनकर तथा दीक्षा लेकर सिद्ध बनेगे।

॥ इति ६. श्री कामदेव की कथा समाप्त ॥

—श्री उपासकदशांग सूत्र, अध्ययन २ के आधार से।

शिक्षाएँ

१ साधु नही तो श्रावक तो अवश्य बनो।

२ स्वय गृहस्थी, चलाते हुए धर्म अधिक नही हो सकता।

३. देवादि उपसर्ग आने पर भी धर्म मे दृढ रहो।

४ धर्म मे दृढ रहनेवाले की देव, इन्द्र व भगवान् भी प्रशसा करते हैं।

५ छोटे के उदाहरण से भी शिक्षा लेनी चाहिए।

प्रश्न

१ कामदेव की लौकिक सम्पन्नता का परिचय दो।

२ कामदेव को आये हुए उपसर्गों का वर्णन करो।

३ कामदेव को देव उपसर्ग देने क्यो आया ?

४ उपसर्ग समाप्ति के पश्चात् क्या-क्या हुआ ?

५ कामदेव के कथानक से आपको क्या शिक्षाएं मिलती है ?

७. श्री सुलसा श्राविका

परिचय

'राजगृह' मे 'नाग' नामक सारथी रहता था। उसकी पत्नी का नाम था 'सुलसा'। वह श्राविका थी। भगवान् महावीरस्वामी की ३ तीन लाख १८ अट्ठारह हजार श्राविकाओं मे उसका नाम पहला था। क्योंकि वह सम्यक्त्व मे दृढ थी तथा उसमे दान आदि कई विशिष्ट गुण थे।

पुत्र के अभाव में

सुलसा को कोई पुत्र उत्पन्न नही हुआ था। पर उसने इसका कोई विचार नही किया। प्राय· स्त्रियाँ पुत्र न होने पर देव-देवियो की शरण लेती है, उनको मनौती करता है। मत्र-तत्र करवाती हैं। पर उसने देव-देवी की शरण लेने का या मत्र-तत्र करने का मन मे भी विचार नहीं किया। उसकी यह दृढता थी कि—'पुत्र चाहे हो, चाहे न हो, परन्तु मैं अरिहनदेव के अतिरिक्त अन्य किसी देव को मस्तक नहीं झुकाऊँगी। नमस्कार-मत्र के अतिरिक्त दूसरा मत्र कभी स्मरण नही करूँगी।'

सुलसा के पति नाग को पुत्र की बहुत अभिलाषा थी। उसने पुत्र-प्राप्ति के लिए अन्य देव-देवियो को पूजना आरम्भ किया व अन्य मत्र-तत्रो का स्मरण चालू किया।

सुलसा-नाग की चर्चा

जब सुलसा को यह जानकारी हुई, तो उसने अपने पति को समझाया—'पतिदेव! इन देव-देवियो की पूजा छोड़ो।

मंत्र-तत्र का स्मरण छोड़ो। हमे एक मात्र अरिहंतदेव और नमस्कार-मत्र पर ही श्रद्धा रखनी चाहिए। अरिहत को ही झुकना चाहिए। नमस्कार-मत्र का ही स्मरण करना चाहिए। अन्य देव-देवियो और अन्य मत्र-तत्रो पर श्रद्धा रखना मिथ्यात्व है।'

नाग ने कहा—'सुलसे ! मैं अरिहंतदेव और नमस्कार-मत्र पर ही श्रद्धा रखता हूँ। मुझे अन्य देव-देवियो और अन्य मत्रों पर श्रद्धा नही है। मैं उन्हे ससार-तारक या मोक्ष देने वाला नही मानता। पर ये लौकिक देव और लौकिक मत्र है। पुत्र की आशा लौकिक आशा है। ये लौकिक आशा पूर्ण करने मे सहायता दे सकते है, इसलिए मैं इन्हे पूजता हूँ और स्मरण करता हूँ।'

सुलसा ने कहा—'स्वामी ! यदि अन्य देवो और मत्रों पर हमारी श्रद्धा नही है, तो हमारे हृदय मे भले सम्यक्त्व रहे, पर उन्हे पूजने और उनके स्मरण करने की प्रवृत्ति तो मिथ्यात्व की ही है। हमे मिथ्यात्व की प्रवृत्ति से भी बचना ही अच्छा है।

दूसरी बात यह है कि, यदि पूर्व जन्म मे हमने पुण्य नही कमाये है, तो ये अन्य देव-देवियाँ और मन्त्र-तन्त्र हमे कुछ भी नही दे सकते। हमारी कुछ भी सहायता नही कर सकते।'

नाग ने कहा—'सुलसे ! तुम्हारा कहना सत्य है। पर मान लो कि, हमने पूर्व जन्म मे कुछ पुण्य कमाये हो और वे अभी उदय मे न आये हो तथा पाप हो उदय मे आये हो, तब तो ये देवता और मत्र हमारी सहायता कर सकते है। क्योकि वे वर्त्तमान पाप को दबा सकते हैं और दबे हुए पुण्य को खीचकर शीघ्र बाहर ला सकते है। यह भी हो सकता है कि हमे पुत्र प्राप्ति का पुण्य उदय मे आने वाला हो और उसके लिए देव-

देवी या मत्र-तत्र के निमित्त की भी आवश्यकता हो। यह सोचकर भी मैं अन्य देवो को नमस्कार करता हूँ और अन्य मत्रो का स्मरण करता हूँ। पुत्र होने से तुम पर चढा हुआ बाँझ का कलक भी धुल जायगा।'

सुलसा ने कहा—'नाथ! आपका यह कहना असत्य नही है, पर मैं इसके लिए मिथ्यात्व की प्रवृत्ति अपनाना नही चाहती। यदि मान लो कि, पूर्व मे हमारे कमाये हुए पुण्य नही है, तो दोनो ओर हमारी हानि ही है। पुत्र की प्राप्ति भी नही होगी और मिथ्यात्व-प्रवृत्ति का पाप भी पल्ले बँध जायगा।

यदि आपको पुत्र की ही अधिक अभिलाषा हो, तो आप अन्य स्त्री से लग्न कर लीजिए, पर मिथ्यात्व की प्रवृत्ति का सेवन मत कीजिए। लोग जो मुझे बाँझ कहते है, इसका आप कोई विचार मत कीजिए। जो सम्यक्त्व-दृढता का महत्व जानते है, वे तो हमारी प्रशसा ही करेगे, निन्दा नही करेगे तथा जो सम्यक्त्व-दृढता का महत्व नही जानते, उनकी बात हमे सुनना ही क्यो चाहिए?'

नाग ने कहा—'सुलसे! मैं तुम्हारा कहा मानकर मिथ्यात्व की प्रवृत्ति छोड देता हूँ, पर मैं तुम्हारे लिए सौक लाऊँ—यह कभी नही हो सकता। मैं पुत्र चाहता हूँ, पर तुम्हारी कूँख से उत्पन्न पुत्र चाहता हूँ। मेरा तुम्ही पर प्रेम है। मैं तुम्हे अपने जीवन से भिन्न नही कर सकता।'

सुलसा ने कहा—'धन्य है, आर्यपुत्र! आपने मिथ्यात्व-प्रवृत्ति छोडने का अच्छा निश्चय किया। धर्म पर दृढ रहने से, अशुभ कर्मो का क्षय होता है, वे शुभकर्म के रूप मे बदलते हैं और नये पुण्यो की महान् वृद्धि होती है। कभी शीघ्र, तो कभी विलम्ब से अनिष्ट का विनाश होता है और इष्ट-प्राप्ति होती है।

कई बार देवता तक आकर हाथ जोडकर प्रार्थना करते है कि, 'धन्य हैं, आप ! मुझे कुछ सेवा का अवसर दीजिए।' ऐसे अवसर पर उनसे सहायता मागी जा सकती है। इससे पूजा आदि का पाप भी नही लगता और कार्य-पूर्ति भी हो जाती है।' नाग ने इस कथन को सहर्ष स्वीकार किया।

धन्य है, सुलसा ! जिसने बाँझ रहना स्वीकार किया, अपने ऊपर सौक का आना स्वीकार किया, पर मिथ्यात्व की प्रवृत्ति करना स्वीकार नहीं किया। स्वय ने मिथ्यात्व त्यागा और पति को भी मिथ्यात्व से दूर हटाया।

शक्रेन्द्र द्वारा प्रशंसा

सुलसा की इस दृढ़ता और तत्वज्ञान की देवलोक मे भी प्रशसा हुई। शक्र नामक पहले देवलोक के इन्द्र ने देवताओ की भरी सभा के बीच कहा—'राजगृह नगर के नाग सारथी की पत्नी सुलसा श्राविका धन्य है ! क्योकि उसकी सम्यक्त्व बहुत ही दृढ है। कोई देव-दानव भी उसे सम्यक्त्व से नही डिगा सकता।

वह अरिहतदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और केवलि-प्ररूपित धर्म मे इतनी दृढ है कि, वह ससार का सुख छोड देती है, पर मिथ्यात्व की प्रवृत्ति कभी नही अपनाती।

अरिहत को ही देव, निर्ग्रन्थ को ही गुरु तथा केवली-प्ररूपित तत्त्व को ही धर्म मानते हुए यदि उसे कितनी भी हानि पहुँचे, कितना भी कष्ट पहुँचे, फिर भी वह श्रद्धा से नही डिगती। उसके मन मे थोडी भी चचलता नही आती।

ऐसी सुलसा श्राविका को बारम्बार नमस्कार है!'

देव द्वारा परीक्षा

एक मिथ्यादृष्टि देव को यह बात सहन नहीं हुई। वह सुलसा की परीक्षा के लिए साधु का रूप बनाकर सुलसा के घर पहुँचा। सुलसा ने उसको साधु समझकर वदन-नमस्कार करके पूछा—'भन्ते! इस समय आपका मेरे यहाँ कैसे पधारना हुआ? देव ने कहा—'श्राविके! मेरे वृद्ध गुरुदेव के शरीर मे बहुत पीडा है। उनकी औपधि के लिए वैद्यो ने मुझे लक्षपाक तेल बतलाया है। इसलिए मुझे उस तेल की आवश्यकता है। यदि वह तुम्हारे घर शुद्ध (सूझता) हो, तो बहराओ।' सुलसा ने कहा—'भन्ते! अवश्य कृपा कीजिए। आज का दिन धन्य है कि, मेरे पदार्थ सन्तो की सेवा मे काम आयेगे।'

यह कहकर वह लक्षपाक तैल लेने गई। लक्षपाक तैल लाख वस्तुएँ, लाख वार तपाने पर बनता है। उसके बनने मे लाख रुपये व्यय होते है। लक्षपाक तेल की उसके घर मे तीन शीशियाँ थी। वे जहाँ थी, वहाँ पहुँचकर वह पहली शीशी उतारने लगी कि, शीशी फिसलकर नीचे गिर गई और फूट गई। दूसरी और तीसरी शीशी की भी यही स्थिति हुई। तीसरी बार मे उसके पैर मे काँच का टुकड़ा भी चुभ गया।

इस प्रकार उसके लाखो रुपये मिट्टी से मिल गये। शीशी के काँच का टुकड़ा पैर मे लग गया, सो अलग। पर उसके मन मे इन दोनो बातो का कोई खेद नही हुआ। उसे यह विचार ही नही आया कि 'ये कैसे साधु है, जिन्हे दान देते हुए मेरे मूल्यवान पदार्थ नष्ट हो। यह कैसा दान-धर्म है? जिसे करते हुए शरीर मे पीडा हो।' वरन् उसे इस बात का खेद हुआ कि—'मेरी ये वस्तुएँ सन्तो के काम नही आ सकी। मेरे

हाथों से दान नही हो सका। सन्त मेरे यहाँ कष्ट करके पधारे, परन्तु उन्हे आवश्यक वस्तु नही मिल सकी। जो इनके वृद्ध गुरु सन्त है, उनकी पीडा कैसे दूर होगी? आह! वे मुनिराज कितना कष्ट पाते होगे? मुझ अभागिन ने ध्यानपूर्वक शीशियाँ नही उतारी। ऐसे समय मे मुझ से सावधानी क्यो नहीं रही? धिक्कार है मुझे!' यह सोचते-सोचते उसका मुँह कुम्हला गया। आँखे डबडबा आई।

देवता यह सारा दृश्य देख रहा था। अवधि (अज्ञान) से सुलसा के मन के विचार को भी देख रहा था। उसे प्रत्यक्ष हो गया कि, शक्रेन्द्र जो कह रहे थे, वह सर्वथा सत्य था। सचमुच यह सम्यक्त्व मे बहुत दृढ है। देवता ने सुलसा के सामने अपना वास्तविक रूप प्रकट किया और सुलसा से कहा—'श्राविके! खेद न करो, यह तो मेरी देव-विकुर्व्वणा (देवमाया) थी, जो मैंने तुम्हारी सम्यक्त्व-दृढता की परीक्षा के लिए की थी। धन्य है! तुम्हे 'कि तुम ऐसी दृढ हो। जिस कारण इन्द्र भी तुम्हारी प्रशसा करते हैं।'

पुत्र-प्राप्ति

'सुलसे! मैं तुम पर प्रसन्न हुआ। (मागो) जो तुम्हारी इच्छा हो, वही मागो। मैं उसकी पूर्ति करूँगा।' सुलसा ने कहा—'देव! मेरी तो यही इच्छा है कि मेरी सम्यक्त्व पर दृढता बनी रहे। मेरा सम्यक्त्व-रत्न सुरक्षित रहे। पर यदि आप कुछ देना चाहते हैं, तो मेरे पति को पुत्र की अभिलाषा है, वह आप पूरी करें।'

देवता ने उसे पुत्र-उत्पत्ति मे सहायक ३२ गोलियाँ दी और समय पडने पर 'मुझे स्मरण करना'—यह कहकर वह देवलोक मे लौट गया। समय से सुलसा को इच्छित पुत्र उत्पन्न हुए।

भगवान् द्वारा प्रशंसा

'**चम्पानगरी**' की बात है। **भगवान् महावीरस्वामी** वहाँ विराज रहे थे। वहाँ '**अम्बड़**' नामक एक श्रावक आया। वह विद्याधर (विद्याओ का जानकार) था। उसने भगवान् महावीरस्वामी की वाणी सुनकर उन्हें वंदन-नमस्कार करके कहा—'भन्ते! आपके उपदेश सुनकर मेरा जन्म सफल हो गया। अब मैं राजगृह नगरी जा रहा हूँ।'

भगवान् ने कहा 'अम्बड! तुम जिस नगरी मे जा रहे हो, वहाँ सुलसा श्राविका रहती है। वह सम्यक्त्व में बहुत दृढ है।'

अम्बड़ विद्याधर द्वारा परीक्षा

अम्बड ने सोचा—'भगवान् जो कुछ कह रहे हैं, वह सत्य ही है, क्योकि वीतराग भगवान् किसी की असत्य प्रशसा नही करते। किन्तु मैं परीक्षा करके प्रत्यक्ष देखूँ तो सही कि 'वह सम्यक्त्व मे किस प्रकार दृढ है?'

राजगृह पहुँचकर विद्या के बल से उसने सन्यासी का रूप बनाया और सुलसा के घर जाकर कहा—'आयुष्मति! (लम्बी आयुष्यवाली) मुझे भोजन दो। इससे तुम्हे धर्म होगा, मोक्ष की प्राप्ति होगी।'

सुलसा ने उत्तर दिया—'सन्यासीजी! अनुकपा के लिए मैं प्रत्येक को भोजन दे सकती हूँ और लो आपको भी देती हूँ, पर निर्दोष धर्म और मोक्ष तो जिन्हे देने से होता है, उन्हें ही देने से होगा, आपको देने से नही हो सकता। 'किन्हे देने से निर्दोष धर्म और मोक्ष होता है'?—यह आपको बताने की आवश्यकता नही। क्योकि मैं उन्हे जानती हूँ।

यह उत्तर सुनकर अबड उसके घर से बिना भिक्षा लिए लौट गया और नगर के बाहर आया। वहाँ उसने आकाश मे अधर कमल का आसन लगाया और उसके ऊपर बैठकर वह तपश्चर्या करने का दिखावा करने लगा। लोग उसे अधर कमल के आसन पर तपश्चर्या करते देखकर चकित होने लगे।

सैकडो-सहस्रो लोग उसके दर्शन के लिए आने-जाने लगे। उसकी पूजा-भक्ति होने लगी और पारणे के लिए निमन्त्रण पर निमन्त्रण आने लगे। परन्तु वह सबको निषेध करता रहा।

लोगो ने पूछा—'योगीराज ! आप श्री पारणे के लिए किसी का भी निमन्त्रण स्वीकार नही करते, तो क्या हमारा गाँव अभागा है ? आप जैसे महान् अतिशय वाले तपस्वी, हमारे यहाँ से आहार लिए बिना भूखे ही पधार जाएँगे ? नही, नही, ऐसा नही हो सकता। हमारे गाँव मे कोई न कोई तो ऐसा पुण्यशाली अवश्य ही होगा, जो आपको पारणा कराकर कृतार्थ बनेगा। आप कृपया उस भाग्यशाली का नाम बतावे, हम अभी उसे सूचित करते हैं।'

दिव्य योगी-रूपधारी अबड ने कहा 'पुरजनो ! आपके यहाँ सुलसा नामक नागपत्नी है। वह यदि पारणा करावेगी तो मैं उसके यहाँ पारणा करूँगा।' यह सुनकर लोग सुलसा के घर पहुँचे।

कुछ स्त्रियाँ, जो उस अंबड को देखकर लौटती थीं, वे सुलसा के पास अबड के अधर कमलासन, उसकी तपश्चर्या और निमन्त्रण के प्रति उपेक्षा भाव की प्रशसा करती। उसके अतिशय का बखान करती, और सुलसा को उसके दर्शन की प्रेरणा करती, पर वह इन आडबरो के चक्कर मे नही आयी।

जब इस समय सब लोगो ने आकर सुलसा से कहा—'बधाई है, सुलसा! बधाई है! वे अपूर्व योगिराज तुम्हारे यहाँ पारणा करना चाहते हैं। उन्हे पारणा कराओ और भाग्यशाली बनो।' तो उसने अवड की उस विकुर्व्वणा को जानकर उत्तर दिया—'पुरजनो! मै अरिहत को ही देव, निर्ग्रथ को ही गुरु और केवली प्ररूपित तत्त्व को ही धर्म मानती हूँ। मुझे इन जैसे साधुओ पर कोई श्रद्धा नही है। सच्चे साधु लोग अपने अतिशय का दिखावा और तप की प्रसिद्धि नही करते। 'मै उस घर पारणा करूँगा'—ऐसा नही कहते। एक घर पर भोजन नही करते। वे अपनी लब्धियो (ऋद्धियो) को गुप्त रखते हैं, तपश्चर्या को अप्रकट रखते है। बिना सूचना दिये घर मे प्रवेश करते है और नाना घरो से गोचरी लेकर सयम-यात्रा चलाते हैं। उन्हे पारणा कराने से ही आत्मा सच्ची भाग्यशाली बनती है। ऐसे मिथ्या साधुओ को पारणा कराने से नही बनती। यह उत्तर सुनकर बहुत-से पुरजन बहुत खिन्न हुए। कुछ ने यह उत्तर उस दिव्य-योगीरूपधारी अवड को ले जाकर सुनाया। उस उत्तर को सुनकर अवड को प्रत्यक्ष हो गया कि 'सुलसा सम्यक्त्व मे कितनी दृढ है? वह आडम्बर और लोकमत से किस प्रकार अप्रभावित रहती है।'

उसने अपना वेष बदला और उन सभी लोगो के साथ नमस्कार-मत्र का उच्चारण करते हुए सुलसा के घर पर आकर सुलसा के घर मे प्रवेश किया। सुलसा ने उस समय अम्बड को स्वधर्मी समझकर उठकर उसे सत्कार सम्मान दिया। अम्बड ने भी भगवान् द्वारा की गई प्रशसा सुलसा को सुनाई और अपने द्वारा की गई परीक्षा बताकर उसकी स्वय भी बहुत प्रशसा की।

लोगो ने भी यह सब देखकर सुलसा की सम्यक्त्व-दृढता की भूरि-भूरि प्रशसा की और जो पुरजन सुलसा पर खिन्न हुए थे, वे पुनः सुलसा पर प्रसन्न हो गये।

॥ इति ७ श्री सुलसा श्राविका की कथा समाप्त ॥

शिक्षाएँ

१. दृढ सम्यक्त्वी की देव तो क्या, भगवान् भी प्रशसा करते हैं।

२ दृढ सम्यक्त्वियो की कसौटियाँ भी होती रहती है।

३. मिथ्यादृष्टि के साथ मिथ्यात्व-प्रवृत्ति भी छोडो।

४ दृढ सम्यक्त्वी दूसरो को भी दृढ बनाता है।

५. दृढ सम्यक्त्वी की भी लौकिक आशाएँ पूर्ण होती हैं।

प्रश्न

१. सुलसा श्राविका का परिचय दो।

२. सुलसा और नाग की पारस्परिक चर्चा बताओ।

३. सुलसा की किस-किसने प्रशसा की ?

४ सुलसा की किस-किसने कैसी-कैसी परीक्षा ली ?

५ सुलसा श्राविका से क्या शिक्षाएँ मिलती हैं ?

८. श्री सुबाहु-कुमार (मुनि)

परिचय

'हस्तिशीर्ष' नामक नगर मे 'अदीनशत्रु' नामक राजा राज्य करते थे। उनको 'धारिणी' नामक रानी थी। उस रानी को रात्रि मे 'सिंह-स्वप्न' आया। ६ मास और साढे सात (कुछ अधिक सात) रात के पश्चात् एक पुत्र जन्मा। उसका नाम 'सुबाहुकुमार' रक्खा गया। राजा-रानी ने क्रमश उसे ७२ कलाएँ सिखाई और उसका ५०० राजकन्याओ से लग्न किया। वह रानियो के साथ राजप्रासाद मे सुखपूर्वक रहने लगा।

समवसरण में

एक वार उस नगर के ईशान कोण मे रहे 'पुष्पकरंडक' नामक उद्यान मे **भगवान् महावीरस्वामी** पधारे। लोगो को उनके दर्शनार्थ वडे समूह से जाते देखकर सुवाहुकुमार ने कचुकी (अंत पुर के सेवक) को वुलाकर पूछा कि—'ये लोग आज इतने वडे समूह से कहाँ जा रहे हैं?' कचुकी ने उत्तर मे कहा—'भगवान् पधारे हैं, इसलिए लोग वडे समूह से उनके दर्शन करने, उन्हे वन्दन करने व उनकी वाणी सुनने के लिए जा रहे हैं।' सुवाहु भी इस समाचार को पाकर भगवान् के दर्शन आदि के लिए भगवान् के समवसरण मे पहुँचे।

धर्म-कथा

भगवान् ने सुवाहुकुमार आदि वहुत वडी सभा को विस्तार से धर्म-कथा सुनाई। सवसे पहले भगवान् ने १ आस्तिकता का

उपदेश दिया। २ दूसरे मे 'जीव जो भी पुण्य या पाप-कर्म करता है, उसका फल अवश्य भोगना पडता है'—यह बताया। ३ तीसरे मे 'जैन धर्म का स्वरूप और उसके पालन का फल' बताया। ४ चौथे मे 'जीव चार गति मे कैसे भटकता है और सिद्ध कैसे बनता है'—यह बताया। ५ पाँचवे मे 'साधु-धर्म और 'श्रावक-धर्म' बतलाया। भगवान् ने बहुत ही मधुर, मनोहर, प्रभावशाली शैली से देशना दी।

श्रावक व्रत धारण

सुबाहुकुमार ने ऐसी उस देशना को सुनकर देशना समाप्त होने के पश्चात् भगवान् को वदन-नमस्कार करके कहा—भगवन्! मैं आपकी वाणी पर श्रद्धा करता हूँ। मुझे आपकी वाणी बहुत रुचिकर लगी। आपने जो देशना दी, वह सत्य है। धन्य है, वे राजा-महाराजा आदि जो आपकी वाणी आदि सुनकर ऋद्धि, वैभव, परिवार आदि सब छोडकर दीक्षित बनते हैं, पर मैं उस प्रकार दीक्षा लेने मे असमर्थ हूँ। इसलिए मैं आपके पास श्रावक व्रत धारण करना चाहता हूँ।' भगवान् ने कहा—'जैसा सुख हो, वैसा करो, पर इसमे प्रतिबन्ध मत करो। तब सुबाहुकुमार ने भगवान् को वन्दन-नमस्कार करके श्रावक के बारह व्रत स्वीकार किये। उसके पश्चात् पुन वन्दन-नमस्कार करके वे अपने राजभवन को लौट गये।

पूर्व भव विषयक प्रश्न

उनके लौट जाने पर श्री गौतमस्वामी ने भगवान् को वन्दन-नमस्कार करके पूछा कि—'भन्ते! यह सुबाहुकुमार बहुत लोगो को बहुत ही प्रिय लगता है। यहाँ तक कि, यह

वहुत-से साधुओ को भी प्रिय लगता है, इसका क्या कारण है ? १ यह पूर्व भव मे कौन था ? २ इसका पूर्व भव मे क्या नाम-गोत्र था ? ३ तब इसने कौन-सा अभयदान, अनुकपादान या सुपात्र दान दिया ? ४ इसने कौन-सा आयम्बिलादि मे नीरस आहारादि भोगा ? ५ इसने कौनसे शील या उपवासादि तप का आचरण किया ? ६ अथवा इसने ऐसा कौन-सा एक भी आर्यवचन (धर्मवचन) सुना और सुनकर उस पर श्रद्धा की, जिससे इसने ऐसी ऋद्धि और प्रियता आदि प्राप्त की ?'

पूर्व भव कथन

भगवान् ने कहा—'गौतम ! कुछ वर्षों पहले की वात है। 'हस्तिनापुर' नामक नगर मे २ 'सुमुख' नामक १ एक धनवान्, सुखी और प्रतिष्ठित गृहस्थ रहता था। उस नगर मे 'धर्मघोष' नामक आचार्य पधारे। उनके 'सुदत्त' नामक एक मुनि वडे ही तपस्वी थे। वे एक मास तक उपवास करते, फिर एक दिन पारणा करते और फिर एक मास तक उपवास करते, फिर एक दिन पारणा करते। इस प्रकार वे लगातार मास-क्षमण (तप) करते थे।

एकवार जिस दिन उनके मास-क्षमण का पारणा था, उस दिन उन्होने पहले प्रहर (दिन के पहले चौथाई भाग) मे स्वाध्याय किया (शास्त्र-वाचन किया), दूसरे प्रहर मे ध्यान (शास्त्र-चिन्तन) किया और तीसरे प्रहर मे गुरुदेव की आज्ञा लेकर गोचरी के लिए (जैसे गाय उगे हुए घास का थोडा-थोडा भाग चरती है, वैसे प्रत्येक घर से थोडी-थोडी भिक्षा लेने के लिए) निकले। धनवान्-निर्धन सभी कुलो मे गोचरी लेते हुए वे मुनिराज, सुमुख गृहस्थ के यहाँ पधारे।

अहोदान

१ सुमुख गृहस्थ मुनिराज को अपने घर गोचरी पधारे हुए देखकर बहुत ही हर्षित हुआ। २. वह आसन छोडकर नीचे उतरा। ३ पगरखी छोडी। ४ मुँह पर उत्तरासग लगाया और ५ मुनिराज का स्वागत करने के लिए सात-आठ पैर (कुछ पैर) सामने गया। ६ तीन बार प्रदक्षिणा करके वदन-नमस्कार किया। ७ फिर अपने रसोईघर मे वहुमान सहित ले गया और ८ अपने हाथो से अपने घर मे जो मुनियो के योग्य निर्दोष भोजन के उत्तम से उत्तम पदार्थ थे, वे मुनिराज को वहुत मात्रा मे वहराये (दान मे दिये)।

सुमुख को १ दान देने के पहले 'मैं मुनिराज को दान दूंगा'—इस विचार से वहुत प्रसन्नता थी। २ दान देते हुए 'मुनिराज को दान दे रहा हूँ'—इस विचार से भी वहुत प्रसन्नता थी तथा ३ दान देने के पश्चात् 'मुनिराज को दान दिया'—इस विचार से भी वहुत प्रसन्नता थी।

दान का फल

सुवाहु ने १ निर्दोष दान दिया था, २ शुद्ध भाव से दिया था तथा ३ महातपस्वी जैसे शुद्ध पात्र को दान दिया था। इस प्रकार १ दान, २ दाता और ३ पात्र तीनो उत्तम थे और दान के समय सुबाहु के १ मन २ वचन और ३. काया ये तीनो भी शुद्ध थे। इस कारण सुबाहु ने सम्यक्त्व प्राप्त की व ससार घटाया (मोक्ष को निकट बनाया)।

मुमुख के इस दान से प्रसन्न होकर देवताओ ने ये पॉच दिव्य बाते प्रकट की—१ सुवर्ण (सोना) वरसाया। २ पॉचो रग

वाले फूल वरसाये। ३. ध्वजाएँ फहराईं (अथवा वस्त्र वरसाये)। ४. दुन्दुभियाँ (एक प्रकार का उत्तम वाजा) वजाईं। और ५. अहोदान! अहोदान!! इस प्रकार घोषणा की। (अर्थात् 'यह दान प्रशसनीय है' ऐसी वार-वार प्रशसा की।)

हस्तिनापुरवासी भी यह देखकर परस्पर मे सुमुख की प्रशसा करने लगे कि—'धन्य है! धन्य है!! देवानुप्रियो! सुमुख गृहस्थ धन्य है!!! जिसने ऐसा देव-प्रशसित सुपात्र दान दिया।

कालान्तर से उसे मिथ्यात्व मे मनुष्य आयु का वध हुआ। वह आयुष्य समाप्त होने पर काल करके अदीनशत्रु की महारानी धारिणी के कुक्षि मे आया और क्रमश आज मेरे पास आया।

हे गौतम! इस सुवाहुकुमार ने पूर्व भव मे ३. उन महातपस्वी को, जो निर्दोष, उत्तम भाव से महान् सुपात्र दान दिया, उसके प्रभाव से यह सुवाहु ऐसा ऋद्धि-वैभवादि-सपन्न तथा वहुत लोगो को और साधुओ को भी प्रिय वना है।

दीक्षा

तव गौतमस्वामी ने पूछा—क्या भगवन्! यह सुवाहुकुमार आपके पास दीक्षा लेगा? भगवान् ने कहा—'हाँ'।

कुछ दिनो वाद भगवान् का वहाँ मे विहार हो गया। उसके पश्चात् की वात है—एक वार सुवाहुकुमार को तीन दिन का पौषध करते हुए रात्रि को विचार आया कि—'भगवान् यदि यहाँ पधारे, तो मैं दीक्षित वनूँ।' अतर्यामी भगवान् सुवाहुकुमार के इन विचारों को जानकर वहाँ पधारे। सुवाहुकुमार भगवान् का उपदेश सुनकर दीक्षित वने। उन्होने दीक्षित वनकर कई सूत्रो का अभ्यास किया और वहुत तपश्चर्यायें की। अन्त मे

सथारापूर्वक काल करके वे पहले देवलोक मे गये। वहाँ से वे १४ भव तक क्रमश मनुष्य और देव बनते हुए १५ पन्द्रहवें भव मे मनुष्य बनकर तथा दीक्षा लेकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होंगे।

॥ इति ८. श्री सुबाहु-कुमार (मुनि) की कथा समाप्त ॥

—श्री सुखविपाक सूत्र, अध्ययन १ के आधार से

शिक्षाएँ

१ पात्र का योग मिलने पर भावपूर्वक अपने हाथो से निर्दोष दान दो।

२. सुपात्र दान से ससार घटता है (मुक्ति निकट बनती है)।

३ सुपात्र दान से आत्मा की क्रमश उन्नति होती रहती है।

४. सुपात्र दानी को लौकिक सुख भी मिलता है।

५ सुपात्र दानी लोगो का व साधुओ का भी प्रिय बनता है।

प्रश्न

१. भगवान् ने धर्म-कथा में कितनी मुख्य बातें बतलाईं ?

२ श्री गौतमस्वामी ने सुबाहु के सम्बन्ध मे क्या क्या प्रश्न किये ?

३. सुपात्र दान देने आदि की विधि बताओ।

४. सुमुख गृहस्थ के सुपात्र दान से क्रमशः क्या-क्या फल हुए ?

५. सुबाहुकुमार से आपको क्या शिक्षाएँ मिलती हैं ?

६. छोटी बहू : रोहिणी

परिचय

पुराने समय की बात है। 'राजगृह' नामक नगर में 'धन्य' (धन्ना) नामक सार्थवाह (परदेश मे व्यापार के लिए जाते हुए साथ मे चलने वाले लोगो को पालने वाला) रहता था। उसके १. धनपाल, २ धनदेव, ३ धनगोप और ४. धनरक्ष—ये चार पुत्र थे। उन चारो पुत्रो की क्रमश ये चार पुत्र-वधुएँ थी—१. उज्झिता (फेकने वाली), २ भोगवती (भोगने वाली), ३. रक्षिता (रक्षा करने वाली) और ४. रोहिणी (बढाने वाली)।

परीक्षा-विचार

धन्ना सार्थवाह को एक बार पिछली रात्रि को कुटुम्ब के विषय मे सोचते हुए यह विचार आया कि—'(मेरे ये चारो पुत्र अयोग्य है, इनसे मेरे कुल का काम नही चल सकेगा, अत) इन चारो पुत्र-वधुओ की परीक्षा लूं, जिससे जानकारी हो जाय कि, मेरे यहाँ न रहने पर या असमर्थ हो जाने पर या काल कर जाने पर मेरे कुल का काम कौन चला सकेगी ?'

पाँच शालि का प्रदान

दूसरे दिन उन्होंने अपने परिवार को, जातिवालो को, मित्रों को और वहुओ के पीहरवालो को निमन्त्रण दिया। उनको भोजन देने के पश्चात् जब वे कुछ विश्राम कर चुके तब उन सभी के सामने १. सबसे बडी बहू उज्झिता को बुलाया

और उसे पॉच शालि अक्षत (चावल के बीज) देते हुए कहा—'पुत्री! मेरे हाथ से इन पॉचो चावल के बीजो को लो और इनका सरक्षरण करते हुए (हानि से बचाते हुए) तथा सगोपन करते हुए (हानि न हो, ऐसे गुप्त स्थान मे रखते हुए) इन्हे अपने पास रक्खो।' यह कहकर धन्ना ने उसके हाथो मे वे पाँचो बीज दे दिये और उसे स्वस्थान पर भेज दिया।

उज्झिता ने उन बीजो को एकात मे ले जाकर सोचा—'मेरे ससुर के बहुत-से कोठार, शालि (चावलो के बीजो) से ही भरे पडे है। जब ससुरजी पॉच शालि मागेंगे, तब मैं उन कोठारो मे से पॉच शालि ले जाकर उन्हे दे दूँगी। इन शालियो का सरक्षरण-सगोपन करना वृथा है।' यह सोचकर उसने वे बीज एक ओर फेक दिये और अपने काम मे लग गयी। उसका जैसा नाम था, वैसा ही उसने काम किया।

धन्य ने २ दूसरी बहू भोगवती को भी बुलाकर पॉच शालि दिये। उसने भी एकात मे जाकर बडी बहू के समान सोचा। पर उसने बीज फेंके नही, किन्तु उनके छिलके उतार कर उन्हे खा लिए। उसने भी अपने नाम के अर्थ के अनुसार काम किया।

धन्य ने ३ तीसरी बहू रक्षिता को भी बुलाकर पॉच शालि दिये। उसने एकात मे जाकर सोचा—'ससुरजी ने आज परिवार, जाति, मित्र, पीहर वाले आदि सबके सामने ये शालि के बीज दिये हैं, इसलिए अवश्य ही इसमे कोई कारण होना चाहिए।' यह विचार कर उसने एक नये स्वच्छ वस्त्र मे उन्हे बाँधा और अपने आभूषरण की पेटी मे रख दिया। और नित्य १. प्रात, २ मध्याह्न और ३ संध्या तीनो समय उनको

देखती रहती और पुन सभाल कर रख देती। इसने भी अपने नाम के अर्थ के अनुसार काम किया।

रोहिणी द्वारा वृद्धि

धन्य ने अन्त मे ४. सवसे छोटी वहू को भी वुलाकर पाँच शालि दिये। उसने भी एकात मे जाकर तीसरी वहू के समान सोचा। परन्तु उसने सरक्षण-सगोपन के साथ सवर्द्धन (वढाना) भी सोचा। यह सोचकर उसने अपने पीहर वालो को वुलाकर कहा—'इन पाँचो शालि के बीजो का सरक्षण-संगोपन करना और प्रतिवर्ष वर्षा ऋतु मे इन्हे वो कर इनकी वृद्धि करते रहना।' इस प्रकार चौथी ने भी अपने नाम के अर्थ के अनुसार किया।

पीहरवालो ने रोहिणी की वात स्वीकार कर ली। प्रथम वर्ष की वर्षा ऋतु मे उन्होने उन पाँचो शालियो के लिए एक स्वतन्त्र छोटा-सा क्यारा वनाकर उन्हे वो दिये। पहली वार मे ही वे पाँच शालि सैकडो शालि वन गये। पक जाने पर उन्हे काटकर हाथ से मलकर फिर साफ किया। फिर उन्हे घडे मे डालकर और उन पर छाप आदि लगाकर उन्हे सुरक्षित कर दिया गया।

दूसरी वर्षा मे उन्हे वोने पर वे इतने वन गये कि उन्हे पैरो से मल कर साफ करना पड़ा। तीसरी वर्षा मे वे कई घडे जितने और चौथी वर्षा मे वे कई सैकडो घडे जितने वन गये।

पाँचवाँ वर्ष

धन्ना सार्थवाह को पाँचवे वर्ष की एक पिछली रात्रि मे विचार आया—'अव देखना चाहिए कि, उन शालियो का किस

बहू ने क्या किया। किसने उनकी रक्षा की ? किसने उनको गुप्त रक्खा ? किसने उनकी वृद्धि की ?'

दूसरे दिन उन्होने पहले के समान सबको इकट्ठे करके भोजन जिमाकर विश्राम के समय सब के सामने बडी बहू उज्झिता को बुलाकर कहा—'वेटी ! पिछले पाँचवे वर्ष मे मैंने जो तुम्हे पाँच शालि दिये थे, वे मुझे लाकर दो।'

१ तब उस बडी बहू ने कोठार मे से पाँच बीज निकाल कर उन्हे ससुर को लाकर दिये। तब धन्ना ने शपथ दिलाकर उसे पूछा—'बेटी ! सच-सच बता, क्या ये वे ही बीज है, जिन्हे मैंने पाँचवे वर्ष तुम्हे दिये थे ?' तब उसने सब बात सच-सच कह दी। बीजो के फेकने की बात सुनकर धन्ना को बहुत क्रोध आया। उन्होने सबके सामने उस उज्झिता को घर की दासी का काम सौप दिया। इससे उज्झिता को बहुत पश्चात्ताप हुआ।

२. दूसरी बहू भोगवती की भी यही स्थिति हुई। पर उसने बीज फेंके नही थे, परन्तु खाकर काम मे ही लिये थे। इसलिए धन्ना ने भोगवती को दासी न बनाकर रसोईन का काम सौंपा।

३. तीसरी बहू रक्षिता से बीज मागने पर उसने अपनी आभूषणो की पेटी मे रक्खे हुए रक्षित व गुप्त पाँच शालि लाकर दिये। धन्ना द्वारा शपथपूर्वक सच-सच बात पूछने पर रक्षिता ने 'ससुर द्वारा शालि मिलने पर उसे क्या विचार हुए ? तथा उसने किस प्रकार उनका सरक्षण सगोपन किया'—ये सारी बाते ससुर को बताई और कहा - 'पिताजी ! इसलिए ये बीज वे ही है, जो आपने मुझे दिये थे।'

धन्ना यह सब सुनकर रक्षिता पर प्रसन्न हुए। रक्षिता मे सरक्षण और संगोपन की योग्यता देखकर उन्होंने उसको घर की स्वामिनी बना दी।

रोहिणी का उत्तर

४ सबसे छोटी बहू रोहिणी से बीज मागने पर उसने कहा—'पिताजी! आप मुझे गाडियाँ दीजिए ताकि, मैं आपके पाँच शालि आपको लौटा सकूँ।' धन्ना ने पूछा—'बेटी! पाँच बीज लौटाने के लिए गाडियो की क्या आवश्यकता है? तब रोहिणी ने 'वे पाँच शालि गाडियो-जितने कैसे बने?' इसकी कहानी सुनाई। यह सुनकर धन्ना ने उसे गाडिया दी। रोहिणी उन गाडियो को लेकर पीहर गई और जो पाँच शालि सैंकडो घडे जितने बन गए थे, उनको उन गाडियो मे भरा। गाडियाँ भरकर वह उन्हे ससुराल लाई और लाकर ससुर को दे दिए। धन्ना यह देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने रोहिणी मे सरक्षण-सगोपन के साथ सवर्द्धन की भी योग्यता देखकर उसे घर की सचालिका बना दी।

यह देखकर वहाँ पर बैठे हुए सभी परिवार, जाति, मित्र आदि लोग रोहिणी पर प्रसन्न हुए और उन्होने उसकी बुद्धि की प्रशसा की तथा सार्थवाह की भी प्रशसा की कि—'धन्ना सार्थवाह बडे ही चतुर हैं, जिन्होने अपनी बहुओ की परीक्षा करके उन्हे उनकी योग्यता के अनुसार काम सौंप दिया।'

जब नगर मे यह बात फैली, तो नगरवासियो ने भी रोहिणी और धन्ना सार्थवाह की प्रशसा की। धन्ना भी बहुओ को योग्यतानुसार काम सौंपकर निश्चिन्त हो गए।

शिक्षा

बालको ! आप कैसे बनना चाहते हो ? उज्झिता के समान ? नही, नही। यह जो ज्ञान पा रहे हो, वह कही फेक न देना, भूल न जाना या आधा स्मरण रक्खा, आधा विसर गए – ऐसा भी मत करना। अथवा जो व्रत धारण करो, उन्हे छोड न देना या उनमे दोष भी मत लगाना। क्योकि जो ऐसा करता है, वह निन्दनीय बनता है। इसलिए चाहे ज्ञान हो या चाहे व्रत, उन्हे स्थिर रखना।

बालको ! ज्ञान या व्रत को लज्जा से या भय से भोगवती के समान टिकाना भी कुछ प्रशसनीय नही है या इच्छा के साथ भी टिकाया, पर केवल सासारिक (लौकिक) सुख के लिए टिकाया, तो भी प्रशसनीय नही है। धार्मिक ज्ञान या धार्मिक व्रतो का उद्देश्य लौकिक नही है, किन्तु उनका उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना है।

तो क्या आप तीसरी बहू रक्षिता के समान बनोगे ? हाँ, उसके समान बनना अच्छा है। ऐसा पुरुष धन्यवाद व प्रशसा का पात्र बनता है। जो सीखा, वह स्मरण रक्खा, जो व्रत लिया, वह निभाया। पर आप उद्यम करो और चौथी बहू रोहिणी के समान बनो।

जब चौथी बहू ने पाँच शालि गाडियो से लौटाये, तब तीसरी बहू को कितना पश्चात्ताप हुआ होगा ? 'अरे ! मैं भी यदि इसके समान शालि की वृद्धि करती, तो मैं सचालिका बनती !' यदि आप मे योग्यता है, तो आप तीसरी बहू के समान रहकर खेद का अवसर मत आने देना। जो ज्ञान सीखा, वह दूसरो को सिखाना और जो व्रत स्वय ने धारण किये हैं, वे दूसरो को

भी धराना, जिससे आपका व दूसरो का भी जीवन मगलमय बने।

॥ इति ६. छोटी बहू : रोहिणी की कथा समाप्त ॥

—श्री ज्ञाता धर्मकथाग सूत्र, अध्ययन ७ के आधार से।

शिक्षाएं

१ बडो के द्वारा दी गई वस्तु छोटी न समझो।
२. प्राप्त वस्तु का सरक्षण, सगोपन और सवर्धन करो।
३. ऐसा करने वाला उन्नति प्राप्त करता है।
४. फल पाने मे धीरज रखो।

प्रश्न

१ रोहिणी आदि नाम के अर्थ बताओ।
२. रोहिणी सबसे अच्छी बहू क्यो कहलाई ?
३ रोहिणी आदि को क्या क्या कार्य सौंपे गये ?
४ धन्ना ने सब के सामने परीक्षा क्यो की ?
५. आपको रोहिणी से क्या शिक्षाएँ मिलती हैं ?

◆

कथा-विभाग समाप्त

◆

काव्य-विभाग

१. श्री पंचपरमेष्ठि-स्तवन

[तर्ज : काहे मचावे शोर, पपीहा !]

एक सौ आठ बार, परमेष्ठि[1] करते हैं नमस्कार ॥टेर॥

अरिहन्त कर्म-शत्रु विजेता, त्रिजग-पूजित तीर्थप्रणेता,
न राग-द्वेष विकार ॥ परमेष्ठि । १ । करते हैं ..

सिद्धों के सब कर्म खपे हैं, सारे कारज सिद्ध हुए है।
ज्योति मे ज्योति अपार ॥ परमेष्ठि । २ । करते हैं .

आचार्य आचार पलाते, संघ शिरोमणि सघ दिपाते।
सकल सघ रखवार ॥ परमेष्ठि । ३ । करते हैं

उपाध्याय अध्ययन कराते, भ्रांति मिटाते ज्ञान बढाते।
द्वादशांग आधार ॥ परमेष्ठि । ४ । करते हैं ...

साधु आतमा अपनी साधे, महाव्रत समिति गुप्ति आराधे।
त्याग दिया ससार ॥ परमेष्ठि । ५ । करते हैं

पाँच नमन सब पाप-प्रणाशक, उत्तम मगल- विघ्न-विनाशक।
भव-भव शांति अपार ॥ परमेष्ठि । ६ । करते हैं ..

हम मे भी तुमसे गुण जागे, हम भी परमेष्ठि पद्द पावे।
"पारस" हों भव पार ॥ परमेष्ठि । ७ । करते हैं

—नमस्कार महामन्त्र के भावों पर।

२. श्री चौबीसी-स्तवन

[तर्ज देख तेरे संसार की हालत .. ..]

जय जिनवर ! जय तीर्थंकर ! जय चौबीसी भगवान् ।
साधु-श्रावक करें प्रणाम २ ।
आप तिरे, औरों को तारे, भरत क्षेत्र भगवान् ।
साधु-श्रावक करे प्रणाम २ ॥ टेर ॥

१ ऋषभदेव का कीर्त्तन करते, २. अजितनाथ को वन्दन करते ।
३. सभवनाथ का नाम सुमरते, ४ अभिनन्दन को चित्त मे धरते ॥
५ जय सुमति, ६. जय पद्मप्रभ, जय चौबीसी भगवान् ॥१॥साधु

७ सुपार्श्वनाथ का कीर्त्तन करते, ८. चन्द्रप्रभ को वन्दन करते ।
९ सुविधिनाथ का नाम सुमरते, १०. शीतलप्रभु को चित्त मे धरते ॥
११. जय श्रेयांस, जय वासुपूज्य, १२. जय चौबीसी भगवान् ॥२॥साधु

१३. विमलनाथ का कीर्त्तन करते, १४. अनन्तनाथ को वंदन करते ।
१५ धर्मनाथ का नाम सुमरते, १६. शान्तिनाथ को चित्त मे धरते ॥
१७ जय कुन्थु, १८. जय अरनाथ, जय चौबीसी भगवान् ॥३॥साधु

१९ मल्लिनाथ का कीर्त्तन करते, २०. मुनिसुव्रत को वन्दन करते ।
२१ नमिनाथ का नाम सुमरते, २२ अरिष्टनेमि चित्त मे धरते ॥
२३ जय पारस, २४ जय महावीर, जय चौबीसी भगवान् ॥४॥साधु

अनन्त सिद्ध का कीर्त्तन करते, विहरमान को वन्दन करते ।
गणधर प्रभु का नाम सुमरते, गुरुदेव को चित्त मे धरते ॥
केवल शिष्य विनय करता, जय चौबीसी भगवान् ॥५॥साधु

❖

३. तीर्थंकर स्तव

[तर्ज . घर आया मेरा परदेशी]

जिनवर ! जग उद्योत करो, भवसागर से पार करो ।।ध्रुव।।
ऋषभादिक महावीर सभी, चौबीसी विसरूँ न कभी।
मम मुख गुण गण नित उचरो ।।१।। भवसागर से .
तुम हो कर्म अरि जयकर, तुम गम्भीर ज्यो सागर वर ।
मिथ्या मल मम दूर हरो ।।२।। भवसागर से.... ...
तुमने रजमल धो डाला, जरा मरण का दु ख टाला ।
मुझ पर भाव प्रसन्न धरो ।।३।। भवसागर से .
तीनों लोक करे सुमिरन, स्तवन सदा और नित्य नमन ।
मुझ मे बोधि लाभ भरो ।।४।। भवसागर से ...
तुम चद्रो से भो निर्मल, तुम सूर्यों से भी उज्ज्वल ।
"पारस" सिद्धि शीघ्र वरो ।।५।। भवसागर से

—लोगस्स के भावो पर ।

४. अर्हन् स्तव

[तर्ज - जन गण मन अधिनायक]

हे अर्हन् ! हे भगवन् जय हे ! शासन आदि विधाता ।।ध्रुव।।
धार्मिक तीरथ चार वताये, बोध स्वयं ही पाये ।
सव पुरुषो मे उत्तम सिह वरपुण्डरीक पद पाये ।
गधहस्ति मदवारे, लोकोत्तम रखवारे, हित प्रदीप प्रद्योता ।
हे अभयद ! हे नयनद ! जय हे ! शासन आदि विधाता ।
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय जय हे, शासन आदि विधाता ।।

मार्ग दिखाया मोक्ष बताया, सयम विधि सिखलाई।
धर्म बताया, अर्थ सुनाया, आगे कूच कराई।

धर्म सारथी भारी, धर्म चक्रकरधारी, ज्ञान न कही रुक पाता।
हे अछद्म ! हे जिनवर ! जय हे ! शासन आदि विधाता।
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय जय हे, शासन आदि विधाता॥

जयी बनाये, समुद तिराये, बुध दे मुक्त बनाये।
तीर्ण स्वय भी, बुद्ध स्वय भी, मुक्ति स्वय भी पाये।

तुम सब जाननहारे, तुम सब देखनहारे, शिव थिर अरुज अनता।
हे अक्षय ! हे सुखमय ! जय हे ! शासन आदि विधाता।
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय जय हे, शासन आदि विधाता॥

जन्म नही, अवतार नही, अपुनरावृत्ति पाई।
सिद्धि नाम है प्रकट विश्व मे, वह पचम गति पाई।

बोधि बीज दाता रे, द्वीप बचावनहारे 'पारस' शरण प्रदाता।
हे जित अरि ! हे जितभय ! जय हे ! शासन आदि विधाता।
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय जय हे, शासन आदि विधाता॥

—'नमोत्थुणं' के भावों पर।

५. महावीर नमन

[तर्ज—सुनो सुनो ए दुनियांवालो ! बापू ...]

नमन श्रमण भगवान् ज्ञात-सुत, महावीर स्वामी को।
त्रिशला जननी सिद्ध जनक, देवाधि देव नामी को।।टेर।।
जिनके जन्म समय मे नारक, भी अपना दुख भूले !
दिव्य सौख्य तज सब सुरपति भी, धर्म भाव मे भूले ! !
जन्म पूर्व ही वृद्धि कारक, 'वर्धमान' नामी को ।।नमन....।१।

जग ममता तज कर्म क्षय हित, जिनने सयम धारा ।
तोड दिये घनघाति बन्धन, दीर्घ उग्रतप द्वारा ।।
हुए स्वय सम्बुद्ध केवली, अत 'श्रमरण' नामी को ।। नमन ...।२।

नव तत्व षड्द्रव्य आदि, त्रिविध श्रुत धर्म प्ररूपा ।
अनगार व आगार द्विविध यो चारित्र धर्मनिरूपा ।।
करी चतुर्विध सघ प्रतिष्ठा, जैन सघ स्वामी को ।। नमन .. ।३।

द्वितीय देशना मे ही लखकर अतिशय अपरपारा ।
गौतमादि ने शीश झुका, सर्वज्ञ तुम्हे स्वीकारा ।।
हुए सभी ग्यारह ही गरगधर, भविजन अभिरामी को।।नमन ।४।

वैदिक बौद्धादिक धर्मों का मिथ्यापन समझाया ।
जैनधर्म ही सत्य अनुत्तर, अद्वितीय बतलाया ।।
गौशालक से सहे परीषह, धन्य क्षमाधामी को ।। नमन....।५।

धन्ना जैसे श्रमरग तुम्हारे, श्रमरगी चन्दनबाला ।
शख पुष्कली से श्रावक, श्राविका जयन्तिबाला ।।
श्रेरिगक रेवति लाखो ने ही, धारा शुभकामी को ।। नमन .. ।६।

दीपावलि को दीप अलौकिक, तुम लोकाग्र पधारे ।
अब आगम ही है अवलम्बन, भवदधि तारन हारे !!
'पारस' मन वच तन से चाहे, मिलूं मोक्ष गामी को।।नमन .. ।७।

◆

६. गुरु वन्दनादि

[तर्ज—घर आया मेरा परदेशी....]

गुरुवर ! वन्दन अनुमति दो, चरण कमल मे आश्रय दो ।।ध्रुव
पाप क्रियाएँ तज आये, सचित्त द्रव्य भी तज आये ।
यथाशक्ति विधि वन्दन लो ।। चरण कमल मे ..... ।।१।

मस्तक चरणो मे धरते, दोनो हाथो से छूते ।
कष्ट हुआ हो क्षमा करो ॥ चरण कमल मे . ॥२॥

अहो रात्र क्या शुभ वीता ? सयम मे न रही वाधा ?
सुख शाता का उत्तर दो ॥ चरण कमल मे.. . ॥३॥

जो अपराध हुए हमसे, दूर हरे मनव च तन से ।
निष्फल आशातना करो ॥ चरण कमल मे . .. ॥४॥

मन वच तन के योग वुरे, हम कषाय से घिरे हुए ।
झूठ दिखावा मिथ्या हो ॥ चरण कमल मे ॥५॥

हम हैं भूलो के सागर, पर हैं आप क्षमासागर ।
"पारस" का उद्धार करो ॥ चरण कमल मे . . ॥६॥

— 'इच्छामि खमासमणो' के भावों पर ।

७ वीर व उनके शिष्यों की स्मृति

[तर्ज · कभी सुख है कभी दुख है]

जिनेश्वर वीर और उनके; शिष्य अव याद आते हैं ।
हरष करते भजन गाते, वडो को सर झुकाते है ॥टेर॥

जिनेश्वर डसा कौशिक अगूठे मे, वहाई दूध की धारा ।
क्षमा का वोध दे तारा, प्रभु वे याद आते है ॥१॥

साधु : गये आनन्द श्रावक घर, भूल तत्क्षण क्षमाने को ।
जो चौदह-पूर्वी होकर भी, वे 'गौतम' याद आते है ॥२॥

साध्वी . पिता विछुडे मिथाई माँ विकी और भोयरे डाली ।
न फिर भी धैर्य त्यागा, वे 'चन्दना' याद आती हैं ॥३॥

श्रावक : देव मिथ्यात्वधारी के, कठिन परिषह सहे तीनो ।
तथापि व्रत न खाडा, वे 'कामदेव' याद आते है ॥४॥

श्राविका : जो स्त्री जाति होकर भी, विलक्षण प्रश्न करती थी ।
ज्ञान-चर्चा की रसिका वे, 'जयन्ती' याद आती है ॥५॥

कहे 'केवल' अरे 'पारस' बना अपना जीवन इन-सा ।
यही है सार सुनने का, कि हम भी याद बनते हैं ॥६॥

८. जैन धर्म के १४ गुण

जय वीर धर्म की बोलो, जय जैन धर्म की बोलो ॥टेर॥

१. जैन धर्म ही सत्य पूर्व पर, २. धर्म न इससे कोई बढकर ।
श्रद्धा सुदृढ कर लो, जय जैन धर्म की बोलो ॥१॥

३ अरिहन्तो ने इसे बताया, अद्वितीय सब मे कहलाया ।
पूरी प्रीति जमा लो, जय जैन धर्म की बोलो ।२॥

४ जैन धर्म मे कमी न कुछ है, ५ स्याद्वाद सिद्धात सहित है ।
गहरी रुचि बना लो, जय जैन धर्म की बोलो ॥३॥

६ है शत-प्रतिशत शुद्धि वाला, ७ तीनो शल्य मिटाने वाला ।
शीघ्र फरसना कर लो, जय जैन धर्म की बोलो ॥४॥

८ अविचल सिद्धि देने वाला, ९ आठो कर्म खपाने वाला ।
मन वच तन से पालो, जय जैन धर्म की बोलो ॥५॥

१० यही मोक्ष तक पहुँचायेगा, ११ सच्ची शान्ति दिखलायेगा ।
इसके पीछे हो लो, जय जैन धर्म को बोलो ॥६॥

१२ इसमे विकृति कभी न आती, १३ इसकी सधि टूट न पाती ।
'पारस' १४ सब दु.ख टालो, जय जैन धम की बोलो ॥७॥

—औपपातिक, देशनाधिकार के भावो पर ।

६. पालो दृढ़ आचार

[तर्ज : वो दिन धन होसी]

पालो दृढ आचार, जैनो ! सब मिलकर ॥ ध्रुव ॥

प्रात काल सदा उठ जाओ, पहले धर्म मे चित्त लगाओ।
आलस दूर निवार ॥१॥ जैनो सब ...

सतो को पचाग नमाओ, देव धर्म को मन मे ध्याओ।
जपो मन्त्र नवकार ॥२॥ जैनो सब ...

सामायिक का लाभ उठावो, प्रभु प्रार्थना विधि से गाओ।
करो मधुर उच्चार ॥३॥ जैनो सब ...

नित नियम चौदह चितारो, व्रत पच्चखाण नया कुछ धारो।
रोको आश्रव द्वार ॥४॥ जैनो सब....

करो मनोरथ-त्रय का चिन्तन, अरु विश्राम चार का सुमिरन।
भावो भावना बार ॥५॥ जैनो सब ...

सुनो सदा मुनियो का भाषण, पूछो प्रश्न करो हल धारण।
सीखो ज्ञान अपार ॥६॥ जैनो सब ...

छाने बिना न पानी पियो, अशुद्ध भोजन कभी न खाओ।
पालो नित निविहार ॥७॥ जैनो सब

अष्टम पाक्षिक पौषध धारो, प्रतिक्रमण कर दोष निवारो।
प्रायश्चित लो धार ॥८॥ जैनो सब .

सोने समय करो सथारा, आयुष्य का रखो आगारा।
उठने पर लो पार ॥९॥ जैनो सब .

'महा-मन्त्र' को कभी न भूलो, हर कामो मे पहले बोलो।
अथवा 'लोगस्स' चार ॥१०॥ जैनो सब ..

जैन धर्म पर रखो श्रद्धा, करो न झूठी परमत निन्दा।
रहो सदा हुशियार ॥११॥ जैनो सब .

रहो परस्पर हिलमिल जुलकर, कलक निन्दा चुगली तजकर।
करो सघ जयकार ॥१२॥ जैनो सब....

जो जिन धर्म लजावे कोई, उनको साथ न देना कोई।
कर दो बहिष्कार ॥१३॥ जैनो सब ...

सात व्यसन को दूर निवारो, बारह श्रावक व्रत स्वीकारो।
लो इक्कीस गुण धार ॥१४॥ जैनो सब ..

जोवन जोओ ऐसा सुन्दर, लगे सभी को प्यारा सुखकर।
'पारस' करे पुकार ॥१५॥ जैनो सब

◆

स्थानकजी में जाएँ

[तर्ज · सुवह और शाम की]

बहिन . आओ, भैया ! आओ देरी न लगाओ,
स्थानकजी मे जाएँ ।टेर।

भाई . आओ, बहिन ! आओ, देरी न लगाओ,
स्थानकजी मे जाएँ ।टेर।

व० मुनिराजो के होगे दर्शन, मगलिक हमे सुनाएँगे।
कुछ-कुछ ज्ञान नया सीखेंगे, पच्चखाणो को धारेंगे॥
उत्तरासग ले आओ, या मुँहपत्ति ले आओ। स्थानकजी ।१।

भा० विनय बढेगा मन वच तन मे, श्रद्धा दृढ हो जाएगी।
आँख ज्ञान की खुल जाएगी, पाप क्रिया छुट जाएगी॥
आसन लेकर आओ, पूँजणी लेकर आओ। स्थानकजी ।२।

ब० मिलेंगे ज्ञानी श्रावकजी भी, सामायिक सिखलायेंगे।
प्रतिक्रमण पच्चीस बोल, नवतत्वादिक रटवायेंगे॥
माला लेकर आओ, पोथी लेकर आओ। स्थानकजी ।३।

भा० मीठी मीठी अच्छी अच्छी, धर्म कथा सुन पाएँगे ।
जीवन अपना उठेगा ऊँचा, हम महान बन जाएँगे ।।
झटपट झटपट आओ, जल्दी जल्दी आओ । स्थानकजी ।४।

ब० मुनि बनेंगे एवन्ता से, महासति चन्दनबाला ।
या फिर आनन्द कामदेव से, चेल्लना जयन्तीवाला ।।
सतुष्ट हो आओ, हर्षित होकर आओ । स्थानकजी ।५।

दोनो.-भाई बहन वे भी जाते है, हम भी सग हो जाएँ ।
सब मिलकर हम जैन धर्म की, ध्वजा सदा फहराएँ ।।
खेल छोडकर आओ, कूद छोडकर आओ । स्थानकजी ।६।

दोनो -केवल पत्थर नही रहेंगे, 'पारस' हम बन जायेंगे ।
बालक भी मिल पाली का चौमासा सफल बनायेंगे ।।
(ज्ञान क्रिया का आराधन कर सच्चे जैन कहायेंगे ।।)
आओ सहेली आओ, आओ साथी आओ । स्थानकजी ।७।

◆

सामायिक कीजिए

[तर्ज : दिल लूटने वाले जादूगर . ...]

यदि आत्मोन्नति अभिलाषा हो, तो सामायिक आराधन हो ।'टेर।।

यदि देह बढे परिवार बढे, धन धान्य बढे सुख भोग बढे ।
इनसे ससारोन्नति होती, पर आत्मा का उत्थान न हो ।।१।।
ससार स्वर्ग-सा देख चुके, साक्षात् स्वर्ग भी भोग चुके ।
अब अमर मोक्ष सुख पाना हो तो, धर्म प्रति आकर्षण हो ।।२।।
सब लोक मे धर्म ही ऐसा है, जो आत्मोन्नति कर सकता है ।
यदि साधु धर्म सामर्थ्य नही, तो. गृहस्थ धर्म अनुपालन हो ।।३।।
श्रावक के कुल बारह व्रत हैं, उनमे सामायिक नववाँ है ।
यदि पूरे बारह बन न सके, तो नववाँ व्रत ही धारण हो ।।४।।

हिसादिक पाप अठारह है, सावद्य योग कहलाते है।
सावद्य योग तज सवर धर, शुभ योगो का सचालन हो ॥५॥

हिसा असत्य चोरी मैथुन, अरु परिग्रह ये दुर्गति कारण।
यदि जीवन भर छोड न पाओ तो, एक घडी भी वारण हो ॥६॥

पाप [1]न करना, [2]न कराना है, [1]मन [2]वच [3]काया शुद्ध रखना है।
जो [3]करें, न उनका [1]वचनो से, या [2]काया से अनुमोदन हो ॥७॥

प्रात. सध्या सामायिक हो, व्याख्यान मे भी सामायिक हो।
कम से कम एक मुहूर्त समय, का, नियम सदा ही धारण हो ॥८॥

कुछ [1]ज्ञान बढे, [2]श्रद्धान बढे, [3]चारित्र बढे [4]तप [5]वीर्य बढे।
स्वाध्याय प्रमुख तव ऐसी करो, जिससे सामायिक पावन हो ॥९॥

सामायिक [1]सबका भय हरती, [2]सबके प्रति अनुकम्पा भरती।
[3]उनतीस शेष घडियो मे भी, अति तीव्र भाव से पाप न हो ॥१०॥

वे धन्य धन्य मुनि महासती है, जो यावज्जीवन दीक्षित है।
यदि आजीवन दीक्षा न बने तो, एक घडी साधुपन हो ॥११॥

'केवल' कहते 'पारस' सुन रे, सब मे सामायिक रस भर रे।
जिससे सब गुण की रक्षक, इस, सामायिक का सरक्षण हो ॥१२॥

तीन मनोरथ

दोहा

१ आरम्भ परिग्रह अल्प हो, २ महाव्रत हो स्वीकार।
३ सथारा हो अन्त मे, तीन मनोरथ सार ॥१॥

बारह भावना

१ तन धन कोई **नित्य नहीं** है, २ दुख मे देव भी **शरण नहीं** है।
३ यह **संसार** चक्र है भारी, ४ यहाँ **अकेले** सब नर नारी ॥

५ देह भी अपना नहीं है जग मे, ६ तथा अशुचि ही भरी है इसमे ।
७ आश्रव सबको सदा रुलाता, ८ संवर उस पर रोक लगाता ।।
९ एक निर्जरा से ही सुख है, १० और लोक मे कहीं न सुख है ।
११ अति दुर्लभ सम्यक्त्व रत्न है, १२ जहाँ अहिंसा वही धर्म है ।।
'केवल' कहते 'पारस' सुन रे, सदा भावना बारह भा रे ।
भरतादिक ने इनको भाई, भा कर शीघ्र ही मुक्ति पाई ।।

चार भावना

१ सब जीवो से रक्खूँ मित्रता, २ दुष्टो की मैं करूँ उपेक्षा ।
३ दुखियो के प्रति अनुकपा हो, ४ अधिक गुणी मे हर्ष सदा हो ।।

अट्ठारह पाप-त्याग

१ कभी न प्राणी हिंसा करना, २ कभी न झूठी बाते कहना ।
३ नही किसी की वस्तु चुराना, ४ कभी न गाली गुस्सा करना ।
५ इच्छाओ को नही बढाना, ६ कभी न आँखे लाल बनाना ।
७ नही किसी मे अकडे रहना, ८ कभी न मन मे जाल बिछाना ।
९ कभी किसी का लोभ न करना, १० राग मोह मे कभी न पड़ना ।
११ नही किसी से वैर बसाना, १२ नही लडाई झगडा करना ।
१३ झूठ कलक न कभी चढाना, १४ नही वैरी को चुगली खाना ।
१५ निंदा से बचते ही रहना, १६ विषयो मे रति अरति न करना ।
१७ माया रखकर झूठ न कहना, १८ झूठे मत मे कभी न पडना ।
'केवल' कहते 'पारस' सुनना, यो तूँ पाप अठारह तजना ।
पाप छोड निष्पापी बनना, यदि तूँ चाहता दुःख न पाना ।।

◆

काव्य विभाग समाप्त

◆

जैन सुबोध पाठमाला—भाग १ समाप्त

◆

मुद्रागत भावनाएं

१. हे वीर ! जैसे स्वस्तिक पौद्गलिक-मंगलों मे श्रेष्ठ है, वैसे ही आप आत्मिक मंगलो मे श्रेष्ठ हैं; अतः हम आपकी शरण से 'आत्म-मंगल' प्राप्त करें।

२. हे वीर ! जैसे सूर्य पौद्गलिक प्रकाशकों मे श्रेष्ठ है, वैसे ही आप आत्म-ज्ञान-प्रकाशकों मे श्रेष्ठ हैं; अत हम आपकी शरण से 'आत्म-प्रकाश' प्राप्त करें।

३. हे वीर ! जैसे सूर्य की किरणे अगणित वस्तुओ को प्रकाशित करती हैं, वैसे ही आपकी द्वादशागी वाणी अनत भावों को प्रकाशित करती है; अतः हम आपके अर्थागम को समझें।

४. हे वीर ! आपके उस विशाल अर्थागम को आर्य सुधर्मा ने थोड़े मे ग्रथित कर शब्दागम (ग्रथ) बनाया; अतः हम उस शब्दागम को कठस्थ करें।

५. हे वीर ! उन अर्थागम और शब्दागम से आचार्य स्वयं ज्योतिमान दीप बनते हैं और शिष्यों को भी ज्योतिमान दीप बनाते हैं; अत हम आचार्य के शिष्य बनें।

६. हे वीर ! हम आपकी वाणी के कुभ वत् पूर्ण पात्र बनें।

७. हे वीर ! आपकी दूध समान वाणी मे कोई अन्य जल समान वाणी मिलाकर दे, तो हम वहां हस-वत् विवेकी बनें।

८. हे वीर ! आपकी वाणी से वैराग्य प्राप्त कर हम कामभोग के कीच से कमल-वत् ऊपर उठें।

६ हे वीर ! ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य के पाँचों आचार हममे कमल की विकसित पाँच पखुरियो के समान विकसित बनें।